समाजवादी विचारधारा

लेखक
एन० बी० बिकेनिन

अनुवादक
मोहन श्रोत्रिय

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लि
जयपुर

Socialist Ideology
का हिन्दी अनुवाद

English Edition

हिंदी संस्करण

जून 1985 (RPPH 4)

मूल्य : 7.50

भारती प्रिन्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित तथा रामपाल द्वारा
राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लि०, जयपुर की ओर से प्रकाशित।

प्रस्तुत पुस्तक विचारधारा के वर्ग की पड़ताल भी करती है। यह उसकी विकास-यात्रा के विभिन्न पड़ावों से गुजरती हुई वैज्ञानिक विचारधारा, जो कि समाजवादी विचारधारा का ही दूसरा नाम है, की क्रांतिकारी-आलोचनात्मक सार-वस्तु; सिद्धांत, प्रचार एव व्यवहार; समाजवादी चेतना एवं जनसमूहों के अनुभव तथा विचार-धारा के चरित्र एवं प्रचार की किस्मों का विवेचन भी प्रस्तुत करती है।

समाजवादी विचारधारा मे उन्नत समाजवादी समाज के वैचारिक क्रियाकलाप की नई परिस्थितियों, आर्थिक विकास के वैचारिक पक्षों, समाजवादी जीवन-पद्धति से जुड़े नैतिक एवं वैचारिक प्रश्नो के विवेचन के साथ-साथ विचारधारा एवं सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परंपरा, अंतरराष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य तथा विचारधाराओं के संघर्ष व पूंजीवादी समाज एव उसकी विचारधारा के गहराते संकट का भी प्रामाणिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

आज की दुनिया को अन्दर-बाहर से समझने के लिए यह पुस्तक बेहद जरूरी है।

अनुक्रम

लेखक की कलम से

विचारधारा विचारो का विज्ञान है। "विचारधारा" शब्द एवं इसकी परिभाषा फ्रासीसी प्रबोधक एवं विद्वान देस्तत द त्रेसी के नाम से जुडी हुई है जिन्होंने सबसे पहले यह कहा था कि सामाजिक एवं राजनीतिक विचारो का ससार ज्ञान के अपने पृथक विभाग को निर्मित करता है जोकि स्वयं के तर्क का अनुसरण करता है तथा जिसके स्वयं के सिद्धात एवं नियम होते हैं, यानी जो अस्त-व्यस्त विचारों का घाल-मेल नही होता अपितु निश्चित एवं अकाट्य नियमों से संचालित होता है।

यदि यह कहना सही हो कि दार्शनिक श्रेणियों एवं वैज्ञानिक अवधारणाओ की अपनी नियति होती है तो यह सहज रूप से कहा जा सकता है कि विचारधारा शब्द का विकास काफी उत्तेजनापूर्ण एवं दिलचस्प रहा है।

18वीं एव 19वीं शताब्दियों के संधिकाल—विकट क्रांतिकारी युग के मध्य मे—मे उभरी विचारधारा की अवधारणा दार्शनिक एवं सामाजिक विचारो की बाढ मे लुप्त तो नही ही हुई अपितु इसके विपरीत वैज्ञानिक शब्दावली मे स्वयं को स्थापित कर पायी तथा समकालीन दर्शन, विज्ञान एव सस्कृति के क्षेत्र मे प्रविष्ट हो गयी। आज विचारधारा उन गिने-चुने शब्दों में से एक है जिनका राजनीतिक एवं दार्शनिक शब्दावली मे बहुधा प्रयोग होता है तथा जिसके बिना 20वीं शताब्दी के उथल-पुथलपूर्ण राजनीतिक एवं आध्यात्मिक जीवन का मूल्यांकन व व्याख्या-विश्लेषण असंभव बन गया है। जनता का ध्यान आकृष्ट करने का दावा करने वाला कोई भी दार्शनिक अथवा राजनीतिक सिद्धांत "विचारधारा" शब्द के बिना अपना काम नही चला सकता है। स्वाभाविक ही है कि पाठक का पहला प्रश्न यही होगा कि ऐसा क्यो है कि इस घटना-क्रिया के पीछे क्या सामाजिक-राजनीतिक तथा वैज्ञानिक कारण एव प्रेरणाएँ हैं।

लेखक पाठक का ध्यान निम्नलिखित परिस्थितियो की ओर आकृष्ट करना चाहेगा ताकि वह बेहतर ढंग मे समझ सके कि यह पुस्तक क्यों लिखी गयी है। लेखक व पाठक साथ-साथ दार्शनिक श्रेणियो एवं धारणाओ—जिनकी विशिष्टता उच्चस्तरीय अमूर्तता एव साधारणीकरण में लक्षित की जाती है—के जटिल संसार की खोज करेंगे। ये धारणाएँ पहली नजर मे कितनी ही अमूर्त एवं असंबद्ध क्यो न

उन्हें विकसित करेगा तथा उनका बचाव करेगा, तथा इस दृष्टि से गैर-मार्क्सवादियों के साथ बहस की शुरुआत करेगा। यहां यह जोड़ना भी जरूरी है कि मार्क्सवाद की अवधारणाओं पर जितने भयानक हमले हुए हैं, उन्हें जितना झुठलाया गया है तथा जानबूझ कर तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया है, वैसा अन्य किसी वैचारिक अवधारणा के साथ नहीं हुआ है। खास तौर से यह तथ्य, कि मार्क्सवादी विचारों के क्रम में उदासीनता अथवा तटस्थता की कोई गुंजाइश नहीं है, मार्क्सवाद-लेनिनवाद के भारी ऐतिहासिक महत्व एवं व्यवहार्यता का प्रमाण है। लेनिन की जन्मशताब्दी के क्रम में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के दस्तावेजों में जोर देकर कहा गया: "मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा श्रमिक वर्ग—समस्त कामगार जनता—के प्रमुख हितों की अत्यंत सुसंगत अभिव्यक्ति है, साथ ही यह एक वैज्ञानिक सिद्धांत है जो कि समाजवादी निर्माण के अनुभव द्वारा सही सिद्ध हो चुका है तथा जो विश्व का वस्तुगत रूप से सही चित्र प्रस्तुत करता है, अतः कर्म के लिए अच्छा पथ-प्रदर्शक है।"[1]

समाजवादी विचारधारा वास्तविक जीवन—उसकी समस्त छवियों, जटिलता एवं अंतर्विरोधों सहित—की समझ प्राप्त करने का उपयोगी उपकरण है। यह मनुष्यों को आत्मनिष्ठ दिव्य दर्शन, सामाजिक कल्पनालोक व मृगतृष्णाओं के मिथ्या संसार में नहीं ले जाती। भावी संसार के बारे में उसकी स्थापनाएं वर्तमान से उत्पन्न होने के कारण वैज्ञानिक दृष्टि से ठोस एवं दुरुस्त होती हैं।

समाजवादी समाज में विचारधारा की भूमिका व उसका स्थान उसके बुनियादी सिद्धांतों द्वारा निर्धारित होते हैं: इसके जीवन के विशिष्ट लक्षणों तथा आगे विकास की संभावनाओं द्वारा। सामाजिक व्यवस्था के रूप में समाजवाद प्रभावी रूप से तभी कार्य कर सकता है जबकि वह निहित सामाजिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं के ठोस ज्ञान एवं वैज्ञानिक विचारधारा पर आधारित हो तथा उसके लिए लाखों लोग सायास रचनात्मक प्रयास करें। यही कारण है कि समाजवादी समाज में इसके सिद्धांतों को रहस्यमय बनाने के लिए कोई जरूरत नहीं पड़ती: इसकी विचारधारा के लिए मिथकों व भ्रांतियों का कोई उपयोग नहीं होता। लेनिन ने जोर देकर कहा: "हमें अपने लिए मिथकों एवं भ्रांतियों की रचना नहीं करनी चाहिए: ऐसा करना इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा तथा वर्गीय दृष्टिकोण के साथ एकदम असंगत होगी।"[2]

---

1. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के विचारधारात्मक कार्य के प्रश्न। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के अधिक महत्वपूर्ण निर्णयों का संकलन (1965-1972), मास्को, 1972, पृ० 263 (रूसी में)
2. वी० आई० लेनिन, 'विजयी क्रांति', संकलित रचनाएं, खंड 8, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, पृ० 450

यथार्थ के वैज्ञानिक विश्लेषण के क्षेत्र मे विचारधारा के प्रश्नो की ओर निरंतर ध्यान देना मार्क्सवादी-लेनिनवादी परंपरा का रूप ले चुका है। लेनिन ने इसकी अतर्वस्तु को सुस्पष्ट रूप मे परिभाषित करते हुए कहा : "सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष की विचारधारा के रूप मे समाजवाद विचारधारा के उद्‌भव, विकास व दृढीकरण को सचालित करने वाली सामान्य स्थितियों से नियंत्रित होता है; दूसरे शब्दो में कहा जाये तो, यह समूचे मानवीय ज्ञान पर आधारित होता है, उच्च स्तरीय वैज्ञानिक विकास की पूर्वापेक्षा करता है तथा वैज्ञानिक कार्य की माँग करता है, आदि।"[1] लेनिन द्वारा रेखांकित इस बहु-आयामी, बहु-पक्षीय वैज्ञानिक कार्य को सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी व अन्य मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियाँ जारी रखे हुए हैं।

समाजवादी विचारधारा की समस्याओ के गहन विवेचन की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि समाजवादी देशो का वास्ता बड़े पैमाने पर रचनात्मक दायित्वों से पड़ा; विश्व समाजवाद, अतर्राष्ट्रीय श्रमिक एव राष्ट्रीय मुक्ति आदोलनो के विकास को मौजूदा अवस्था के मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण व व्याख्या की अनिवार्यता ने भी इसे संभव बनाया। उक्त विवेचन का एक कारण विज्ञान एवं अभियान्त्रिकी के क्षेत्र मे हुई नई खोजें भी रही हैं, जोकि विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओ मे समकालीन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के सामाजिक परिणामों की सारतत्व हैं। पूंजीवादी, सुधारवादी एवं सशोधनवादी विचारधाराओं पर तर्क-सगत आक्रमण करते रहने मे निहित कार्यों ने भी एक कारक के रूप में अपनी भूमिका निबाही।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी चिंतन ने 20वीं शताब्दी के केन्द्रीय प्रश्नों को उठाने व उनका समाधान करने मे पहल की। इसके प्रमाण के रूप में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के राजनीतिक दस्तावेज़ों तथा पार्टी की केन्द्रीय समिति के महा-सचिव लियोनिद ब्रेझनेव की रचनाओं को प्रस्तुत किया जा सकता है जिन्होंने कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी व सोवियत राज्य की घरेलू व अंतर्राष्ट्रीय नीतियों (शिक्षा, बच्चों का लालन-पालन, विज्ञान, संस्कृति, साहित्य एवं कलाओं जैसे सामाजिक जीवन के मानवीय क्षेत्रों) की वैज्ञानिक पुष्टि की ओर भरपूर ध्यान दिया। नया सोवियत सविधान, जो कि उन्नत समाजवादी समाज का सविधान है, इस मायने में वैज्ञानिक कम्युनिज्म का शानदार सैद्धांतिक एवं राजनीतिक दस्तावेज़ है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के दस्तावेज़ों में विचारधारा तथा पार्टी द्वारा स्वीकृत विचारधारात्मक कार्यवाहियों के मूल प्रश्नों के प्रत्येक पक्ष की परीक्षा

2 वी॰ आई॰ लेनिन, 'उत्तरी सघ के नाम पत्र', संकलित रचनाएं, खंड 6, पृ॰ 163

की गयी है तथा यह आवश्यकता भी स्पष्ट की गयी है कि समाजवादी विचारधारा की अंतर्वस्तु को निरंतर समृद्ध किया जाये, सैद्धांतिक कार्य के रूप पद्धति का व्यवस्थित अध्ययन किया जाये तथा इसके सैद्धांतिक आधारों का विवेचन किया जाये। जाहिर है कि यह विचारधारा तथा सैद्धांतिक कार्य-व्यापार के क्षेत्र में वैज्ञानिक खोज की सक्रिय एवं सोद्देश्य प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य सैद्धांतिक मूल्य तथा व्यावहारिक कारगरता में वृद्धि करना है।

आधुनिक विज्ञान में जिस सर्वग्राही दृष्टिकोण का वर्चस्व है वह विचारधारा के विज्ञान पर पूरी तरह लागू होता है। लेखक ने विचारधारा के विज्ञान को सामाजिक ज्ञान के अंतर्गत विशिष्ट क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया है जो कि विचारधारा का अध्ययन विशिष्ट सामाजिक घटनाक्रिया के रूप में करता है तथा इसकी उत्पत्ति, संचालन एवं विस्तार की क्रियाविधि को उद्‌घाटित करने के साथ-साथ इसके सामाजिक स्वरूप, कार्यों तथा इसके प्रभाव के फैलाव की विधियों को भी उजागर करता है। यद्यपि लेखक यह दावा नहीं करता कि यह शब्द समूचे अध्ययन विषय का पूरी तरह जायजा लेता है तो भी उसे उम्मीद है कि इस शब्द का उपयोग प्रस्तुत पुस्तक के रूप-रंग, समस्याओं के दायरे, इसके स्वरूप व प्रतिवस्तु को सुस्पष्ट रूप से परिभाषित करने में सहायक होगा।

विशिष्ट समाजशास्त्रीय समस्याओं को समर्पित पुस्तकों के विपरीत, प्रस्तुत पुस्तक विचारधारा एवं वैचारिक कार्य के सामान्य सैद्धांतिक एवं पद्धतिमूलक पक्षों की पड़ताल से जुड़ी हुई है। लेखक का मार्ग-दर्शन इस तथ्य ने किया है कि विचारधारा एवं प्रचार की केन्द्रीय आधारमूलक समस्याओं को सामान्य सैद्धांतिक विश्लेषण द्वारा ही सुलझाया जा सकता है जोकि संज्ञानात्मक "अमूर्तन शक्ति"[1] का उपयोग करके "हमारी वास्तविकताओं का संपूर्ण चित्र"[2] प्रस्तुत करने में सक्षम है।

विचारधारा के अध्ययन के साथ सामान्य सैद्धांतिक तथा विशिष्ट समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों के संबंध की पहचान करने के लिए उनके अनिवार्य अंतःसंबंधों को समझना उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है; ये दोनों दृष्टिकोण एक-दूसरे के पूरक हैं तथा इनमें से किसी एक द्वारा दूसरे का विरोध एकदम अनुचित होगा। विशिष्ट समाजशास्त्रीय अध्ययन इन प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत कर सकते हैं कि विचार विशेष किस तरह कार्य करते हैं, प्रचार एवं राजनीतिक शिक्षा की अन्तर्वस्तु एवं रूपों से क्या ठोस अपेक्षाएँ रखी जाती हैं, तथा विचारधारा की शृंखला में अलग-अलग कड़ियों के संचालन का "इष्टतम रूप" क्या है। साथ ही

1. कार्ल मार्क्स, पूंजी, खंड 1, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, 1972, पृ॰ 19
2 वी॰ आई॰ लेनिन, 'जनता के दोस्त कौन हैं तथा सामाजिक-जनवादियों से वे कैसे संघर्ष करते हैं,' संकलित रचनाएं, खंड 1, पृ॰ 296

हमारी मान्यता यह भी है कि इन खोजों का अधिकाधिक सवय प्रचार की
विधि से है। जहाँ तक विचारों को वास्तव में आगे बढ़ाने का (जोकि प्रचार
अंतर्वस्तु मे परिवर्तन ला देते हैं, नये प्रश्नों को प्रस्तुत करने का या लवे सम
चले आ रहे पारम्परिक प्रश्नों की पुनर्व्याख्या का) प्रश्न है, यह समाजशास्
अध्ययनों के दायरे के बाहर की बात है तथा व्यापक सैद्धांतिक परिधि मे विश्ले
की माँग करता है।

लेनिन, जोकि सदा ही शास्त्रीय वाक्छल तथा वर्गीकरण के कठोर विरोधी
ने "सुव्यवस्थित दृष्टिकोण" तथा "व्यावहारिक मुद्दों से सपर्क रखने" के नाम
वास्तविक सैद्धांतिक ज्ञान के महत्त्व की खिल्ली उड़ाने के प्रयासों का डटकर वि
किया। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वी कांग्रेस ने लेनिन के
निर्देशों के क्रम मे रेखांकित किया कि "अच्छे सिद्धांत से अधिक व्यावहारि
कुछ और नही होता। विचारधारा एवं वैचारिक गतिविधियों की समस्याओं
प्रति इस तरह के मूलभूत एवं सामान्य सैद्धांतिक दृष्टिकोण के उदाहरण मा
एंगेल्स एव लेनिन की रचनाओं मे खूब देखे जा सकते हैं।

समाजवादी विचारधारा वैचारिक प्रक्रिया के उद्भव एवं विकास को स
लित करने वाले सामान्य नियमों से निर्दिष्ट होती है। साथ ही यह स्वयं के निय
का भी पालन करती है (श्रमिक वर्ग की विचारधारा के रूप में जो कि इसके
नियम हैं) जो कि इसके नये ऐतिहासिक कार्यों को निर्धारित करते हैं। अस्तु,
तक प्रस्तुत पुस्तक की समग्र रूपरेखा का प्रश्न है, लेखक ने विचारधारा के मा
वादी-लेनिनवादी सिद्धांत को एक निश्चित सुघटित तत्व के रूप में देखा है जि
कि (लेनिन के शब्दों मे) "एक रूप सिद्धांत" व्याप्त होते हैं। इस पुस्तक मे वैचा
विचारधारा की लेनिनवादी अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है। उक्त अवधा
विचारधारात्मक प्रक्रियाओं संबंधी मार्क्स एवं एंगेल्स के प्रारंभिक विचारों
सीधी एव सृजनात्मक विशद व्याख्या है जहाँ प्रचार की दो ध्रुवीकृत धारणाएँ
पूंजीवादी तथा समाजवादी—हैं और पूर्णतया उन्नत समाजवादी समाज के जी
के बुनियादी आतंरिक एव अंतर्राष्ट्रीय विचारधारात्मक पक्ष हैं।

प्रस्तुत पुस्तक की विषय-वस्तु को इस तरह परिभाषित करके लेखक ने
तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि विचारधारा सैद्धांतिक प्रणाली होने के साथ-
ऐतिहासिक प्रक्रिया मे सक्रिय रूप से सलग्न सामाजिक कारक भी है। इस दृष्टि
विचारधारा का सामाजिक-दार्शनिक विश्लेषण तब तक अधूरा रहेगा जब तक
वह उसकी कार्य-विधि तथा सामाजिक चेतना को प्रभावित करने संबंधी
विधि को अध्ययन में शामिल न किया जाये। दूसरे शब्दों में, विचारधारा

1 दस्तावेज एवं प्रस्ताव—सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस, मा
1976, पृ० 57

प्रचार को एक-दूसरे को अलग करके नहीं अपितु उनकी संगठित एकता में देख
गया है। विचारधारा प्रचार की अंतर्वस्तु तथा किस्म को निर्धारित करती है जबकि
प्रचार विचारधारा को बड़े पैमाने पर इसके पुनरुत्पादन की सामाजिक संचावि
तथा इसकी क्रियाशीलता की विधि प्रदान करता है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक इन
दोनों की ही व्यापक पड़ताल का प्रयास करेगा।

पश्चिमी समाजशास्त्रियों ने विचारधारा के कई वर्गीकरणवादी प्रतिरू
विकसित किये हैं जो कि विवेचनीय विषय-वस्तु का वर्णन, वर्गीकरण व पहचान
करते हैं। अतः वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख कार्य उनके वास्तविक सामाजिक-राजनीतिक अर्थ तथा उनकी ठोस सामाजिक भूमिका को उद्घाटित करना तो है ही, विचारधारा के संबंध में मार्क्सवादी व गैर-मार्क्सवादी विचारों की तुलना करना भी है। लेखक ने इस कोण से विचारधारा एवं प्रचार संबंधी बूर्ज्वा अवधारणाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तावित किया है।

इस प्रारंभिक संदर्भ में अंतिम टिप्पणी। लेखक ऐसा कोई दावा नहीं करता कि उसके पास विचारधारा एवं प्रचार के सैद्धांतिक विश्लेषण से जुड़े प्रत्येक प्रश्न का उत्तर है। प्रस्तुत पुस्तक में बुनियादी अवधारणाएं एवं परिभाषाएं प्रस्तुत की गयी हैं। यदि यह पाठक की रुचि जगाने में, विचारधारा एवं शिक्षा संबंधी मार्क्सवादी विचार-सागर में गहरे उतरने को तथा नये युग के मानव के निर्माण से संबंधित समाजवाद के व्यावहारिक अनुभवों की ओर अधिक जानकारी प्राप्त करने को प्रेरित कर सके तो निस्संदेह लेखक को इस बात का संतोष होगा कि उसका ध्येय पूरा हो गया है।

अध्याय : 1

विचारधारा का वैज्ञानिक सिद्धांत निर्मित करने के मूलभूत सिद्धांत

विचारधारा का सामाजिक स्वरूप

सामाजिक चिंतन के इतिहास में सर्वप्रथम मार्क्स एवं एंगेल्स ने विचारधारा के उद्भव, विकास एवं विस्तार को संचालित करने वाले वस्तुगत नियमों को उद्घाटित एवं परिभाषित किया। यह ज्ञान के व्यापक क्षेत्र के रूप में समाज के जीवन की खोज थी जहां प्रभावी अन्वेषण की गुंजाइश थी तथा विचारधारात्मक संबंधों के अध्ययन की सैद्धांतिक पूर्वपीठिकाओं का प्रावधान प्रस्तुत किया गया था।

मार्क्स-एंगेल्स ने विचारधारा के प्रश्नों को, उनकी समग्रता में, सामाजिक-ऐतिहासिक कारकों एवं वर्ग हितों के वैज्ञानिक विश्लेषण की ठोस जमीन पर रखा। ऐसा करके उन्होंने ऐतिहासिक प्रक्रिया के बौद्धिक एवं नैतिक प्रमुख-परिवाहकों के प्रश्न को वैज्ञानिक दृष्टि से उठाना संभव बनाया। उन्होंने जो अध्ययन प्रस्तुत किया वह विचारधारा एवं सामाजिक चेतना के अध्ययन का कोई खास पद्धति-मूलक रूप नहीं था, अपितु मूलभूत रूप से नये सामाजिक तथा बुद्धिवादी दृष्टिकोण का विवेचन था जो इन घटनाक्रियाओं तथा विचारधारा के वैज्ञानिक सिद्धांत के विकास की समुचित व्याख्या को सुनिश्चित करता था।

विचारधारा के सामान्य सिद्धांत का निर्माण अतीत विचारधाराओं—बुर्जुआ तथा निम्न मध्य वर्गीय—के विस्तृत अध्ययन का परिणाम था, जिसने उनकी अंतर्वस्तु एवं विशिष्ट लक्षणों को उद्घाटित किया। विचारधारा का वैज्ञानिक सिद्धांत निर्मित करने की प्रक्रिया मार्क्स द्वारा की गयी मिथ्या (भ्रामक) विचारधारात्मक चेतना की आलोचना के समानांतर आगे बढ़ी। मार्क्सवादी दर्शन एवं समाजशास्त्र में विचारधारा की श्रेणी किसी भी तरह स्थिर अथवा मृतप्राय स्थिति में नहीं थी बल्कि निरंतर विकास की अवस्था में थी क्योंकि सामाजिक

व्यवहार एवं वैज्ञानिक विकास के बारे में नये तथ्य प्रकाश में आ रहे थे।

विचारधारा—जो कि आध्यात्मिक एवं बौद्धिक उत्पादन का रूप है—
सामान्य पूर्वापेक्षाएँ सामाजिक अस्तित्व की किस्म में, सामाजिक-आर्थिक प
स्थितियों में तथा संबंधित युग के चरित्र में खोजी जा सकती हैं। साथ ही, व
संघर्ष के विशिष्ट लक्षण, सामाजिक अंतर्विरोधों की तीव्रता की मात्रा, त
व्याप्त आध्यात्मिक वातावरण—जिसमें सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परंपर
सम्मिलित होती हैं—सब मिलकर विचारधारात्मक रूपों पर अपना असर दिख
हैं। यह कहना ही काफी होगा कि शुरू की पूँजीवादी क्रांतियों ने फ्रांसीसी भौति
वाद एवं समूचे प्रबोधन के लिए तथा जर्मन क्लासिकी भाववाद के लिए उपजा
जमीन का काम किया। हालाँकि इन दो विचारधारात्मक प्रणालियों में उक्त यु
के समान मूलभूत प्रश्नों की अभिव्यक्ति अलग-अलग तरह से हुई तथा ये भेद 18
शताब्दी के अंत में फ्रांस की तथा 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में जर्मनी की ठो
परिस्थितियों की भिन्नता के मूर्त रूप थे। साथ ही, फ्रांसीसी तथा जर्मन बूर्ज
वर्ग की राजनीतिक भूमिका के महत्वपूर्ण अंतर की भी अभिव्यक्ति थे।

विचारधारात्मक अवधारणाओं—जितने भर में वे जीवन की सामाजि
आर्थिक परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होती हैं—का निर्माण काल विशेष
संचित बौद्धिक उपादान के स्वरूप, तथा ज्ञान एवं संस्कृति के अर्जित स्तर पर सीधे
तौर पर आश्रित होता है। इससे स्पष्ट है कि मानवता द्वारा संचित संपूर्ण ज्ञान-
संपदा पर अधिकार प्राप्त करने की दृष्टि से पूर्व में किये गये चौमुखी आलोचनात्मक
बौद्धिक कार्य के बिना सर्वहारा की विचारधारा का विकास कर पाना असंभव ही
होता। समाजवादी विचारधारा के वैज्ञानिक स्वरूप ने अतीत की बौद्धिक एवं
आध्यात्मिक विरासत के प्रति उसके रचनात्मक आलोचनात्मक दृष्टिकोण को
निर्धारित किया है। सर्वहारा की विचारधारा के उदय का अर्थ था तमाम पूर्ववर्ती
विचारधाराओं पर विजय, और इस मायने में यह आध्यात्मिक एवं बौद्धिक जीवन
के क्षेत्र में वैचारिक क्रांति की प्रतीक थी। साथ ही नई विचारधारा एक विज्ञान
थी तथा समस्त वैज्ञानिक ज्ञान की तरह ही सैद्धांतिक स्रोतों के निश्चित समुच्चय
से ऊर्जा प्राप्त कर रही थी, तथा मानवता की पूर्ववर्ती सांस्कृतिक प्रगति के संपूर्ण
प्रवाह द्वारा निर्मित की गयी थी।

समाजवाद का विज्ञान—वैज्ञानिक समाजवादी विचारधारा—के रूप में
उदय [illegible] में इसी समय हुआ जबकि विचारधारा का सामान्य सिद्धांत विकसित
हो रहा था, और यह चेतना की सापेक्षिक स्वतंत्रता, मानव क्रियाव्यापार के
विशिष्ट प्रकार के रूप में विज्ञान एवं आध्यात्मिक उत्पादन की अवधारणा, तथा
सैद्धान्तिक परिष्कार व अन्तर्निहित कारक की पहचान जैसे सिद्धान्त एवं ज्ञान के
बुनियादी प्रश्नों से इतना गहरे रूप में जुड़ा हुआ था कि इन्हें पृथक नहीं किया जा
सकता।

किसी वैज्ञानिक सिद्धांत को परिभाषित करने का अर्थ है इससे संबंधित समस्याओं के क्षेत्र व इसके द्वारा आवेष्टित घटनाक्रियाओं की सीमाओं को परिभाषित करना। सामाजिक ज्ञान के एक विशिष्ट रूप की हैसियत से विचारधारा के सिद्धांत पर लागू किये जाने पर यह पद्धतिमूलक नियम सामाजिक संबंधों की प्रणाली के भीतर विचारधारा का स्थान एवं भूमिका, विभिन्न सामाजिक संरचनाओं में विचारधारात्मक प्रणालियों की क्रियाविधि के विशिष्ट लक्षणों तथा विचारधारा के संज्ञानात्मक एवं सामाजिक कार्य जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों को आलोकित करता है। विचारधारा के वैज्ञानिक सिद्धांत के लिए अनिवार्य है कि वह विचारधारात्मक प्रक्रियाओं के विकास एवं क्रियाविधि को संचालित करने वाले आंतरिक नियमों, किसी विचारधारात्मक प्रणाली की सामाजिक-राजनीतिक एवं विचारधारात्मक अंतर्वस्तु के अन्योन्याश्रय तथा प्रचार विधियों एवं प्रभाव के रूपों से जुड़े महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत कर सके। साथ ही, उसे समाज के सदस्यों की "व्यावहारिक" चेतना में विचारधारा के निश्चित परावर्तन तथा नैतिकता, नीतिशास्त्र, कला एवं साहित्य जैसी जटिल घटनाक्रियाओं से जुड़े बुनियादी प्रश्नों के उत्तर भी देने चाहिए।

पूंजी का लेखन प्रारंभ करने से पूर्व, आर्थिक चिंतन के इतिहास की पड़ताल करते समय मार्क्स ने वैज्ञानिक सिद्धांत की अंतर्वस्तु की समझ के लिए "विश्लेषण के निर्णायक चरणों" की पहचान के महत्व को रेखांकित किया था।[1] "विश्लेषण के निर्णायक चरणों" के मूलभूत महत्व का विचार आर्थिक सिद्धांतों के चौखटे के परे जाकर किसी भी सामाजिक सिद्धांत की व्युत्पत्ति के अध्ययन का सार्वदेशिक पद्धतिमूलक नियम बन जाता है। वैज्ञानिक सिद्धांत के विकास में ऐसा एक "निर्णायक चरण" मार्क्स-एंगेल्स द्वारा लिखित जर्मन विचारधारा है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद द्वारा विचारधारा की समस्या के निरूपण की समझ की दृष्टि में इस पुस्तक का महत्व अप्रतिम है।

विचारधारा के विभिन्न रूपों की परीक्षा के क्रम में मार्क्स-एंगेल्स ने भौतिकवादी इतिहासवाद का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उनका कहना था : "····किंतु हमें मनुष्यों के इतिहास की पड़ताल करनी होगी क्योंकि संपूर्ण विचारधारा या तो इस इतिहास की विकृत अवधारणा है अथवा इसका नितांत अमूर्तन है। विचारधारा इतिहास के पक्षों में से मात्र एक है।"[2] यहाँ इस बात का एकदम स्पष्ट संकेत है कि सामाजिक चेतना के समस्त पूर्ववर्ती विचारधारात्मक रूप एक ओर तो

1. कार्ल मार्क्स, ग्रंडरीस—राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा—मास्को, 1941, पृ० 843 (जर्मन में)
2. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा', संकलित रचनाएँ, खंड 5, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ० 29

वास्तविक ऐतिहासिक प्रक्रिया के मिथ्या एवं विकृत प्रतिबिंब थे और इस अर्थ में मात्र विचारधारा का ही प्रतिनिधित्व करते थे। दूसरी ओर मार्क्स एवं एंगेल्स विचारधारात्मक को यथार्थ के प्रतिरूप की कारण-कार्य न्याय पर आधारित रचना के समानार्थी के रूप में निरूपित करते हैं जबकि विचारधारा को स्वतंत्र इकाई के रूप में नहीं बल्कि वास्तविक इतिहास के एक निश्चित पक्ष के रूप में ही समझा जा सकता है।

इस क्रम में यह मान्यता कि "विचारधारा इस इतिहास के पक्षों में से मात्र एक है" सामाजिक जीवन के भौतिकवादी दृष्टिकोण की आधारशिला है जो कि सामाजिक चेतना के प्रत्येक रूप पर, तथा खास तौर से विचारधारात्मक आकृतियों पर लागू होती है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि मार्क्स एवं एंगेल्स ने ये परिभाषाएँ "विश्वविद्यालयी विभागों के एकान्तमय शैक्षिक वातावरण" में नहीं, अपितु अत्यंत वास्तविक वैचारिक एवं सैद्धांतिक संघर्ष के दौरान विकसित की थी तथा ये परिभाषाएँ उन व्यावहारिक राजनीतिक कार्यों के निष्पादन से सीधी जुड़ी हुई थीं जिनका सामना वैज्ञानिक कम्युनिज्म के संस्थापक कर रहे थे।

उनके सामने सबसे जरूरी राजनीतिक एवं सैद्धांतिक कार्य इतिहास एवं ऐतिहासिक कर्म संबंधी तरुण हेगेलवादी अवधारणा की धज्जियाँ उड़ाना था। उक्त आलोचना के सबक आज दिन तक अपनी सार्थकता बनाये हुए हैं। विचारधारात्मक एवं दार्शनिक प्रकृति के रूप में तरुण-हेगेलवाद अंतर्वस्तु एवं चिंतन दोनों ही दृष्टियों से निम्न-मध्यवर्ग की चेतना का लाक्षणिक प्रतीक था। मार्क्स-एंगेल्स ने यह समझ लिया कि सामाजिक विकास की तरुण हेगेलवादी अवधारणा के समर्थक "....इतिहास में चमत्कारिक राजनीतिक घटनाओं तथा धार्मिक एवं अन्य सैद्धांतिक संघर्षों को ही देख पाये हैं, और यह भी कि प्रत्येक ऐतिहासिक युग के संदर्भ में वे "उस युग के भ्रम में सम्मिलित होने"[1] को विवश हुए थे।

मार्क्स एवं एंगेल्स ने भाववादी इतिहास लेखन तथा संसार संबंधी स्वैच्छिक, आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण की जड़ों का पर्दाफाश किया और रेखांकित किया कि जब "कल्पना" एवं 'धारणाओं' के आधार पर कुछ व्यक्ति अपने क्रिया-व्यापार अथवा उन "धार्मिक" तथा "राजनीतिक" उत्प्रेरणाओं (जिन्हें वे नियामक मानते हैं) के क्रम में 'इतिहास के फ़ैसले' को अस्वीकार कर देते हैं, तो यह दृष्टिकोण वास्तविक ऐतिहासिक कारकों, वास्तविक सामाजिक प्रवृत्तियों—जिनमें ऐतिहासिक प्रगति की वास्तविक चालक शक्ति निहित होती है तथा जो संघर्ष में संलग्न शक्तियों की विचारधारा, मनोविज्ञान एवं उत्प्रेरणाओं को परिभाषित करती है—के विश्लेषण को अनावश्यक मानकर छोड़ देता है। मार्क्स एवं एंगेल्स ने आत्मनिष्ठ निर्मितियों के अस्वीकार्य स्वरूप को प्रदर्शित करते हुए कहा कि पहले तो "कल्पना" और

1. मार्क्स-एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा', पृ० 55

"धारणाओं" को वास्तविक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा उसके बाद उस कमजोर नींव पर घटनाओं के यथार्थ प्रवाह को निर्मित किया जाता है। इस प्रकार इतिहास के जीवंत ऊतक को भ्रमों एवं पूर्वाग्रहों के जाले से ढक दिया जाता है।

मार्क्स एवं एंगेल्स ने विकृत चेतना के विश्लेषण में एकदम नया दृष्टिकोण अपनाया। ऐसा नहीं है कि यह पहला अवसर था जबकि सामाजिक चिंतन के इतिहास में भ्रामक निर्मितियाँ आलोचना का शिकार बनी। प्राक्-मार्क्सी दर्शन में भी—जैसा कि "सत्य एवं अनाच्छादित" तथा "असत्य" एवं मिथ्या चेतना के बीच विवाद से स्पष्ट है—इस प्रकार की चेतना के संकेत मिलते हैं। फ्रांसिस बेकन के **नोवम आरगनम** की ओर संकेत करना ही काफी होगा क्योंकि यह कृति उन मूर्तियों एवं मिथ्या धारणाओं का अध्ययन प्रस्तुत करती है जिन्होंने कि मानव चेतना पर कब्जा कर रखा है तथा जो उसमें गहरे समाये हुए हैं। मार्क्स एवं एंगेल्स समस्या को मूलभूत रूप से नये आलोक में देखते हैं तथा चेतना के विकृत रूपों को उत्पन्न करने एवं सुदृढ़ बनाने वाले ज्ञानशास्त्रीय स्रोतों को ही नहीं बल्कि उनके सामाजिक-आर्थिक कारणों एवं वर्गीय उत्प्रेरकों को भी सुनिश्चित करते हैं। मार्क्स एवं एंगेल्स "समाज की शरीर रचना" के सुव्यवस्थित विश्लेषण के आधार पर "आत्मा के शरीर क्रिया-विज्ञान" का निष्कर्ष निकालने में सफल होते हैं। अतः रहस्यावृत्त चेतना की पहेली जितनी भासमान होगी, यथार्थ चेतना की अंतर्वस्तु, वैज्ञानिक विचारधारा की विषय-वस्तु तथा समस्याओं की परिधि भी उतनी ही अधिक स्पष्ट होगी।

चेतना के विकृत रूपों की आलोचना के लिए मार्क्स एवं एंगेल्स "इन सभी के समान वैचारिक आधारों"[1] की पहचान को महत्वपूर्ण मानते थे, क्योंकि ये मनुष्यों के मस्तिष्क में सामाजिक अस्तित्व के विकृत प्रतिबिंबन का रूप ग्रहण कर लेते हैं। आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से प्रभावशाली शोषक वर्ग के वर्ग हितों द्वारा विचारधारा में विकृत प्रतिबिंबन को पुख्ता किया जाता है।

इस प्रकार भ्रामक चेतना दुहरी विसंगति को प्रदर्शित करती है। वास्तविकता एवं उसके संज्ञान के बीच का यह अपसरण व्यक्ति की कल्पना तथा वास्तविक कर्म, और वास्तविक उपलब्धियों तथा इन उपलब्धियों के भ्रमों[2] के मध्य रात-दिन (सुख-दुख) के वैषम्य को जन्म देता है। इतिहास का भौतिकवादी विश्लेषण इस विसंगति की—जोकि चेतना के रहस्यों के दुर्भाग्यों में से एक है—पहली विवेकपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करता है। "जर्मन विचारधारा" इस व्याख्या की शुरुआत है।

1. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा', पृ० 28
2. वही ।

तरुण हेगेलवादियों ने, नास्तिकों तथा निम्न मध्यवर्गीय उग्र सुधारवादियों की तरह ही, इस उम्मीद मे विकृत चेतना को आलोचनात्मक अथवा "सत्य" चेतना के बरक्स रखा कि इस तरह से मानव मस्तिष्क के "भयानक भ्रमों" को दूर कर पाने मे सफल होंगे। जहाँ तक मार्क्स-एंगेल्स का संबंध है उन्होंने इस उत्तरोत्तर प्रबोधक दृष्टिकोण—जो पूरी तरह से चेतना पर भरोसा करता है—की काट करने के लिए इसके बरक्स एक क्रांतिकारी व्यावहारिक दृष्टिकोण रखा जोकि वास्तविकता को बदलने के लिए कर्म को आवश्यक मानता है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत चेतना को रहस्यात्मकता से मुक्त करने के लिए स्वयं यथार्थ को रहस्यात्मकता से मुक्त किया जाना आवश्यक माना जाता है, और ये दोनों काम एक-दूसरे के साथ होते हैं। दूसरे शब्दों में, भ्रामक चेतना से मुक्ति पाने के लिए जरूरी है कि उस सामाजिक व्यवस्था से पीछा छुड़ाया जाये जो भ्रमों को उत्पन्न करती है, कायम रखती है तथा जरूरी मानती है।

मार्क्स-एंगेल्स ने निम्न-मध्यवर्गीय उग्र सुधारवाद को उसकी आभा से वंचित करके यह सिद्ध कर दिया कि चेतना का उग्र स्वरूप शब्द-विन्यास से निर्धारित नहीं होता, यह कितना ही गर्जन-तर्जन वाला क्यों न हो, 'बल्कि उस चेतना के वास्तविकता के साथ संबंधों से निर्धारित होता है। उन्होंने लिखा : "क्योंकि, इन लोगों की प्रणाली के अनुसार मनुष्यों के संबंध, उनके समस्त कृत्य, 'उनकी बेड़ियाँ तथा उनकी सीमाएँ उनकी चेतना की उपज हैं, ये तरुण हेगेलवादी मनुष्यों के सामने अपनी वर्तमान चेतना के बदले में मानवीय, आलोचनात्मक अथवा अहंवादी चेतना प्राप्त करने की, तथा इस प्रकार अपनी सीमाओं को दूर करने की नैतिक पूर्वधारणा प्रस्तुत करते हैं। चेतना को बदलने की इस माँग का अर्थ है आज की दुनिया की अलग तरह से व्याख्या करने की माँग करना, यानी अपनी दुनिया को भिन्न व्याख्या के माध्यम से पहचानना। अपने तमाम "गर्जन-तर्जन" के बावजूद तरुण हेगेलवादी सिद्धान्तकार घोर रूढ़िवादी हैं।"[1]

तरुण हेगेलवादियों के दार्शनिक भाववाद तथा राजनीतिक उग्रवाद के विपरीत, मार्क्स-एंगेल्स ने मौजूदा चेतना पर विजय प्राप्त करने को वास्तविकता के विशिष्ट ऐतिहासिक रूप—पूँजीवादी सामाजिक संबंधों पर क्योंकि यह उन्हीं की भ्रामक अभिव्यक्ति है—पर विजय प्राप्त करने के रूप में देखा। यह मूलभूत दृष्टिकोणवादी सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया तथा जर्मन विचारधारा में सम्मिलित किया गया। यह एक क्रांतिकारी सिद्धान्त है, कम्युनिस्ट सिद्धांत है।

जहाँ तक तरुण हेगेलवादियों के उग्र सुधारवाद का प्रश्न है, जिसे उन्होंने गला फाड़ कर घोषित किया, वे "यह भूल जाते हैं कि वे मात्र शब्दों का विरोध शब्दों

---

1. मार्क्स-एंगेल्स, "जर्मन विचारधारा", पृष्ठ 30

से कर रहे हैं, और यह कि इस संसार के मात्र शब्दों से संघर्ष करके वे वास्तविक मौजूदा संसार से कतई संघर्ष कोई नहीं कर रहे हैं।"[1]

चेतना के क्षेत्र में अपनी आलोचनात्मक कार्यवाही के दायरे में तरुण हेगेलवादियों की उपलब्धियां मामूली थी। वे "पुरानी" चेतना को मूलभूत तरीके से बदल पाने में असफल रहे क्योंकि वे उसी के चक्कर के फंसे रहे। यही नहीं, मौजूदा चेतना को अन्य—अधिक आलोचनात्मक—चेतना से बदलने की उनकी अधिक स्पष्ट मांग भी पूरी तरह अव्यावहारिक सिद्ध हुई। मार्क्स-एंगेल्स ने इस मांग के काल्पनिक चरित्र का पर्दाफाश करते हुए वस्तुतः विचारधारा के मार्क्सवादी सिद्धांत के एक अत्यंत बुनियादी समस्या पर ध्यान दिया तथा विचारों के उत्पादन व विचारधारा के जन्म के इर्द-गिर्द की परिस्थितियों का पता लगाया और उन पूर्वापेक्षाओं पर भी विचार किया जोकि जन चेतना के क्रांतिकारी रूपांतरण को संभव बनाती हैं। मार्क्स ने अपनी विश्व-प्रसिद्ध फ़ायरबाख़ संबंधी लेख में एक क्लासिकीय सूक्ति को निरूपित किया "दार्शनिकों ने अभी तक दुनिया को अलग-अलग तरह से व्याख्यायित ही किया है, सवाल असल में दुनिया को बदलने का है।"[2]

वास्तविकता की अलग व्याख्या के माध्यम से चेतना को बदलने के प्रयासों में, जैसाकि तरुण हेगेलवादियों ने किया था, वस्तुतः चेतना को युक्तिपूर्वक चलाने संबंधी पूंजीवादी अवधारणा की शुरुआत देखी जा सकती है। इस युक्ति-चालन का अर्थ एवं उद्देश्य मनुष्य को यथार्थ से काटना, जीवन की जटिल समस्याओं से कतरा कर निकल जाना तथा चेतना को रहस्यात्मकता एवं भ्रमों की बेगानी दुनिया के भीतर सीमित कर देना था। स्वाभाविक तौर पर तरुण हेगेलवादी उस अर्थ में चाटुकार नहीं थे जिस अर्थ में आज के पूंजीवादी सिद्धांतकार हैं जोकि चेतना के साथ युक्तिमय खिलवाड़ करते हैं, तथापि इतिहास और चेतना की उनकी आत्म-निष्ठ-भाववादी अवधारणा एक विकृत चेतना—सामंती-धार्मिक—को दूसरी विकृत चेतना—बूर्ज्वा-धर्मनिरपेक्ष—से ही बदल पाई।

जर्मन विचारधारा में जो विचार-संपदा समाहित है वह तरुण हेगेलवादी दर्शन की आलोचना तक ही सीमित नहीं है बल्कि उससे परे भी उसका महत्व है। इस दर्शन की आलोचना करते हुए मार्क्स-एंगेल्स ने सभी प्रकार के सामाजिक कल्पनालोकों एवं विचारधारात्मक भ्रमों की आलोचना के लिए उपयुक्त पद्धतिशास्त्र विकसित किया—एक ऐसा पद्धतिशास्त्र जो वस्तुगत सामाजिक कारणों, उनके प्रकट होने की ज्ञानशास्त्रीय जड़ों व जन चेतना पर उनके प्रभाव को गहराई से विश्लेषित करने में सहायक है।

---

1 मार्क्स-एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा', पृष्ठ 30

2 कार्ल मार्क्स, 'फ़ायरबाख संबंधी थीसेज़', संकलित रचनाएँ, खंड 5, पृ० 8

स्थिति विचारधारा की मार्क्सवादी अवधारणा की श्रेणियों व वर्गीकरण के विकास को भी प्रभावित किये बिना न रह सकी। इस तथ्य को कि विचारधारा का वैज्ञानिक सिद्धांत विकसित करते हुए तथा समाजवादी विचारधारा निर्मित करते हुए मार्क्स-एंगेल्स ने इसे विचारधारा के रूप में उल्लिखित नहीं किया, मार्क्सवाद-विरोधी समझने की कोशिश कर रहे हैं तथा यह आरोप लगाने का प्रयास कर रहे हैं कि वैज्ञानिक कम्युनिज्म के संस्थापकों ने सकारात्मक ज्ञान के रूप में विचारधारा को नकारा। ज्ञातव्य है कि मार्क्स-एंगेल्स ने विचारधारा को सामाजिक संज्ञान के रूप में नहीं अपितु विरोधपूर्ण सामाजिक संबंधों से उत्पन्न विकृत, रहस्यावृत्त, युक्तिचालित चेतना के रूप में नकारा था।

क्लासिकीय पूंजीवादी आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक, दार्शनिक चिंतन के विकास का संपूर्ण विश्लेषण करके मार्क्स-एंगेल्स ने पूर्ववर्ती विचारधाराओं की व्यापक समीक्षा प्रस्तुत की तथा उक्त चिंतन के प्रखरतम प्रतिनिधियों की वास्तविक भूमिका को तो प्रदर्शित किया ही उसके नकलचियों का भी सटीक एवं समग्र चित्रण किया। सामाजिक ज्ञान के इतिहास से प्राप्त ठोस सामग्री की संपदा को आधार बनाकर उन्होंने विचारधारा के आंतरिक विकास को संचालित करने वाले नियमों व इसके सामाजिक कार्यों को रेखांकित किया तथा महत्वपूर्ण साधारणीकरण प्रस्तुत किये।

चेतना के अध्ययन में मार्क्स की पद्धति का विशिष्ट लक्षण खास सामाजिक संबंधों के प्रतिबिंबन के रूप में खास विचारधारात्मक रूपों की सामाजिक अंतर्वस्तु का निर्धारण तो है ही, उनके (सामाजिक संबंधों) ऐतिहासिक अर्थ तथा मनुष्यों का विश्व दृष्टिकोण निर्मित करने में उनकी भूमिका का प्रमाणीकरण भी है। मार्क्स ने लिखा : "वास्तविकता में, विश्लेषण के माध्यम से धर्म की कुहासेभरी निर्मितियों के लौकिक केन्द्रीय तत्व को खोज पाना काफी आसान है, जबकि विलोमत: उतना आसान नहीं है : जीवन के वास्तविक संबंधों से ही उन संबंधों के अलौकिक रूपों को विकसित किया जाना चाहिए। यह दूसरी पद्धति ही एकमात्र भौतिकवादी पद्धति है, और इसीलिए एकमात्र वैज्ञानिक पद्धति भी है।"[1] स्वाभाविक है कि हम मात्र धार्मिक धारणाओं के अध्ययन की ही नहीं अपितु विचारधारा के समस्त रूपों के अध्ययन की वैज्ञानिक पद्धति की चर्चा कर रहे हैं।

इस समस्या का बुनियादी महत्व इस तथ्य से भी सिद्ध होता है कि अधिकांश दार्शनिकों तथा समाजशास्त्रियों ने इसकी वास्तविक अंतर्वस्तु को बेहद मनमाने ढंग से निरूपित किया है। कार्ल मानहाइम जोर देकर कहते हैं : "शुरू में ही, इस बात को आसानी से सिद्ध किया जा सकता है कि समाजवादी तथा कम्युनिस्ट ढंग से सोचने वाले लोग अपने विरोधियों के चिंतन में तो विचारधारा को खोज लेते हैं

1. कार्ल मार्क्स, पूंजी, खंड 1, पृ० 352

किन्तु जहाँ तक स्वयं उनके चिंतन का प्रश्न है उसे वे विचारधारा की छाया तक से पूरी तरह मुक्त मानते हैं।"[1] इससे मार्क्सवाद पर पूर्ववर्ती विचारधारात्मक अवधारणाओं तथा अपनी अंतर्वस्तु, दोनों ही के संदर्भ में स्वयं को निरपेक्ष तत्त्व के रूप में प्रस्तुत करने का आरोप लगाने का प्रयास किया जाता है।

यह कोई नया प्रयास नहीं है। पूँजीवादी तथा निम्न पूँजीवादी खेमे के कई आलोचक मार्क्सवाद के जन्म के समय से ही यह आरोप लगाते रहे हैं कि मार्क्सवादी लोग सर्वहारा को पवित्र रूप में प्रस्तुत करके उसे देव तुल्य बना रहे थे, कि अपनी विचारधारा को एकदम निरपेक्ष तथा अंतिम अवस्था एवं शब्द तक प्रमाणित एवं अचूक चित्रित करके उसे मसीही स्वरूप प्रदान कर रहे थे। मार्क्स-एंगेल्स ने द होली फ़ैमिली में साफ़-साफ़ यह कहकर कि "जब समाजवादी लेखक सर्वहारा की भूमिका को विश्व-ऐतिहासिक बताते हैं तो ऐसा नहीं है कि वे सर्वहारा वर्ग के लोगों को देवताओं के रूप में देखते हैं जैसाकि आलोचनात्मक आलोचना विश्वास करने का नाटक रच रहे थे···सवाल यह है कि सर्वहारा है क्या तथा इस होने के अनुरूप यह ऐतिहासिक रूप से क्या करने को विवश होगा।"[2]

मार्क्सवाद में रत्ती भर भी मसीहावाद नहीं है, वैज्ञानिक विचारधारा के रूप में इसके विकास काल से लेकर अभी तक कभी भी नहीं रहा। दरअसल, मार्क्सवाद मसीही सिद्धांत—"यही सच है, इसके समक्ष झुक जाओ।"—के विरुद्ध क्रांतिकारी कर्म एवं संघर्ष के सिद्धांत, जो वैज्ञानिक ज्ञान का सिद्धांत है, को प्रस्तुत करता है।

विचारधारात्मक धारणाओं की वैज्ञानिक सटीकता एवं अचूकता की समस्या का हल भौतिकवादी इतिहासवाद की सुसंगत क्रियान्विति के माध्यम से ही हो सकता है।

विचारधारा के इतिहास को मोहक मानवीय भ्रांतियों एवं चूकभरी धारणाओं की वीथी के रूप में घटित करना मार्क्सवाद के स्वभाव के प्रतिकूल है। मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति का पूर्ववर्ती विकास मार्क्सवादी दृष्टि से उसकी भौतिकवादी व्याख्या में मानवीय तर्क एवं विवेक के गौरवशाली भ्रमण के रूप में ही देखा जा सकता है। दार्शनिक, सामाजिक-राजनीतिक एवं आर्थिक ज्ञान के रूप में व्यक्त किसी भी वैचारिक धारणा को उसके पूर्ववर्ती सिद्धांतों की अविच्छेद कड़ी के रूप में ही देखा जाना चाहिए।

इतिहास-पुरुषों द्वारा की गयी इतिहास की सेवाओं के मूल्यांकन का आधार यह नहीं हो सकता कि आज के मानदंडों के हिसाब से वे क्या नहीं कर पाये, बल्कि

---

1. कार्ल मानहाइम, विचारधारा एवं कल्पना लोक, ज्ञान के समाजशास्त्र की भूमिका, लंदन, 1936, पृ० 111
2. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'पवित्र परिवार' संकलित रचनाएँ, खंड 4, पृ० 37

यह होता है कि अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में क्या नई चीजें पैदा कर पाये, उपलब्ध बौद्धिक सामग्री का कैसा व्यावहारिक उपयोग कर पाये। उक्त मूल्यांकन का आधार यह भी होता है कि वे अपने समय की राजनीतिक एवं विचारधारात्मक चुनौतियों का सामना करने में सक्षम व समर्थ थे अथवा नहीं। किसी भी विचार-धारात्मक अवधारणा की दार्शनिक संस्कृति एवं वैज्ञानिक स्तर की प्रमुख कसौटी मानव जाति द्वारा संचित ज्ञान राशि के उपयोग करने की क्षमता एवं कुशलता को ही माना जा सकता है। मार्क्सवाद—जिसने मानवीय मनीषा की महानतम रचनाओं एवं उपलब्धियों को आत्मसात कर लिया है, जिसने पिछली दो सह-स्राब्दियों के दौरान विकसित मानवीय ज्ञान का आलोचनात्मक विश्लेषण किया है तथा उसके आधार पर वैज्ञानिक दृष्टि से साधारणीकरण किया है—उक्त क्षमता का श्रेष्ठतम उदाहरण है।

यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि प्राक्-मार्क्सी विचारधारा में सामाजिक-दार्शनिक ज्ञान की विभिन्न समस्याओं का विवेचन अपूर्ण था तथा यह भी कि मार्क्सवाद के उदय तक विचारधारा विज्ञान का रूप नहीं ले पायी थी। किन्तु मार्क्सवादियों के लिए विचारधारा का इतिहास आलोचना का ऐसा विषय है जो नकार के स्थान पर खोज को रेखांकित करता है। मार्क्स-एंगेल्स का मानना था कि दार्शनिक, आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक एवं विधिक ज्ञान के माध्यम से सामाजिक कल्पनालोकों के रूप में व्यक्त प्राक्-मार्क्सी विचारधारा की अंतर्वस्तु को मिथ्या चेतना, भ्रामक विश्व दृष्टि के रूप में नहीं घटाया जा सकता। क्लासिकीय पूँजीवादी विचारधारा के सामाजिक नियमों ने पूँजीवादी सामाजिक मनीषा के अत्यंत प्रतिभाशाली प्रतिनिधियों—फ्रांसिस बेकन से लुडविग फायर-बाख तक तथा विलियम पेटी से डेविड रिकार्डो तक—ने दिशा दी तथा ज्ञान के सीमांतों को बढ़ाने में सहायता दी।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद का वर्गीय सार-तत्व आध्यात्मिक मूल्यों के कुत्सित समाजशास्त्रवादी दृष्टिकोण से किये गये विश्लेषण—जिसका परिणाम सांस्कृतिक-बौद्धिक प्रगति के जटिल एवं अंतर्विरोधी चित्र का अस्वीकार्य सामान्यीकरण तथा वास्तविक सांस्कृतिक मूल्यों को विरासत में प्राप्त करने के अधिकार का नकार होता है—को अपने स्वभाव के सर्वाधिक प्रतिकूल मानता है। समाजशास्त्रीय आदिमवाद के विरुद्ध सुसंगत एवं अटल संघर्ष की दीर्घ मार्क्सवादी परंपरा है जिसकी मार्क्स द्वारा नींव रखी गयी थी तथा लेनिन ने जिसे विकसित करके निरंतरता प्रदान की।

वी० शुल्यातिकोव की पुस्तक **पश्चिम-यूरोपीय दर्शन** (देकार्त से माख तक) में **पूँजीवाद का औचित्य** पर अपनी टिप्पणी में लेनिन ने लेखक के पूँजीवादी समाज की वर्गीय संरचना तथा पूँजीवादी उत्पादन के संघटन के विश्लेषण में सार-तत्व,

पदार्थ, गति एवं अन्य ऐसी ही तार्किक श्रेणियों के बारे में निष्कर्ष निकालने के मनोविकार एवं बेतुके प्रयासों को रेखांकित किया। लेखक के छद्म-वैज्ञानिक वाक्-चातुर्य की आलोचना करते हुए लेनिन ने लिखा : "आगे बढ़ो, और भाववाद लेकर संशयवाद तक सबको गड्ड-मड्ड कर दो! प्रत्येक चीज उत्पादन के अनुरूप है। कामरेड शुल्यातिकोव भोले हैं, बहुत भोले।"[1] यह भोलापन बहुत खतरनाक था, चोरी करने से भी खराब, क्योंकि यह मानवीय चिंतन को लूटने जैसा था।

प्लेखानोव, जोकि मार्क्सवाद के प्रमुख प्रचारक थे, ने शुल्यातिकोव की ओर सीधा संकेत करते हुए व्यंग्यात्मक शैली में लिखा कि कुछ लोग दर्शन के इतिहास के बारे में मार्क्स की दृष्टि का विश्लेषण मोटे तौर पर यूँ करेंगे : यदि काट का सरोकार मीमांसात्मक सौंदर्यशास्त्र से था, यदि उन्होंने तर्क की श्रेणियों अथवा तर्क के विरोधों की चर्चा की तो उन्होंने शब्दों के अलावा दिया क्या! वस्तुतः उनकी रुचि न तो सौंदर्यशास्त्र में थी और न विरोधों अथवा श्रेणियों में। कुल मिलाकर वह जो चाहते थे वह अपने वर्ग—जर्मन बूर्ज्वा वर्ग—के लोगों के सामने अधिकाधिक स्वादिष्ट पकवान तथा सुन्दर रखैलें प्रस्तुत करने जैसा था। काट की दृष्टि में श्रेणियाँ एवं विरोध ऐसा करने के शानदार माध्यम हो सकता था और इसीलिए उन्होंने इनका व्यवसाय करने का निर्णय लिया।[2]

शुल्यातिकोववाद जिसे लेनिन ने "इतिहास में मार्क्सवाद के उपहास चित्र" की सही संज्ञा दी, तथा जिसने प्लेखानोव को क्रुद्ध कर दिया—कुत्सित समाजशास्त्रवाद का पर्याय बन गया। शुल्यातिकोव की रचनाओं में इस कुत्सित समाजशास्त्रवाद के भोंड़े व हास्यास्पद रूप निरापद नहीं हैं क्योंकि कुत्सित समाजशास्त्रवाद मार्क्सवादी वर्गीय दृष्टिकोण की सत्ता व प्रामाणिकता की दुहाई देता फिरता है तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद की ओर से बोलने की कोशिश करता है अतः सामाजिक घटनाक्रियाओं—दर्शन, साहित्य एवं कला जैसे जटिल सांस्कृतिक-ऐतिहासिक मूल्यों के क्रम में—के वर्गीय दृष्टिकोण से किये जाने वाले सटीक वैज्ञानिक अध्ययन एवं मूल्यांकन में मार्क्सवादी पद्धतियों का परित्याग करने की सामर्थ्य रखता है। लेनिन ने शुल्यातिकोव जैसों के छद्म-वैज्ञानिक, छद्म-मार्क्सवादी प्रयोगों के विरुद्ध ऐतिहासिक कालों, संरचनाओं एवं विचारधाराओं की सटीक व्याख्या की आवश्यकता प्रतिपादित की।

क्लासिकीय पूँजीवादी विचारधाराओं के साझे भ्रमों एवं मिथकों को उन

---

1. वी० आई० लेनिन, 'वी० शुल्यातिकोव पश्चिम-यूरोपीय दर्शन (देकार्त से माख तक) में पूँजीवाद का औचित्य', संकलित रचनाएँ, खंड 38, पृ० 493
2. चयनित दार्शनिक रचनाएँ—पाँच खंडों में, खंड 3, पृ० 299-305

विशिष्ट चितकों—जो कुछ चीजों को ग्रहण करने मे असफल रहे व अन्य कुछ चीजों के बारे मे सही चिंतन करने मे असमर्थ रहे—ये भटकावों एवं भ्रमों के रूप मे चित्रित नही किया जाना चाहिए। ये भ्रम मात्र उनके ही दोष नही थे अपितु संपूर्ण ऐतिहासिक युग के दोष थे। ये उस युग के दोष थे जिसकी विशिष्टता सामंती संबंधों के विघटन तथा राष्ट्रों, राष्ट्र-राज्यों एवं विश्व इतिहास के उदय मे लक्षित की जा सकती है।

सामंती प्रतिक्रिया के खिलाफ संघर्ष के दौरान क्लासिकीय बूर्ज्वा चिंतन ने जो विचार दिये उनमे सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राकृतिक मनुष्य की अवधारणा थी—प्राकृतिक न्याय की धारणा, वास्तविक सामाजिक व्यवस्था जिसके अनुरूप होनी चाहिए। प्रारंभिक पूंजीवादी चिंतकों ने इस विचार को मानवीय उपक्रम के प्रत्येक आधारभूत क्षेत्र मे विकसित किया—विज्ञान का पद्धतिशास्त्र विकसित करने के लिए दर्शन, राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा विधि के क्षेत्र मे। प्राक्-मार्क्सी आर्थिक सिद्धांतो मे इस क्लासिकीय पूंजीवादी विश्वदृष्टि की शक्ति एवं कमजोरी दोनों ही बेहद स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई हैं। इन सिद्धांतो के इतिहास की सैर करने से बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र के क्लासिकीय प्रतिनिधियों द्वारा विशिष्ट आर्थिक अध्ययनों मे निकाले गये ठोस निष्कर्षों तथा उनके बुनियादी सिद्धांतों के आंतरिक संबंध को खोज कर पाने मे सहायता मिल सकती है। इससे समूची क्लासिकीय पूंजीवादी चेतना मे सत्य एवं भ्रामक की समस्या को परत दर परत प्रस्तुत कर पाना भी संभव बन सकता है।

अपनी विशिष्ट आर्थिक पड़तालों मे बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र के क्लासिकों को उदीयमान बूर्ज्वा वर्ग के दर्शन द्वारा विकसित पद्धतिमूलक नियमो से काफी मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ। प्रारंभिक अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने बेकन एवं हॉब्स के दर्शन के बुनियादी सिद्धांतो को आधार बनाया। अर्थशास्त्री एवं दार्शनिक, दोनों ही, उस बूर्ज्वा विचारधारा का श्रेष्ठ प्रतिनिधित्व कर रहे थे जो अभी भी निर्माण की प्रक्रिया मे थी।

वाणिज्यवादियों ने सर्वप्रथम पूंजीवादी उत्पादन पद्धति की सैद्धांतिक विवेचना की। वाणिज्यवादियों ने क्लासिकीय बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रतिनिधियों—जिन्होंने उनका अनुगमन किया—की भांति विचारधारा के अध्ययन के प्रति कोई खास रुचि व्यक्त नहीं की। हालांकि पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास को संचालित करने वाले नियमों के विश्लेषण व साधारणीकरण के माध्यम से उन्होंने क्लासिकीय बूर्ज्वा चेतना निर्मित करने मे सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया।

वाणिज्यवादियों—जिनके प्रमुख प्रतिनिधियों मे इंगलैंड के स्टैफर्ड तथा मैन, फ्रांस के मोंक्रेतियाँ, तथा रूस के पोसोश्कोव शामिल थे—द्वारा विकसित सिद्धांतों

ने आर्थिक चिंतन को पहली बार वणिकवादी-दृष्टिकोण से (?) हितों के दृष्टि
आर्थिक घटनाक्रियाओं—जिन्हें वणिकवादी प्राकृतिक मानते थे—के अध्य
में उनके प्रति बढ़ते हुए रुख से यह तथ्य प्रतिबिंबित हुआ। उन्होंने आर्थिक जी
में कार्य-कारण संबंधों की पहचान के प्रयास किये। तो भी, वे इन प्रश्नों
मोटा मोटा अध्ययन ही करते रहे क्योंकि उन्होंने, पूंजीवादी उत्पादन
नजर के नीचे संचरण के क्षेत्र में आर्थिक घटनाक्रियाओं की अभिव्यक्तियों में दृष्ट
मतार्थ किया, आमतौर से उपयुक्त प्रमाणों को ही अपने अध्ययन का आ
बनाया था।

आर्थिक घटनाक्रियाओं के अध्ययन के प्रति वास्तविक दृष्टिकोण पूर्ण
करने के बाद वाणिज्यवादियों ने आगे कदम बढ़ाया जिसे मध्य युगों के धर्मशा
दर्शन की तुलना में अगला कदम माना जा सकता है। इस आलोक में, उत्त
अनुभववाद मध्ययुगीन पांडित्यवाद विरोधी प्रवृत्ति में संलग्न दिखता है तथ
आर्थिक चिंतन की समुचित प्रगति को प्रतिबिंबित करता है।

वाणिज्यवादियों द्वारा प्रस्तावित आर्थिक जीवन के अध्ययन को वास्तविक
दृष्टि तथा इसकी घटनाक्रियाओं की स्वतंत्र अर्थवत्ता का स्वीकार आर्थिक नियमों
के प्राकृतिक स्वरूप की पुष्टि की दिशा में पहले कदम थे। आर्थिक जीवन के
वैज्ञानिक अध्ययन तथा बुर्जवा विचारधाराओं के बुनियादी सिद्धांतों के सैद्धांतिक
प्रमाणीकरण एवं विकास में क्लासिकीय बुर्जवा अर्थशास्त्र का यह महानतम योग-
दान था।

नये युग में फ्रांसिस बेकन द्वारा सूचित विज्ञान के अध्ययन के सामान्य
नियमों—जैसे, तथ्यों के वर्णन से उनके आंतरिक संबंधों के विश्लेषण की ओर
गमन, बाहरी अभिव्यक्ति से भिन्न एवं अलग प्रामाणिक, आवश्यक एवं आवर्तक
आंतरिक संबंधों के रूप में नियमों की व्याख्या का महत्व, आदि—को व्यापक रूप
से व्यवहार में लाने का श्रेय क्लासिकीय बुर्जवा राजनीतिक अर्थशास्त्र के जनक
विलियम पैटी को जाता है।

आर्थिक चिंतन के इतिहास में विलियम पैटी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बाह्य से
आंतरिक संबंधों के अध्ययन का नया मार्ग खोजकर घटनाक्रियाओं के अस्तित्व के
नियम की व्याख्या की। पैटी के पुरोगामी अध्ययनों के पश्चात ही क्लासिकीय
बुर्जवा राजनीतिक अर्थशास्त्र में उत्पादन के बुर्जवा संबंधों की आंतरिक क्रियाविधि
का अध्ययन किया जाने लगा। आधुनिक युग के दर्शन के पद्धतिविज्ञान को ठोस
आर्थिक सामग्री के अध्ययन पर लागू करके पैटी ने पूंजीवादी उत्पादन के विशिष्ट
प्रामाणिक संबंधों की शृंखला प्रस्तुत की।

फिजिओक्रेटीय[1] प्रणाली—जो अंतर्वस्तु की दृष्टि से बूर्ज्वा थी तथा बाह्य अभिव्यक्ति की दृष्टि से सामंती थी—के भीतर सामाजिक जीवन के प्राकृतिक चरित्र संबंधी सिद्धांत का व्यापक प्रमाणीकरण प्रस्तुत किया गया। प्रकृतवादी दृष्टि से समाज के अपने अध्ययन के दौरान एफ़० क्वेस्ने ने यह निष्कर्ष निकाला कि आर्थिक प्रक्रिया की एक आंतरिक अंतर्वस्तु होती है जोकि अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों द्वारा नियमित-संचालित होती है। इस सम्प्रदाय द्वारा अधिकतम स्पष्टता के साथ सूत्रित वस्तुओं के प्राकृतिक प्रवाह संबंधी सिद्धांत का सामाजिक जीवन के नियमों की स्वेच्छावादी तथा धर्मशास्त्रीय व्याख्या से संघर्ष था। इस मायने में यह बूर्ज्वा विचारधारा की निर्विवाद विजय थी।

मार्क्स ने लिखा : "यह उनकी विशेषता थी कि उन्होंने इन रूपों के बारे में समाज के शरीर क्रिया वैज्ञानिक रूपों के रूप में विचार किया : जो उत्पादन की स्वाभाविक आवश्यकता से उत्पन्न, तथा किसी की भी इच्छा अथवा राजनीति से रूप में। ये भौतिक नियम हैं···।"[2]

आर्थिक नियमों की प्राकृतिक अंतर्वस्तु के सिद्धांत, यद्यपि इसने सामाजिक चिंतन की महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धि को व्यक्त किया, की अपनी सीमाएँ थीं। इसकी प्रमुख सीमा नियम की इसकी इतिहासवाद विरोधी तथा ग़ैर द्वंद्वात्मक व्याख्या में निहित थी : बहुधा व्याख्या बूर्ज्वा चेतना के समग्र सामान्य आधारों से उत्पन्न होती थी। नये युग के दर्शन तथा बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र—इन दोनों के समान सामाजिक दृष्टिकोण थे तथा एक पद्धति विज्ञान था—ने प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक का विरोध किया, चलनशील के साथ आत्मगत तत्वों को जोड़ा और नियमों की वस्तुगत प्रकृति को उनकी अपरिवर्तनीयता में खोजा व समझा। बूर्ज्वा चिंतकों की दृष्टि में स्थायी, अपरिवर्तनशील वस्तुओं का चिरंतन अपरिवर्तनीय सार ही प्राकृतिक नियम होता है। इस प्रकार उन्होंने सापेक्ष स्थायित्व को चिरंतन अपरिवर्तनीयता की सीमा तक बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया।

संकीर्ण बूर्ज्वा विचारधारात्मक बोध से उत्पन्न इस इतिहास विरोधी दृष्टि के परिणामस्वरूप बूर्ज्वा अर्थशास्त्रियों ने बूर्ज्वा उत्पादन संबंधों तथा उनके विशिष्ट नियमों को ऐतिहासिक विकास से स्वतंत्र चिरंतन नियम मान लिया। मार्क्स ने ग़लती की ओर संकेत करते हुए टिप्पणी की : "ग़लती केवल यही है कि एक सुनिश्चित ऐतिहासिक सामाजिक अवस्था के भौतिक नियम को समाज के सभी रूपों को समान रूप से संचालित करने वाले अमूर्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है।"[3]

---

1. क्वेस्ने द्वारा प्रवर्तित राजनीतिक अर्थशास्त्र का सम्प्रदाय जो भूमि को संपदा एवं कराधान का आधार मानता था तथा जो मुक्त अर्थव्यवस्था का समर्थक था। (अनुवादक)
2. कार्ल मार्क्स, 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत', भाग I, मास्को, 1969, पृ० 44
3. वही पृ० 41

[illegible] के [illegible] के पूंजीवादी [illegible] के [illegible]
अर्थतंत्र के आन्तरिक विश्लेषण को जन्म दिया। आर्थिक नियमों की प्रकृ[illegible]
अन्तर्वस्तु के उद्घाटन के लिए ऐतिहासिक कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत [illegible]
प्राकृतिक पद्धति का प्रयोग करके क्लासिकीय बूर्ज्वा लेखक के निष्क[illegible]
अनुभव को निर्दिष्ट किया। इसके केन्द्र में मात्र व्यक्ति था, व्यक्ति [illegible]
ऐतिहासिक संरचनाओं एवं वर्तमान समाज आवश्यकताओं के साथ। इसी [illegible]
प्राकृतिक नियम ऐसी व्यवस्था थी जो व्यक्ति के हितों के अनुरूप रहती [illegible]
किसी व्यक्ति का निजी हित अन्य व्यक्तियों के निजी हितों द्वारा ही सीमित कि[illegible]
जा सकता है अन्य किसी सीमा का अस्तित्व नहीं होना चाहिए। क्लासिकीय बू[illegible]
आर्थिक नियम द्वारा प्रस्तुत पृथक्कृत विचार —यह एक ऐसा विचार था जिस[illegible]
[illegible] सामंत-विरोधी स्वरूप का दर्जा दिया, जिसने [illegible]
मोटी सभी सीमाओं की आवश्यकता को नकार दिया—यह नहीं [illegible] था। [illegible]
नियम की रचनाओं में व्यक्ति एवं समाज संबंधी बूर्ज्वा दृष्टि को प्रस्तुत अभिव्यक्[illegible]
मिली।

आर्थिक नियमों की अन्तर्वस्तु संबंधी वैज्ञानिक दृष्टि के विकास में आरम्भि[illegible]
की भूमिका इस तरह से निहित थी कि उन्होंने आर्थिक घटनाक्रियाओं का उद्गम
मनुष्यों के मात्र सचेतन तर्कमति, राजनीतिक नेताओं की कार्रवाइयों अथवा वि[illegible]
के विधान में नहीं खोजा बल्कि अपनी रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करने को सर्मप[illegible]
व्यक्तियों के स्वतःस्फूर्त दैनंदिन कार्य-व्यापार में खोजा। अर्थव्यवस्था की क्रिया
शीलता प्राकृतिक नियमों की क्रियाशीलता पर निर्भर करती है तथा इसका अ[illegible]
जनसमूह के समान कर्म की पुनरावृत्तिशीलता के परिणामस्वरूप होता है।

पूंजीवादी समाज के विश्लेषण में बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र के आदर्श
(के रचनाकारों) द्वारा लागू की गयी आर्थिक जीवन के प्राकृतिक चरित्र संबंधी
दार्शनिक एवं विचारधारात्मक अवधारणा ने, अपनी ऐतिहासिक सीमाओं के
बावजूद, कई मूल्यवान ठोस परिणामों को जन्म दिया। मुद्रा के उद्भव का सिद्ध[illegible]
द्वारा किया गया विश्लेषण इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

क्लासिकीय बूर्ज्वा अर्थशास्त्र द्वारा विकसित आर्थिक घटनाक्रियाओं की
प्राकृतिक अंतर्वस्तु संबंधी सिद्धांत सामाजिक जीवन के विश्लेषण में प्राकृतिक
नियमों की धारणा का प्रयोग करने की दिशा में पहला प्रयास था। आर्थिक जीवन
के प्राकृतिक प्रवाह—स्वयं के नियमों के अधीन—का विचार मात्र प्रगतिशील था
किन्तु इसका स्पष्टीकरण एवं प्रमाणीकरण अवैज्ञानिक था। आर्थिक नियमों की
प्राकृतिक अंतर्वस्तु विषयक निष्कर्ष भौतिक सामान के उत्पादन की प्रक्रिया में
संलग्न मनुष्यों के सामाजिक-आर्थिक संबंधों के विश्लेषण पर आधारित नहीं थे,
[illegible] की अमूर्त प्रकृति पर आधारित थे। मनुष्य की प्रकृति को अलग-

अलग व्यक्तियों के चिरतन अमूर्त्तन के रूप मे देखा गया न कि ठोस ऐतिहासिक सामाजिक संबधों की समग्रता के रूप मे।

इसका परिणाम यह हुआ कि बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र के आदर ग्रंथों (के रचनाकारों) ने प्राकृतिक-ऐतिहासिक नियमों का नही बल्कि प्राकृतिक नियमों का विवेचन किया। वे प्राकृतिक नियमों को शाश्वत, अधि-ऐतिहासिक चरित्र प्रदान करने को विवश थे। इन नियमों की इतिहास-विरोधी व्याख्या मे, सिद्धांत के क्षेत्र में पूँजीवादी उत्पादन पद्धति का जारी रहना निहित था। यह विज्ञान के क्षेत्र में बूर्ज्वा विचारधारात्मक दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति भी थी।

चूँकि आर्थिक नियमों के आर्थिक चरित्र के प्रमाणीकरण मे बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने मनुष्य की प्रकृति पर जोर दिया था, उन्होंने स्वाभाविक रूप से समाज के प्रकृतवादी दृष्टिकोण का निष्कर्ष निकाला। यही कारण है कि अपने आर्थिक अध्ययनो मे उन्होंने उत्पादन के भौतिक पक्ष पर ध्यान केन्द्रित किया। रिकार्डो ने लागत, मजदूरी तथा मुनाफे की परीक्षा मात्र 'गुणात्मक' मूल्यो के रूप में की। क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के नियमों को शाश्वत एव अधि-ऐतिहासिक घोषित कर दिया गया था, क्लासिकीय बूर्ज्वा अर्थशास्त्रियो ने यह पड़ताल करने की कोशिश भी नही की, तथा इस बात पर तनिक भी आश्चर्य प्रकट नहीं किया गया, कि श्रम क्यों तथा किन परिस्थितियो के अधीन मूल्य का सृजन करता है।

अस्तु, आर्थिक नियमो के प्राकृतिक चरित्र का सिद्धांत अंतर्विरोधी था। चूँकि यह सिद्धात आर्थिक घटनाक्रियाओं को पारस्परिक रूप से जुड़ी हुई, स्वत.स्फूर्त तथा मानव चेतना एवं राजनीति से स्वतंत्र रूप से घटित मानता था, इसमें स्वेच्छावादी दृष्टिकोण के विरुद्ध मूल्यवान वैज्ञानिक शुरुआत की अभिव्यक्ति हुई। 'प्राकृतिक नियम' का विचार न केवल आर्थिक सिद्धात के सदर्भ मे ही प्रगतिशील उपलब्धि था बल्कि ज्ञान एवं संस्कृति के अन्य क्षेत्रो के लिए भी प्रगतिशील उपलब्धि सिद्ध हुआ। सामाजिक जीवन के अध्ययन मे इसके व्यावहारिक प्रयोग ने ऐतिहासिक प्रक्रिया की एकता के विचारों को जन्म दिया तथा मानवतावादी अवधारणाओं को विकसित किया।

तथापि, आर्थिक नियमों की प्राकृतिक अंतर्वस्तु का प्रमाणीकरण आधिभौतिक था, क्योंकि उन्हें (नियमों को) अपरिवर्तनीय घटनाक्रियाओं की निर्विवाद स्थायी पारस्परता माना जाता था। यह भाववादी भी था क्योंकि यह प्रकृतवादियो द्वारा व्याख्यायित मनुष्य की अमूर्त प्रकृति पर आधारित था। इस प्रकार एक दुष्चक्र का जन्म हुआ क्योंकि मनुष्य के बारे मे प्रकृतवादी दृष्टिकोण (ठोस ऐन्द्रिक-दृश्य प्रकृति के कारण), विभिन्न व्यक्तियों के समुच्चय के रूप मे समाज की व्याख्या—यह ऐसी व्याख्या थी जिसे समूचा प्राक्-मार्क्सी इतिहास विज्ञान स्वीकार करता

था —का अपरिहार्य परिणाम यह हुआ कि इतिहास-सिद्धांत के क्षेत्र में सामाजिक अणुवाद तथा राजनीतिक-नीतिशास्त्रीय भाववाद का जन्म हुआ।

क्लासिकीय बुर्जुआ अर्थशास्त्र की इस दुहरी भूमिका का मूल्यांकन करते हुए लेनिन ने लिखा : "आदर्श ग्रंथों (के रचनाकारों) ने पूंजीवाद के विभिन्न प्राकृतिक नियमों की तलाश व खोज की, किन्तु वे इसके (पूंजीवाद के) क्षणभंगुर स्वरूप को समझ पाने में तथा इसके भीतर निहित वर्ग-संघर्ष को देख पाने में असफल रहे। भौतिकवादी इतिहासवाद ने इन दोनों दोषों का उपचार किया।"[1]

आर्थिक नियमों के प्राकृतिक चरित्र संबंधी सिद्धांत की प्रगतिशील सार्थकता इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि कुत्सित राजनीतिक-अर्थशास्त्र ने इसकी आधिभौतिक सीमाओं को पकड़कर आदर्श ग्रंथों की इस तर्कसंगत सारवस्तु की अवैज्ञानिक समीक्षा प्रस्तुत की थी। कुत्सित राजनीतिक-अर्थशास्त्रियों का दावा था कि प्राकृतिक नियम की अवधारणा प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन के लिए ही अर्थवान थी, कि वह सामाजिक जीवन की व्याख्या के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थी क्योंकि ऐतिहासिक घटनाओं को—उनकी वैयक्तिकता तथा आवृत्तिहीनता के कारण—प्राकृतिक नियमों के सामान्य सूत्र के चौखटे में नहीं जड़ा जा सकता।

मार्क्सवाद ने प्राकृतिक नियम के विचार की तार्किक अंतर्वस्तु को स्वीकार किया। लेनिन ने लिखा : "भौतिकवादी इतिहासवाद ने ही इस विचार को—इसकी आधिभौतिक (इस शब्द के मार्क्सवादी अर्थ में, यानी इसकी गैर द्वंद्वात्मक) विसंगतियों एवं कमियों को दूर करके—सही सिद्ध किया।"[2]

अस्तु, खरी ऐतिहासिक-दार्शनिक एवं आर्थिक सामग्री पर दृष्टिपात यह प्रदर्शित करता है कि पूर्ववर्ती विचारधारात्मक अवधारणाओं तथा सिद्धांतों को भ्रामक विश्व दृष्टि की संज्ञा देने के प्रयासों से मार्क्सवाद की कोई अनुकूलता नहीं है। साथ ही, उनकी वास्तविक अंतर्वस्तु के सही मूल्यांकन एवं समझ के लिए यह जरूरी है कि काल-विशेष की सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना—क्योंकि यह संरचना बौद्धिक सामग्री का वास्तविक आधार निर्मित करती है, उसी से विचारधारात्मक स्थापनाएँ एवं निर्मितियाँ निकलती हैं—की सटीक व्याख्या को आधार बनाया जाये।

पद्धति के अर्थ में, मार्क्स द्वारा विचारधारात्मक भ्रांतियों की समीक्षा को ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने पर विशेष जोर दिया गया था। उपदेशात्मक आलोचना अथवा आलोचनात्मक नैतिकता से इसका कोई वास्ता

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'समाजवाद को पुनः ध्वस्त किया गया,' संकलित रचनाएँ, खंड 20, पृ॰ 197
2 वही

नहीं था बल्कि इसका उद्देश्य सुनिश्चित सामाजिक सबंधों से उत्पन्न उनकी वास्तविक अंतर्वस्तु, वर्ग-संघर्ष मे उनकी वास्तविक भूमिका तथा समूची ऐतिहासिक प्रक्रिया का पता लगाना था।

भ्रमों की भरमार है। फ्रांसीसी क्रांति (1789-93) द्वारा उत्पन्न भ्रम तथा इसके सिद्धांतकारों व राजनीतिज्ञों द्वारा सूत्रित समस्याएँ, नियम एवं नारे किसी-न-किसी रूप में इतिहास के वस्तुगत सत्य तथा काल की वास्तविक आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करते थे तथा काल की नब्ज़ के साथ कदम मिलाते थे और इसी कारण ऐतिहासिक सत्य की शक्ति से सम्पन्न थे। मार्क्स की यह उक्ति कि क्रांति करने वाले वर्ग का भ्रम सत्य होता है, फ्रांसीसी क्रांति के भ्रमों पर भी पूरी तरह लागू होती है।[1] मार्क्स ने इस बात पर ज़ोर दिया कि इस तरह के भ्रम "प्रत्येक ऐतिहासिक युग के स्वर"[2] को निर्मित करते हैं। भ्रामक (मिथ्या) चेतना की विशेष प्रकृति की समझ के लिए यह निष्कर्ष बुनियादी महत्व का है।

वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के संस्थापकों ने बूर्ज्वा विचारधारा की "भ्रामक प्रकृति" के अलग-अलग तत्वों को विभिन्न कोणों से परीक्षा की। 'सत्य भ्रमों' की संभावना के बारे में उनकी टिप्पणी यह संकेत देती है कि बूर्ज्वा चेतना के संदर्भ में "विकृत चेतना" के रूप में विचारधारा की व्याख्या को स्थैतिक, रेखीय तथा अनैतिहासिक नहीं माना जाना चाहिए। "भ्रामक प्रकृति" एक बहु-आयामी धारणा है तथा इसका परिमाण विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक कारकों के आधार पर घटता-बढ़ता है। हम इस मत से सहमत नहीं हो सकते कि विचारधारा विज्ञान के प्राक्-इतिहास के अतिरिक्त कुछ नहीं है, तथा इससे भी कि बाद में यह विशेषीकृत वैज्ञानिक विद्याओं की खोजों तथा निष्कर्षों में लुप्त हो गयी तथा इस कारण से इसका कोई आंतरिक (तात्विक) मूल्य नहीं है। इस व्याख्या के अंतर्गत इसे अधिक-से-अधिक वैज्ञानिक समस्याओं की उपस्थिति का लक्षण माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी समाज विज्ञान पर लागू किये जाने पर विचारधारा प्रदाहक रसायनशास्त्र के सदृश्य होती है, जबकि विज्ञान जब-जब भी वास्तविकता पर इसे धराशायी कर दिया जाये विचारधारा का रूप ले लेता है—सक्रिय पड़ताल की प्रक्रिया से गुज़रे बग़ैर तथा मूल्यांकनपरक निर्णयों तक सीमित होते हुए भी।

नये युग के दर्शन तथा अंग्रेज़ी राजनीतिक अर्थशास्त्र के आदर्श ग्रंथों (के रचनाकारों) की पद्धति की व्याख्या अपने काल में उभरते हुए वर्ग के रूप में बूर्ज्वा वर्ग की समग्र विचारधारा की परिधि में उनके द्वारा निकाले गये मूल्यवान निष्कर्षों को विश्वसनीय ढंग से प्रदर्शित करती है—कि विचारधारात्मक प्रक्रिया साथ ही समाजातात्मक प्रक्रिया भी थी।

1. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा,' संकलित रचनाएँ, खंड 5, पृ० 6।
2. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक, एंगेल्स, 'पवित्र परिवार,' संकलित रचनाएँ, खंड 4, पृ० 8।

आरंभिक बूर्ज्वा विचारधारा के सिद्धांतों ने विज्ञान की प्रगति की गति को तेज किया और इस मायने में मध्य युगों की विचारधारा (धार्मिक विचारधारा) की तुलना में इस विचारधारा में सापेक्ष सत्य समाहित था। मार्क्सवाद विचारधारात्मक सापेक्षतावाद एवं आत्मनिष्ठवाद की उस अवधारणा को अस्वीकार करता है जिसे बूर्ज्वा समाजशास्त्री—खास कर कार्ल मानहाइम के पश्चात्—आगे बढ़ाते रहे हैं।

सामाजिक घटनाक्रियाओं की वैज्ञानिक पड़ताल सदा सुनिश्चित विचारधारात्मक स्थितियों से ही की जाती है तथा निष्कर्षों को सामाजिक ज्ञान के रूप में व्यक्त किया जाता है। अतः प्रश्न को इस तरह की दुविधा—विचारधारा अथवा विज्ञान—के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, बूर्ज्वा दार्शनिक एवं समाजशास्त्री बेशक ऐसा करना चाहते हों तथा हमसे इसमें विश्वास रखने की माँग भी करते हों। इसके विपरीत, यह पता लगाने की ज़रूरत है कि कोई खास विचारधारा ऐतिहासिक विकास की वस्तुगत अपेक्षाओं को पूरा करने में समर्थ है अथवा नहीं, कि यह सामाजिक ज्ञान की प्रगति व "सापेक्ष सत्यों" के विकास में योगदान देती है अथवा नहीं। यह भी पता लगाने की जरूरत है कि यह "चरम सत्य"—किसी खास सामाजिक समूह के वर्ग हितों में कौन-सी सामाजिक प्रवृत्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं तथा यह समूह युग के प्रमुख कार्यों को कैसे संपादित करता है—की ओर उन्मुख होती है अथवा नहीं।

मार्क्सवाद ने यह स्थापित किया है कि सामाजिक विकास की भिन्न अवस्थाओं में बूर्ज्वा एवं निम्न मध्यवर्गीय विचारधारा—जो कुल मिलाकर भ्रामक है—विभिन्न सामाजिक भूमिकाओं का निर्वाह करती है। इस प्रकार सामंतवाद के पतन (1783-1793) के दौरान, 1848 की स्थिति के विपरीत, निम्न मध्यवर्गीय चेतना का सुस्पष्ट क्रान्तिकारी चरित्र था, यह भविष्योन्मुख थी तथा "नये संघर्षों का गौरव-गान करने के—न कि पुराने संघर्षों की भौंडी नकल करने के, स्वीकृत कार्यों को कल्पना में बृहद् कर देने के—न कि यथार्थ में उनके समाधान से बच निकलने के लक्ष्य को पूरा कर रही है'''।' भ्रामक चेतना की यह काया-पलट किसी भी तरह इतिहास की भूल नहीं थी। इसके विपरीत, यह भूमिकाओं का व्यावहारिक रूपान्तरण था क्योंकि बूर्ज्वा तथा निम्न मध्यवर्गीय प्रजातंत्र की आदर्शवादी स्थिति बदल गयी थी।

मार्क्सवाद की वैज्ञानिक विचारधारा के उद्भव तथा विकास ने निम्न मध्यवर्गीय धर्मों के अर्थ को मूलतः परिवर्तित कर दिया। इन्हें (धर्मों को) ऐतिहासिक दृष्टि से आलोचित दर्शन का अधिकार प्राप्त हुआ क्योंकि समाजों में विचार-

[illegible] स्थान"—बीज बोते हैं,

धारात्मक समस्याओ को सूत्रित करने के लिए भौतिक एवं आध्यात्मिक अपेक्षाएँ आकार ग्रहण कर रही थी। इस बिंदु पर भ्रम पूर्वाग्रहो को बनाये रखने का एक रूप बन जाते है। निम्न मध्यवर्गीय विचारो का ऐतिहासिक नाटक विकृत होकर प्रहसन मे बदल जाता है।

निम्न मध्यवर्गीय विचारधारा का विखंडन तेज गति से हो रहा था क्योंकि इसकी अंतर्वस्तु विकृत शब्दजाल मे फँसने लगी थी : छद्म उग्रवाद व उदार भाषणबाजी के "क्रांतिवाद" तथा दुनिया को तोड़-फोड़ देने वाले गर्जन-तर्जन में।

वाक्य-रचना निम्न मध्यवर्गीय चरित्र का पर्याय बन जाती है तथा सामाजिक कार्यों की भीषण चुनौतियो के समक्ष इसके समर्पण को व्यक्त करती है, ऐतिहासिक प्रक्रिया के जटिल एवं अंतर्विरोधी स्वरूप से पलायन की इच्छा को प्रदर्शित करती है तथा ध्रुवीकृत विचारधारात्मक वर्गों तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के संघर्ष से ऊपर रहने की इच्छा को प्रदर्शित करती है।

बूर्ज्वा तथा निम्न मध्यवर्गीय विचारधाराओ की विकृति और पतन के एकदम सुनिश्चित लक्षण ये हैं : अंतर्वस्तु पर शब्दो का वर्चस्व, नगण्य चीजों को रहस्यमय एवं बुद्धिमानी का ऊँचा दर्जा देना, किसी एक सामाजिक समूह की चेतना को समूची मानवता के सारे सार्वदेशिक मूल्यों के रूप में प्रस्तुत करना, निजी हित को शेष मानवता के हित के रूप में चित्रित करना, आदि।

मार्क्स-एंगेल्स ने उन वस्तुगत आर्थिक एवं सामाजिक कारकों का पर्दाफाश किया जिनके कारण पूँजीवादी तथा निम्न पूँजीवादी विचारधाराएँ रहस्यात्मक स्वरूप ग्रहण करती हैं। एक रहस्यात्मक विचारधारा रहस्यात्मक यथार्थ के अनुरूप होती है। मालों की जड़पूजा का रहस्य "प्राकृत चेतना" के रहस्य को जन्म देता है।

पूँजीवाद के अंतर्गत सामाजिक संबंध रहस्यावृत होते हैं। जबकि सामंती समाज में प्रभुत्व तथा अधीनीकरण के संबंधों का रूप प्रत्यक्ष एवं निजी निर्भरता का हुआ करता था, पूँजीवाद के अंतर्गत समाज के सदस्यों मे बीच के संबंधों का स्वरूप माल के रंग मे रँगा होता है। मानवीय चेतना मे इससे स्थायी भ्रम उत्पन्न होते हैं। यथार्थ को उल्टे रूपो मे ग्रहण किया जाता है। मार्क्स ने प्रदर्शित किया कि बूर्ज्वा समाज के सदस्यों के मस्तिष्कों मे स्वतंत्रता, समानता व संपत्ति के विचार किस प्रकार आकार ग्रहण करते है।[1] "स्वतंत्रता, क्योंकि किसी भी वस्तु—श्रम शक्ति—के खरीदने व बेचने वाले दोनों अपनी स्वतंत्र इच्छाशक्ति मे ही प्रतिबंधित होते हैं। वे स्वतंत्र व्यक्तियो के रूप मे समझौता करते हैं तथा जिस करार को स्वीकार करते हैं उसे वे अपनी साझी इच्छा से विधिक रूप देते है। समानता, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से वैसे ही संबंध कायम करता है जैसे कि वस्तुओं के स्वामी से किया

1. कार्ल मार्क्स, पूँजी, खंड 1, पृ० 172

जाता है, वे वस्तुओं का वस्तुओं से विनिमय करते हैं। संपत्ति, इसलिए कि हरेक अपनी स्वयं की चीज का ही विक्रय करता है।

यह भ्रम क्लासिकीय बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र में प्रतिबिंबित हुआ था। जैसाकि मार्क्स ने सटीक व्यंग्य करते हुए कहा था, पूँजीवाद ने "सहज व वस्तुगत" रूप में यह प्रतिबिंबन किया।[1] जैसे-जैसे पूँजीवाद विकसित हुआ तथा इसके संघर्ष एवं अंतर्विरोध अधिक तीव्र हुए क्लासिकीय "वस्तुपरक" सिद्धांतों का स्थान ऐसी गुस्सी वकालत (मंडन) ने ले लिया जिसमें "सत्य भ्रमों" का अंश भर भी नहीं था। मार्क्स ने बूर्ज्वा चेतना के संकट के आर्थिक एवं सामाजिक कारणों को उद्घाटित किया। उन्होंने लिखा : "समाज के संसर्ग का सामान्य रूप, तथा इसके साथ शासक वर्ग की स्थितियां, के उन्नत उत्पादक शक्तियों के साथ अंतर्विरोध जितना अधिक विकसित होंगे, तथा इसके परिणामस्वरूप शासक वर्ग के भीतर व इसके और शासित वर्ग के बीच जितने अधिक मतभेद पैदा होंगे, चेतना भी—जोकि पहले संसर्ग के इस रूप से मेल खाती थी—उतनी ही अधिक मिथ्या होगी, यानी चेतना के इस रूप से उसकी अनुरूपता समाप्त हो जायेगी तथा संसर्ग के इन संबंधों से जुड़े हुए पुराने पारंपरिक विचार—जिनमें वास्तविक निजी हित सार्वत्रिक हितों के रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं—भी मात्र भाववादी शब्दों, सचेत भ्रम, सुविचारित पाखंड के स्तर पर उतर आएँगे।"[2]

"सत्य भ्रमों" से "सुविचारित पाखंड" में बूर्ज्वा विचारधारा का यह कायाकल्प—जिसने कि बूर्ज्वा चेतना के संकट को लक्षित किया, इस संकट का पहला लक्षण था। मार्क्स के शब्दों में, "उसके बाद प्रश्न यह नहीं था कि यह प्रमेय सही है अथवा नहीं, बल्कि यह कि यह पूँजी के लिए लाभदायक है अथवा हानिकारक, इष्टकर है अथवा अनिष्टकर, राजनीतिक रूप से ख़तरनाक है अथवा नहीं। निर्विकार अन्वेषकों का स्थान ले लिया भाड़े के मुक्केबाजों ने तथा खरी वैज्ञानिक खोज का स्थान ले लिया पक्ष-समर्थकों के कलुषित अंतःकरण तथा बुरे इरादे ने।"[3]

संकटग्रस्त बूर्ज्वा चेतना की संतान कुत्सित राजनीतिक अर्थशास्त्र ने पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के प्रतिनिधियों की चेतना का पुनरुत्पादन ठीक वैसे ही रूप में किया जिस रूप में यह उनकी दैनंदिन क्रियाओं में आकार ग्रहण कर रही थी। मार्क्स के शब्दों में इसकी मुख्य चिंता यह थी कि इन नीरस व साधारण मान्यताओं को "सिद्धांत की भाषा में किस तरह अनूदित किया जाये, किंतु वे शासक प्रवंड-

1. कार्ल मार्क्स, अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत, खंड 3, मास्को 1975, पृ॰ 453
2. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा,' संकलित रचनाएं, खंड 5, पृ॰ 293
3. कार्ल मार्क्स, पूँजी, खंड 1, पृ॰ 25

पूँजीपतियों के दृष्टिकोण से ऐसा करते है, अत. उनका प्रतिपादन सहज एवं वस्तुपरक न होकर पक्ष-समर्थक मंडनात्मक है।"[1]

बूर्ज्वा उत्पादन में डूबे रहकर तथा बूर्ज्वा दृष्टिकोण को त्यागे बिना चेतना की भ्रामक प्रवृत्ति के रहस्य को सुलझा पाना तथा घटनाक्रियाओं के आभासित वस्तुगत स्वरूप पर विजय प्राप्त कर पाना असंभव है। इस तथ्य का, कि राजनीतिक शोषण एवं राजनीतिक प्रभुत्व के वस्तुगत संबंध सामान्य चेतना में छिपे होते हैं, दोहन न केवल बूर्ज्वा सिद्धांतो के पक्ष-समर्थक ही करते हैं बल्कि यह वस्तुतः उस बूर्ज्वा प्रचार का आधार निर्मित करता है जो कि घटना-क्रियाओं की सतह पर बूर्ज्वा संबंधों की "प्रतीति" व "आभास" का दोहन करता है।

मार्क्सवाद ने काल्पनिक समाजवाद के विश्लेषण के माध्यम से विचारधारात्मक धारणाओं के संदर्भ में सत्य एवं भ्रामक की समस्या को समुचित स्पष्टता के साथ परिभाषित किया था। मार्क्स-एंगेल्स व लेनिन समाजवादी एवं कम्युनिस्ट कल्पना लोकों के अध्ययन पर विशेष ज़ोर दिया ताकि इतिहास में उनकी भूमिका एवं स्थान, तथा वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों के लिए उनकी प्रासंगिकता निर्धारित की जा सके। उनके महत्वपूर्ण प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने ऐसे मूलभूत नियमों की शृंखला सूत्रित की जोकि ऐतिहासिक काल-विशेष के संदर्भ में सामाजिक कल्पनालोकों के अध्ययन की आवश्यकता पर ज़ोर देते हैं। यह दृष्टिकोण अर्थ का वैज्ञानिक रूप से खुलासा करने तथा वास्तविक को भ्रामक से, अस्तित्वमान को कपोल-कल्पित से, संभाव्य को काल्पनिक से पृथक करने को संभव बनाता है।

समाजवादी एवं कम्युनिस्ट क़िस्म के क्लासिकीय सामाजिक कल्पनालोक भविष्योन्मुख प्रगतिवादी—आशावादी अवधारणाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति थे। ये वे अवधारणाएँ थी जिन्होंने अपने व्यापक ऐतिहासिक एवं सामाजिक फ़लक के कारण कल्पनालोक प्रभावित किया। जहाँ तक इतिहास में इनके स्थान का प्रश्न है ये कल्पना लोक कल्पनालोकों के समग्र विकास के क्रम में अगली (ऊपरी) शाखा को प्रदर्शित करते थे। उनका आशावाद तथा भविष्य में आस्था उन्हें अपने समय के उन प्रतिक्रियावादी कल्पनालोकों से अलग करती है जिन्होंने प्रगति के विचार से स्वयं को अलग-अलग कर लिया है तथा जो इस नियम पर आधारित हैं कि "भविष्य वर्तमान से ज़्यादा ख़राब होगा।"

क्लासिकीय समाजवादी कल्पनालोक चेतना के स्तर पर बूर्ज्वा समाज की नाइलाज सामाजिक बुराइयों के पहले लक्षण थे। वे ऐसे विशिष्ट सामाजिक निदान थे जो यह संकेत देते थे कि "डेनमार्क के राज्य में कुछ ऐसा है जो सड़ गया

1. कार्ल मार्क्स, अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत, भाग 3, पृ० 453

है।" किंतु उनका ऐतिहासिक महत्व यहीं तक सीमित नहीं है।

महान चिंतकों की सर्जनात्मक कल्पना से उत्पन्न होने के कारण सामाजिक कल्पनालोक न्यायपूर्ण समाज के आदर्श की पूर्ति की दिशा में मानवता का महत्व-पूर्ण अगला कदम थे। शोषण एवं हिंसा की दुनिया के संपूर्ण अस्वीकार तथा दमितों एवं पददलितों के प्रति करुणा से प्रेरित थे कल्पनालोक एंगेल्स के शब्दों में, "उन अगणित चीज़ों के पूर्वानुमान थे जिनके सहीपन को आज हम वैज्ञानिक तरीक़ों से सिद्ध कर रहे हैं···।"[1] यद्यपि उनके सामाजिक पूर्वकथन भविष्य के सपनों से मिलते-जुलते थे, ऐसे मस्तिष्कों के जिनकी कल्पना में भविष्य में होने वाली घटनाओं के स्वरूप के बारे में विवेकपूर्ण निरूपण निहित थे। यही नहीं, उनकी भविष्य-कल्पनाएँ उनके काल के बूर्ज्वा समाज—जिसकी वास्तविकताएँ बूर्ज्वा प्रबोधकों की अभि-कल्पनाओं से उल्लेखनीय रूप से भिन्न थीं—के प्रति आलोचनात्मक रवैये से अलग न किये जा सकने की हद तक जुड़ी हुई थीं। तत्कालीन बूर्ज्वा समाज तथा उनके सपनों के समाज में कोई समानता नहीं थी।

समाजवादी कल्पनालोकों के निर्माताओं ने न केवल वास्तविक एवं अपेक्षित यथार्थ की घोर विषमताओं को अंकित किया बल्कि उन्होंने अविकसित (भ्रूणीय) पूँजीवादी संबंधों में पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के उदय के साथ विकसित होने वाले भविष्य के विरोधों एवं संघर्षों को भी सर्व प्रथम खोजा।

मार्क्सवाद ने कल्पना लोकों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर उनके वास्तविक मूल्य को उद्घाटित किया। समाजवादी कल्पनालोकों का महत्व वास्तविक ऐतिहासिक प्रक्रिया के साथ प्रतिलोमी संबंधों में निहित है। यह उनके आंतरिक विकास को संचालित करने वाला सामान्य नियम है। समाजवादी कल्पनालोकों के प्रति यह सामान्य समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण उनके विस्तृत अध्ययन एवं मूल्यांकन के तरीक़े को इंगित करता है।

लेनिन द्वारा दो समानांतर कल्पनालोकों—किसान-नरोदवादी एवं बूर्ज्वा-उदारवादी—का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया जिसमें उन्होंने यह दिखाया कि अंतर्वस्तु एवं वर्गीय भूमिका की दृष्टि से भिन्न, किंतु एक साथ विक-सित होने वाले, कल्पनालोकों के सामाजिक निहितार्थ व अर्थ किस तरह भिन्न होते हैं। लेनिन के शब्दों में, "नरोदवादी कल्पना लोक की एक खास ऐतिहासिक भूमिका है। भूमि के नये बँटवारे के परिणामों (जो होंगे तथा जो होने चाहिए) से संबद्ध कल्पनालोक होने के कारण यह किसान जन-समूह के महान व्यापक जनतंत्रीय उभार का लक्षण भी है तथा उसकी संगत करने वाला भी···। उदार-

---

1. फ्रेडरिक एंगेल्स, "जर्मनी के किसान युद्ध का प्राक्कथन, 1875 के तीसरे संस्करण में 1870 के प्राक्कथन का अनुपूरक", संकलित रचनाएँ तीन खंडों में, खंड 2, मास्को 1977, पृ० 169

वादी कल्पनालोक जनता की जनतंत्रीय चेतना को प्रकट करता है। नरोदवादी कल्पनालोक, जो उनकी समाजवादी चेतना को प्रकट करता है, उनके जनतंत्रीय उभार का लक्षण, तथा क्रांतिक रूप से उनकी अभिव्यक्ति भी है।"[1] लेनिन द्वारा प्रस्तुत दो समकालीन समानांतर कल्पनालोकों का, जनतंत्रीय एवं समाजवादी आधारों पर आधारित, विभेदीकृत मूल्यांकन यह निष्कर्ष निकालने में सहायक है कि यद्यपि वैज्ञानिक समाजवाद की तुलना में नरोदवादी कल्पनालोक एक पीछे ले जाने वाला कदम था तो भी प्रथम रूसी क्रांति (1905-07) के दौरान इसकी सकारात्मक भूमिका थी क्योंकि उदारवादी कल्पनालोक—जिसने कि जनता की समाजवादी ही नहीं अपितु जनतंत्रीय चेतना को भी भ्रष्ट किया—की तुलना में यह एक अगला कदम था। लेनिन ने मार्क्सवादियों के लिए नरोदवादी कल्पनालोक में किसान जनता के ईमानदार, सबलसंघर्षवान व उग्र जनतंत्र को रेखांकित करने के महत्त्व पर जोर दिया।"[1]

कल्पनालोकीय चेतना के विश्लेषण की मार्क्सवादी—लेनिनवादी पद्धति—खासकर उनके सैद्धांतिक रूपों में विचारधारात्मक प्रवाहों की सामाजिक ऐतिहासिक अंतर्वस्तु की अभिव्यक्ति के नाकाफी होने से संबंधित निष्कर्ष—समकालीन समाजवाद के विभिन्न ग़ैर-मार्क्सीय रूपों के अध्ययन तथा ऐतिहासिक प्रक्रिया के भीतर उनकी असामंजस्यपूर्ण एवं जटिल प्रकृति से उत्पन्न उनकी वास्तविक सार-वस्तु तथा सामाजिक विभेदीकरण की बेहतर समझ के लिए व्यावहारिक महत्त्व की दृष्टि से बेहद उपयोगी है।

विचारधारा के सामाजिक एवं ज्ञानशास्त्रीय पक्ष

पूँजीपति तथा निम्न-पूँजीपति वर्ग की चेतना के विकास के अपने विश्लेषण में मार्क्स एवं एंगेल्स ने चेतना के विकास के कई बुनियादी लक्षणों की पहचान की : जिस वर्ग की यह सैद्धांतिक चेतना है उसके वस्तुगत् स्तर में आये परिवर्तनों के असर में इसकी परिवर्तनशील अंतर्वस्तु तथा स्वरूप; वर्ग एवं सिद्धांतकारों के संबंध; प्रभुत्वशाली वर्ग के भीतरी अंतर्विरोधों का उसकी विचारधारा पर प्रभाव, तथा वर्ग के संबंध में विचारधारा के समग्र कार्य-भार।

मार्क्स एवं एंगेल्स फ्रांस एवं जर्मनी में हुई क्रांतियों एवं प्रतिक्रांतियों का विश्लेषण करके तथा क्रांतियों द्वारा गति प्रदत्त पार्टियों व वर्गों की राजनीतिक स्थितियों एवं सैद्धांतिक कार्यक्रमों की सावधानीपूर्वक परीक्षा करके ही इन निष्कर्षों तथा साधारणीकरणों तक पहुँचे।

उस काल की क्रांतिकारी प्रक्रियाएँ प्रत्येक वर्ग की चेतना में अलग-अलग

---

1. वी० आई० लेनिन, 'दो कल्पनालोक,' संकलित रचनाएँ, खंड 18, पृ० 357 ,

तरह से अपवर्तित हुई और इन्होंने पूँजीवादी तथा निम्न पूँजीवादी जनतंत्रवादियों के मध्य भ्रमों एवं संकटों को जन्म दिया तथा सर्वहारा की वर्ग-चेतना को सुदृढ़ बनाया। क्रांति ने विभिन्न वर्गों एवं पार्टियों द्वारा स्वीकृत वैचारिक प्रणाली की व्यावहारिक परीक्षा ली। इसने बड़े पूँजीपति वर्ग की विचारधारा में अनुदारवादी प्रवृत्तियों के विकास को गति प्रदान की जिसका परिणाम यह हुआ कि उसकी विश्व दृष्टि ने प्रतिगामी स्वरूप ग्रहण कर लिया। क्रांति ने निम्न-पूँजीवादी जनतंत्र तथा समाजवाद की निम्न-पूँजीवादी अवधारणा के भ्रमों के क्षेत्र में संकट पैदा कर दिया। क्रांति ने मजदूर वर्ग को इतिहास में अपनी भूमिका—कि उसे क्या करना चाहिए—को अधिक स्पष्टता के साथ देखने में सहायता की तथा उसकी वर्ग स्व-चेतना को कुल मिलाकर प्रेरित किया।

1848-49 की क्रांति ने निम्न-पूँजीपति वर्ग के बड़े हिस्सों को गति प्रदान की तथा निम्न-पूँजीवादी विचारधारा को पुनरुज्जीवित किया। इसने मार्क्स एवं एंगेल्स का ध्यान निस्संदेह आकृष्ट किया। उन्होंने निम्न-पूँजीवादी क्रांतिवाद तथा निम्न-पूँजीपति-वर्ग की चेतना में इसके परावर्तन की प्रक्रिया मे नयी रुचि दिखायी; आत्मगत कारक के महत्व तथा व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ में विचारधाराओं व सिद्धांतकारों की भूमिका को रेखांकित करने में रुचि दिखायी।

मार्क्स ने लिखा : "सिर्फ़ इतनी कल्पना करना ज़रूरी है कि सभी जनतंत्रीय प्रतिनिधि वास्तव में दूकानदार हैं या दूकानदारों के उत्साही समर्थक हैं। शिक्षा एवं व्यक्तिगत स्थिति की दृष्टि से वे उतने अलग एवं भिन्न हो सकते हैं जितना कि स्वर्ग तथा पृथ्वी हैं। उन्हें निम्न-पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि यह तथ्य बनाता है कि वे अपने मस्तिष्कों में उन सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर पाते जिनका अतिक्रमण दूकानदार अपने जीवन में नहीं कर पाते; कि परिणामस्वरूप वे सैद्धांतिक रूप से उन्हीं समस्याओं एवं समाधानों की ओर अग्रसर होते हैं जिनकी ओर दूकानदारों के भौतिक हित एवं सामाजिक स्थिति उन्हें व्यावहारिक रूप से उन्हें धकेलते हैं। एक वर्ग-विशेष के राजनीतिक एवं साहित्यिक प्रतिनिधियों तथा उस वर्ग (जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं) के बीच मोटे तौर पर यही संबंध होता है।"[1] मार्क्स द्वारा प्रस्तुत व्यापक चरित-चित्रण (लक्षण-मीमांसा) में कई ऐसे पद्धतिमूलक नियम समाहित हैं जिनके चौखटे के बाहर विचारधारा—एक वर्ग-विशेष की सैद्धांतिक चेतना के रूप में—तथा इस परिभाषा से उत्पन्न उसमें रखी जाने वाली अपेक्षाओं की समझ ग्रहण कर पाना असंभव है।

[illegible] के विभिन्न वर्गों व अस्तित्व की सामाजिक परिस्थितियों का भावनाओं, भ्रमों, चिन्तन पद्धतियों तथा विश्व-दृष्टियों की विविधता भरी अभि-

---

1 कार्ल मार्क्स, 'लुई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर,' संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, खंड 1, पृ० 424

वना की प्रधानता होती है। समूचा वर्ग अपनी भौतिक परिस्थितियों के आधार
र इस सबका सृजन करता है व उसे आकार देता है। तो फिर विचारधारा
सिद्धांतकारों का कार्य-भार क्या है? जब हम एक वर्ग द्वारा भावनाओं,
प्रभूतियों, बिंबों की सर्जना का अध्ययन करते हैं तो हम सामाजिक मनोविज्ञान
अतभिप्रेत सर्जना का भी अध्ययन करते हैं। विचारधारा एवं सिद्धांत-
रों के अलग-अलग कार्य-भार होते हैं। वे अपने वर्ग के सामाजिक सीमातों
अतिक्रमण नहीं करते, उनका सैद्धांतिक क्षितिज उनके अपने वर्ग के हितों तथा
तुगत स्थिति द्वारा सीमांकित होता है। तथापि सामाजिक मनोविज्ञान और
रारधारा में, तथा उस वर्ग के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक प्रतिनिधियों द्वारा
ात वर्गीय नीति की अभिव्यक्ति में काफ़ी अतर है।

एक सिद्धांतकार की निम्न पूंजीवादी प्रकृति दूकानदार की प्रकृति से भिन्न
मे व्यक्त होती है तथा वे वास्तव मे एक-दूसरे से उतने ही अलग एव दूर हैं
तना कि धरती से स्वर्ग" है। यही वह तत्व है जोकि साहित्य एवं कलाओं मे
न्न दृष्टिकोणों की सामाजिक सार-वस्तु के उद्घाटन को, सामाजिक चेतना
माम जटिल रूपो मे—जिनमें कि वर्ग-प्रेरित दृष्टिकोण अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति
है तथा वर्ग के व्यावहारिक प्रतिनिधियों के दैनंदिन व्यवहार की बाह्य अभि-
त की दृष्टि से भिन्न एवं अलग होता है—मुश्किल बना देता है।

विचारधारा दैनंदिन जीवन द्वारा उत्पन्न भावनाओं, आस्थाओं, बिंबों,
रों, प्रबोधनों तथा विभ्रमों की संरचना के ऊपर उठ जाती है। इसका कार्य-
किसी वर्ग के वस्तुगत हितों व उसकी सामाजिक स्थिति को समझ कर
तिक व व्यवस्थित रूप में व्यक्त करना होता है। सामाजिक भावनाओं एवं
के संघनन से सैद्धांतिक कार्यक्रम प्राप्त कर पाना असंभव है। विचारधारा के
स के लिए यह ज़रूरी है कि सुनिश्चित सामाजिक संबंधों की व्यवस्था के
वर्ग-विशेष की स्थिति का सैद्धांतिक विश्लेषण किया जाये ताकि अन्य वर्गों
थ उसके संबंधों को सुनिश्चित किया जा सके। अतः यह भी ज़रूरी है कि इन
वर्गों की सामाजिक भूमिकाओं तथा हितों का विश्लेषण किया जाये। समाज
ख हिस्से के वास्तविक वर्गहित को—जोकि संघटक व्यक्तियों व समूहों के
का यांत्रिक भौतिक समुच्चय नहीं होता—व्यक्त करने का एकमात्र तरीका

ज़रूरी नहीं है कि यह समग्र एकीकृत वर्ग हित उस वर्ग के भीतर विभिन्न
के (व्यक्तियों की तो बात ही छोड़ें) हितों के साथ मेल खाये; कई बार यह
विरोध भी कर सकता है। निम्न-पूंजीपति वर्ग की कमज़ोरियों में प्रमुख ही
कि यह किसी खास गुट अथवा समूह के हितों के अनुरूप अपने सिद्धांत को
की कोशिश करता है तथा अपने समूह के हितों की वेदी पर समूचे वर्ग के

लक्ष्यों की बलि चढ़ा देता है। दूसरे शब्दों में, यह संकीर्ण समूह के दृष्टिकोण से जुड़ा रहता है तथा इसलिए विशेष रूप से विस्फोटक राजनीतिक स्थितियों में समूचे वर्ग के हितों को अभिव्यक्त कर पाने में असमर्थ रहता है।

विचारों की प्रणाली के रूप में विचारधारा में व्यक्त एक वर्ग-विशेष की सैद्धांतिक चेतना उसके कार्यक्रमों, लक्ष्यों व कार्यभारों की बुद्धिसंगत व्याख्या का रूप है—समूचे वर्ग के (विशेष समूहों अथवा गुटों के ही नहीं) हितों की अभिव्यक्ति है। इसे अद्यतन वैज्ञानिक उपलब्धियों पर भरोसा करके ही विकसित किया जा सकता है। विचारधारा का यह पहला दायित्व है। फ्रांसीसी क्रांति के आरंभिक सिद्धांतकारों ने "सत्य धर्मों" के रूप में इस तरह की एकीकृत चेतना विकसित की थी।

1848-49 की क्रांति के दौरान पूंजीपति-वर्ग के विचारों की ऐसी एकीकृत प्रणाली नहीं बची थी जोकि व्यापक जन-समूहों को संघर्ष में शामिल करने के लिए नारा प्रस्तुत करने में समर्थ हो। इसका कारण यही नहीं था कि पूंजीपति वर्ग के सिद्धांतकार एवं राजनीतिक नेताओं का सम्मान एवं लोकप्रियता क्षीण हो गयी थी बल्कि यह भी था कि वे अपने काल के कार्यभारों को पूरा कर पाने के अयोग्य थे। फ्रांसीसी क्रांति (1789-1793) के पश्चात पूंजीपति वर्ग के मध्य व्यापक दक्षिणपंथी झुकाव पैदा हो गया था तथा वह अब सामंती प्रतिक्रिया से उतना भयभीत नहीं था जितना कि सर्वहारा से था। फ्रांसीसी क्रांति के दौरान पूंजीपति वर्ग ने अपने हितों की रक्षा के लिए जो मुखर सैद्धांतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया वह समूची "तीसरी एस्टेट" के हितों के भी अनुरूप था तथा पूंजीपति वर्ग की क्रांतिकारी विचारधारा में उनकी अत्यंत स्पष्ट रूप से तथा पूर्णतया अभिव्यक्ति मिली थी। यह सैद्धांतिक कार्यक्रम तीसरी एस्टेट द्वारा सामंती शासन के व्यापक विरोध में उत्पन्न हुआ था तथा जन-संघर्ष का मानक बनने में सक्षम था क्योंकि इसमें इतिहास के उस मुकाम पर जनता के तमाम हित व्यक्त हो रहे थे। सामंती-संपत्ति प्रणाली के खात्मे में जनता के बड़े हित दांव पर लगे थे।[11]

अपने युग के लिए फ्रांसीसी क्रांति की विचारधारा प्रभावी विचारधारा थी क्योंकि तीसरी एस्टेट के भीतर के अंतर्विरोध अभी भी भ्रूणीय अवस्था में थे जबकि स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व के नारों के पूरे निहितार्थ पूंजीपति वर्ग के व्यवहार में समुचित स्पष्टता के साथ उजागर नहीं हो पाये थे। नये युग की देहलीज पर प्राक्-क्रांतिकारी पूंजीवादी चेतना, जिसे कि सामंतवाद को अपदस्थ करना था, की शक्ति इस तथ्य में निहित थी कि यह क्रांतिकारी व्यावहारिक कर्म की विचारधारा थी, भविष्योन्मुख विचारधारा थी जोकि सामाजिक चेतना का उत्साह, प्रेरणा एवं उभार पैदा करने में समर्थ थी। इसके बारे मात्र भ्रमकारी नहीं थे। मार्क्स ने लिखा : "1789 की क्रांति में

पूंजीपति वर्ग के हित कतई "परास्त" नहीं हुआ बल्कि उसने सब कुछ "प्राप्त किया" तथा "अत्यंत प्रभावी जीत" हासिल की। यह दूसरी बात है कि इसकी "वार्गणिकता" लुप्त हो गयी है तथा वे "चटख भरे" फूल मुरझा गये हैं जिनसे यह "हित" अपने पालने को सजाया करता था। यह हित इतना शक्तिशाली था कि इसने मारास्त (पत्रकार) की कलम, नेपोलियन की तलवार तथा बूर्बों (फ्रांसीसी राजवंश) के शाही खून व भूस मूर्ति पर विजय प्राप्त की।"[1]

पूंजीवादी उत्पादन पद्धति तथा उससे मेल खाती जीवन शैली की स्थापना के साथ ही पूंजीवादी विचारों का अपरिहार्य रूप से अवमूल्यन हो गया तथा सामाजिक प्रगति के प्रवाह व आम जनता के हितों की ओर से उनका समर्थन बंद हो गया। यही नहीं, इन हितों व विचारों में खुली टकराहटें निरंतर बढ़ने लगीं। पुनः मार्क्स के शब्दों में : "....जनता के सबसे बड़े हिस्से—पूंजीपति वर्ग से पृथक—की क्रांति के सिद्धांत में वास्तविक रुचि नहीं थी, उसका अपना कोई क्रांतिकारी सिद्धांत न था, सिर्फ एक विचार था अतः यह मात्र क्षणिक उत्साह व ऊपरी प्रेरणा का हेतु था।"[2] स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व जैसे पूंजीवादी विचारधारा के चरम मूल्यों—जिन्हें क्रांति की पूर्व संध्या पर पूंजीपति वर्ग द्वारा प्रस्तुत किया गया था—का क्षय होने लगा तथा वे इतिहास द्वारा चलाई गयी बहस (मुकदमा) में अपना पक्ष पुष्ट नहीं कर पाये। पूंजीवादी विचारधारा गहरे असाध्य संकट के दौर में प्रविष्ट हो गयी जिसके दौरान कभी अत्यंत मूल्यवान माने जाने वाले मूल्यों का अवमूल्यन हो गया।

न केवल विचारधारा की सामान्य अंतर्वस्तु बल्कि वैचारिक अभिव्यक्तियों की संपूर्ण विविधता का विश्लेषण मार्क्सवादी पद्धतिशास्त्र की पूर्व शर्त है। सिद्धांतकारों की विशिष्टता (वैयक्तिकता), खास तौर पर उनके वैज्ञानिक एवं सैद्धांतिक प्रशिक्षण के स्तर तथा उनके नैतिक एवं राजनीतिक गुणों को भी इस विश्लेषण में समाहित किया जाता है। इस दूसरे संदर्भ को रेखांकित किया जाना चाहिए क्योंकि मार्क्सवाद के समकालीन आलोचकों के मध्य वे पुराने आरोप पुनः फ़ैशन में आ गये हैं जिनके अनुसार कथित रूप से मार्क्सवाद का सरोकार मात्र सार्वभौम समस्याओं से बताया जाता है। उनकी मान्यता है कि मार्क्सवाद जंगल को देख पाने में जो समर्थ है पर यह नहीं देख पाता है कि जंगल जीवित पेड़ों से मिलकर बना है, कि मार्क्सवाद इतिहास के सामान्य विकास—समाज, वर्गों, जनांदोलनों व जनविचारधाराओं के रूप में—का अध्ययन करता है किन्तु व्यक्तित्व व वैयक्तिक चेतना के बारे में इसकी जानकारी कम है अथवा एकदम नहीं है। उनका दावा है कि मार्क्स-

1. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'पवित्र परिवार,' संकलित रचनाएं, खंड 4, पृ० 81
2. वही, पृ० 82।

वाद सिर्फ इतिहास के राजमार्ग को देखता है तथा उस पगडंडी को देख पाने में असमर्थ है जिस पर समाज की भूल-भुलैया में भटका हुआ अकेला यात्री अपना रास्ता बना रहा है, चल रहा है। कृत्रिम रूप से निर्मित इन विरोधों के आधार पर वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मार्क्सवादी समाजशास्त्रीय विश्लेषण में व्यक्ति की निजी पहल शक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है; अंतरात्मा, विवेक एवं चयन के लिए कोई स्थान नहीं है। संक्षेप मे, मार्क्सवाद तथाकथित रूप से अस्तित्ववादी अपूर्णता से ग्रस्त है और इसलिए जीवन को उसकी विविधता में तथा अभिव्यक्तियों की संपदा को प्रतिबिंबित कर पाने में असमर्थ है।

संशोधनवादी सिद्धांतकारों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रिय रणनीति मार्क्स (की कृतियों का) के प्रामाणिक अध्ययन का दावा करना है। उनका दंभ, अशिष्टता एवं अभद्रता के अन्य लक्षणों की भाँति, इतना गहरा है कि किसी को भी यही लगेगा कि मार्क्सवाद के ये संशोधनवादी व्याख्याकार ही ऐसे लोग हैं जो मार्क्स के अध्ययन की विधि जानते हैं, जो यह जानते हैं कि मार्क्स कैसे पढ़ा और समझा जाता है। वे यह दावा करते हैं कि उनका एकमात्र सरोकार उस सबसे है जो मार्क्स ने वास्तव में कहा था। तथापि मार्क्स का प्रामाणिक अध्ययन तथा मार्क्स द्वारा वास्तव में कहे गए की खोज उनके विरोधियों की वैज्ञानिक सत्यहीनता का ही संकेत देती है। यहाँ पाठक को मार्क्स की मात्र इन कृतियों—दर्शन की दरिद्रता व लुई बोनापार्ट की अठारहवीं ब्रूमेर का संदर्भ देना ही काफी होगा ताकि वह इन आरोपों की आधारहीनता को स्वयं समझ सके।

मार्क्स ने निम्न-पूँजीवादी विचारधारा के समग्र चित्रांकन में प्रूदों, जो इस विचारधारा के ऐसे विशिष्ट प्रवक्ता थे जिनके त्रुटिपूर्ण विचारों ने मजदूर आंदोलन को खासा नुकसान पहुँचाया था, के विचारों की ओर विशेष ध्यान दिया था। यह विश्लेषण इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यक्तित्व व उसके बौद्धिक एवं नैतिक लक्षणों के अध्ययन के लिए उपयोगी व्यापक मार्क्सवादी समाजशास्त्रीय सिद्धांतों को उद्घाटित करता है।

मार्क्स ने प्रूदों के सैद्धांतिक विचारों की परीक्षा उस वर्ग—जिसके आध्यात्मिक प्रवक्ता वह थे—की वस्तुगत रूप से अंतर्विरोधी सामाजिक स्थिति के सामर्थ्य (प्रिज्म) से की थी। उन्होंने हर काम को आधा (टुकड़ों में) करने की प्रूदों की आदत, निम्न-पूँजीपति वर्ग के श्रम और पूँजी के बीच निरंतर विचलन, तथा सामाजिक विरोधों से ऊपर उठने के प्रयासों की संगति इनके सिद्धांतकारों—जिनके पास एक छद्मी विश्व-दृष्टि मात्र थी, जिन्होंने सदा ही असमाधेय तत्वों में सामंजस्य बैठाने के प्रयास किये, असंयोजनीय तत्वों को संयोजित करना चाहा तथा अलगाव को सगम बनाना चाहा और जो एक ही समय में बाड़े के दोनों ओर खड़े रहना चाहते थे—के विभिन्न दर्शनग्राही सामंजस्य के साथ बैठायी। सिद्धांतकार प्रूदों

बारे में मार्क्स का फैसला ध्वस्तकारी था : "वह संश्लेषण (का मूर्त रूप) बनना चाहते हैं—वह मिश्रित त्रुटि (का मूर्त रूप) हैं।"[1]

संश्लेषण के स्थान पर मिश्रित त्रुटि प्रूदों की अतहीन पैंतरेबाज़ी व ढुलमुलपन का अपरिहार्य परिणाम थी। यह प्रत्येक गुत्थी को सुलझाने, प्रत्येक चीज़ का समाधान करने तथा प्रत्येक मुद्दे पर सहमति पर पहुँचने के उनके निरंतर प्रयासों का भी परिणाम थी। यह सिद्धांत के प्रश्नों पर रियायतों और समझौतों—जोकि निम्न-पूँजीवादी आत्म-समर्पणवाद, राजनीतिक सिद्धांतहीनता तथा इससे उत्पन्न होने वाले वैचारिक एवं नैतिक दुरंगी चालों के लाक्षणिक रूप हैं—की भी तार्किक परिणति थी।

प्रूदों की सैद्धांतिक विभिन्न दर्शनग्राह्यता, जोकि उनके सामाजिक व्यवहार का परिणाम है, उन्हें उस व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी से मुक्त नहीं कर सकती जोकि मज़दूर वर्ग के सैद्धांतिक प्रतिनिधि के रूप में उनके कंधों पर थी, क्योंकि अपने वर्ग की वास्तविक स्थिति एवं वास्तविक हितों को सैद्धांतिक रूप में व्यक्त करना उनका सीधा उत्तरदायित्व था। प्रूदों इन अपेक्षाओं को पूरा करने में असफल रहे थे। मार्क्स ने लिखा : "प्रूदों राजनीतिक अर्थशास्त्र व कम्युनिज़्म दोनों की आलोचना प्रस्तुत करने के लिए अपनी पीठ थपथपाते हैं : वह इन दोनों के ही अयोग्य हैं। अर्थशास्त्रियों के लिए अयोग्य इसलिए हैं कि दार्शनिक के रूप में—जिसके पास जादुई फार्मूला हो—उन्होंने यह सोचा कि वह शुद्ध आर्थिक ब्यौरों में जाये बिना काम चला सकते थे तथा समाजवादियों के लिए अयोग्य इसलिए कि उनमें पूँजीवादी क्षितिज से ऊपर उठने का शुद्ध चिंतन के क्षेत्र में भी न तो साहस है और न दूरदृष्टि ही है···।

वह विज्ञान-पुरुष के रूप में पूँजीपतियों तथा सर्वहारावादियों के ऊपर उड़ना चाहते हैं : वह कुल मिलाकर निम्न-पूँजीवादी है तथा पूँजी और श्रम तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र और कम्युनिज़्म के बीच थपेड़े खाते हैं।"[2]

प्रूदों की निजी कमज़ोरियाँ उनके सैद्धांतिक पतन के लिए ज़िम्मेदार हैं। प्रूदों की आरंभिक रचनाओं पर मार्क्स-एंगेल्स ने विशेष ध्यान दिया था। यह जगज़ाहिर है कि उन्होंने इनका स्वागत किया था तथा इस स्व-शिक्षित श्रमिक सिद्धांतकार को बेहद समर्थन दिया था। साथ ही, मार्क्स-एंगेल्स ने प्रूदों को सिद्धांत में गहरे पैठने की तथा अपनी खोजों को अधिक वैज्ञानिक बनाने की सलाह भी दी थी। प्रूदों ने उक्त सलाह को नहीं माना और परिणामस्वरूप उनकी सैद्धांतिक कमियों—अपरिपक्वता व असाधारण महत्वाकांक्षा (इन चीज़ों का

---

1. कार्ल मार्क्स, 'दर्शन की दरिद्रता,' संकलित रचनाएँ, खंड 6, पृ० 178
2. वही

अधूरे ज्ञान व अधूरी संस्कृति से चोली-दामन का संबंध है)—का उनके सैद्धांतिक कार्य पर बेहद खतरनाक प्रभाव पड़ा। प्रूदों द्वारा प्रतिपादित दरिद्रता का दर्शन कुल मिलाकर दर्शन की दरिद्रता ही साबित हुआ।

जहाँ तक प्रूदों के अनुयाइयों का प्रश्न है वे, सामान्य पूँजीवादी सुधारवादियों के रूप में पतित हो जाने के कारण, विचारों की एकता, निष्ठा तथा नैतिक सिद्धांत प्रदर्शित करने में एकदम असफल रहे। वे उन लोगों में से थे जिन्होंने—महान रूसी व्यंग्यकार सोल्तिकोव—श्चेद्रिन के शब्दों में कहें तो—"परिस्थितियों के आलोक में अभिनय प्रारंभ किया तथा टुच्चेपन के आलोक में अभिनय समाप्त किया", जिनके "विचार···किसी को भी पीड़ा न पहुँचाने वाले अत्यंत तार्किक भाव हैं, तथा जिनकी अंतरात्मा रंच मात्र बची है।"[1] पूंजीपतियों ने सदा ही इस तरह के कृपालु पात्रों की भानुमती का पिटारानुमा भीड़ में से ही राजनीतिक विश्वासघातियों तथा अवसरवादियों की भर्ती की है।

मार्क्सवादी विचारधारा के सुसंगत निर्धारणवाद का अर्थ ऐतिहासिक पहलक़दमी व मनुष्यों की नैतिक ज़िम्मेदारी, उनकी अंतरात्मा व चारित्रिक निष्ठा की अवमानना क़तई नहीं है। यह एक मार्क्सवादी स्वतः सिद्ध सूक्ति है। लेनिन ने यह सिखाया कि "प्रत्येक अन्य सामाजिक वर्ग का उसके बौद्धिक, नैतिक एवं राजनीतिक जीवन की अभिव्यक्तियों की समग्रता में अवलोकन किया जाये···।"[2] उन्होंने व्यंग्य भरे लहजे में कहा, "···केवल सिद्धांतहीन लोग ही चौबीस घंटों में या चौबीस महीनों में अपनी दृष्टि बदलने की सामर्थ्य रखते हैं।"[3] निजी ज़िम्मेदारी के प्रति मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सही नज़रिया है जिसे आज के संशोधनवादी तथा मार्क्सवाद के अन्य आलोचक तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने में लगे हुए हैं।

मार्क्सवादी विश्लेषण यह दिखाता है कि अन्वेषक को सामाजिक-भौतिकवादी अर्थ में व्याख्यायित व्यक्तित्व पक्ष से स्वयं को असंपृक्त नहीं करना चाहिए। इसका अर्थ है कि उसे यह देखना चाहिए कि किसी वर्ग के सैद्धांतिक प्रतिनिधियों का सामना समय की किन अपेक्षाओं एवं कार्यभारों से हो रहा है तथा वे किस सीमा तक उन्हें पूरा करने के लिए, सैद्धांतिक एवं नैतिक अर्थ में, प्रस्तुत एवं तैयार हैं।

अलग-अलग संबंधों एवं स्थितियों में घटनाक्रियाओं के भिन्न गुण, धर्म एवं विशेषताएँ प्रकट होती हैं और इस प्रकार अपने अंतर्निहित स्वायत्त प्रावस्थों को प्रदर्शित करते हैं। जटिल सामाजिक प्रक्रिया के रूप में विचारधारा के पक्षों कार्यों की समृद्ध विविधता उन प्रक्षेपणों में सर्वाधिक व्यक्त होती है जबकि यह सामाजिक

1. एम० ई० सैल्तिकोव श्चेद्रिन, 'परी-कथाएं', मास्को, 1973, पृ० 89 (रूसी में)
2. वी० आई० लेनिन, 'हम क्या करें ?' संकलित रचनाएं, खंड 5, पृ० 412
3. वी० आई० लेनिन, 'कहाँ से शुरू करें ?' संकलित रचनाएं, खंड 5, पृ० 18

रचना के अन्य सघटक तत्वों—अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान, नैतिकता, साहित्य एवं कला—से टकराती है। अत: विचारधारा के किसी एक विशिष्ट कार्य को निरपेक्ष श्रेणी के रूप मे उभारकर, बाकी अन्य श्रेणियों से इसका विरोध दिखाना लत बात है। कुछ लोग सिर्फ यह मानना चाहते हैं कि विचारधारा का प्रमुख कार्य एक खास वर्ग के हितों को व्यक्त करना व बनाये रखना है। विचारधारा के मुख कार्य की यह परिभाषा इतने भर मे सही होने हुए भी इस मायने मे अपूर्ण है क यह विभिन्न अन्य घटनाक्रियाओ के सबध मे विचारधारा के विशेष लक्षणों को जागर कर पाने में असमर्थ है। विचारधारा के लिए वर्ग हितों को व्यक्त करना बनाये रखना बुनियादी महत्व का होने के बावजूद यह परिभाषा वैचारिक कया-व्यापार के उन विशिष्ट लक्षणो को उजागर नही कर पाती जोकि राज-नीतिक क्रिया व्यापार—जिसमे वर्ग हितो की रक्षा एक सीधा-सादा एव प्रत्यक्ष कार्य है—से पृथक हैं, हालांकि यह विचारधारा तथा विज्ञान व सामाजिक तथा प्राकृतिक विज्ञान के भेद को समुचित स्पष्टता के साथ प्रकट करती है।

विचारधारा एव सिद्धातकारों का विशिष्ट कार्य वर्ग-हितो की रक्षा करना-र नही होता बल्कि समूचे वर्ग की स्थिति एवं हितो के बारे मे सैद्धातिक जाग-कता सुनिश्चित करना होता है, इन सैद्धातिक रूप से मान्यता प्राप्त हितों को जनीति मे व सामाजिक कार्य-व्यापार के अन्य क्षेत्रो मे लागू करना होता है तथा क ऐसा कार्यक्रम तैयार करना होता है जिसके आधार पर कर्म करके संवधित र्ग अपने संघर्ष को संगठित कर सके। विचारधारा का यह भी विशिष्ट कार्य है क वह सबधित वर्ग को अन्य वर्गों व दलो के प्रति अपना रवैया सटीक ढंग से रिभाषित करने मे सहायता दे। मजदूर वर्ग की वैज्ञानिक विचारधारा में इन नियादी नीति-विषयक कार्य-भारो एवं लक्ष्यों को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है।

एक नये किस्म की विचारधारा—वैज्ञानिक विचारधारा—का गठन सैद्धां-क समस्याओ के प्रति एक नये नजरिये व "मानवता के प्रमुखतम मस्तिष्को रा पहले से ही उठाये गये प्रश्नों" के उत्तर की तलाश से ही जुडा नही था, बल्कि सकी सुपरिभाषित विश्व-दृष्टि तथा सर्वहारा की वर्गीय अंतर्वस्तु, दलीय स्वरूप दबाव की सटीक परिभाषा से भी जुड़ा हुआ था। वस्तुत: ये प्रश्न एक-दूसरे से ड़े हुए थे तथा इन्होंने समाजवादी विचारधारा के गठन दो पक्षो—इसकी वैज्ञा-क वस्तुपरकता तथा वर्गीय उद्भव—को अभिव्यक्ति दी।

समाजवादी विचारधारा का उदय विश्व इतिहास मे सर्वहारा के ध्येय को ापित करने के प्रयास से ही जुड़ा हुआ है। मजदूर वर्ग को विशिष्टता प्रदान रने वाला बुनियादी लक्षण इस तथ्य मे निहित है कि उसका व्यवहार मात्र ल्पनालोक मिथक अथवा परंपरा द्वारा नियमित नहीं होता। पूँजीवादी सबंधों के तर इसकी वस्तुगत स्थिति, इसके वर्ग-संघर्ष का चरित्र व उद्देश्य नये किस्म

की वैज्ञानिक विचारधारा की वस्तुगत आवश्यकता को जन्म देते हैं। मार्क्स-एंगेल्स ने विश्व इतिहास में मजदूर वर्ग की भूमिका को नये समाज के निर्माता के रूप में प्रकट किया, कम्युनिस्ट आदर्शों को वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित किया तथा सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष के साथ उन्हें जोड़ा। इस प्रकार सामाजिक कल्पनालोकों एवं भ्रमों का स्थान विज्ञान के ठोस आधारों ने ले लिया तथा इन्होंने सर्वहारा को संघर्ष का महान नारा दिया : शोषक समाज को क्रांतिकारी ढंग से उखाड़ फेंकने व नई, बेहतर दुनिया के निर्माण का नारा।

मार्क्स-एंगेल्स एवं लेनिन ने स्पष्ट किया कि समाजवादी विचारधारा मजदूर-वर्ग के संघर्ष एवं मुक्ति की सामान्य अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की अभिव्यक्ति है, जबकि एक पार्टी के रूप में कम्युनिस्ट समूचे आंदोलन के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा संघर्ष की बीच की अवस्थाओं के दौरान इसके चरम लक्ष्यों व कार्य-क्रम संबंधी कार्य-भारों को कभी भी नजर से ओझल नहीं होने देते। मार्क्स-एंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणापत्र में लिखा : "अतः एक ओर, व्यावहारिक दृष्टि से, कम्युनिस्ट हर देश की मजदूर पार्टियों के सबसे उन्नत और कृतसंकल्प हिस्से होते हैं, ऐसे हिस्से जो औरों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं; दूसरी ओर, सैद्धांतिक दृष्टि से, सर्वहारा वर्ग के विशाल जन-समुदाय की अपेक्षा इस अर्थ में श्रेष्ठ हैं कि वे सर्वहारा आंदोलन के आगे बढ़ने के रास्ते की, उसके हालात और सामान्य अंतिम नतीजों की सुस्पष्ट समझ रखते हैं।"[1] उन्होंने आगे कहा कि "कम्युनिस्ट मजदूर वर्ग के तात्कालिक लक्ष्यों के लिए लड़ते हैं, उनके सामयिक हितों की रक्षा के लिए प्रयत्न करते हैं; किन्तु वर्तमान के इस आंदोलन में वे भविष्य का भी प्रतिनिधित्व करते हैं और उसका ध्यान रखते हैं।"[2] जहाँ तक उनके विचारों का संबंध है "वे केवल मौजूदा वर्ग-संघर्ष से, हमारी नजरों के सामने हो रही ऐतिहासिक गतिविधि—विद्यमान वर्ग-संघर्ष—से उत्पन्न यथार्थ संबंधों की सामान्य अभिव्यक्ति हैं।"[3]

तो विचारधारा का कार्यनीति संबंधी कार्यभार मजदूर-वर्ग को उसके उन ऐतिहासिक लक्ष्यों व कार्यभारों के सैद्धांतिक बोध से संपन्न बनाना है जोकि दैन-दिन व्यवहार के प्रभाव में वर्ग की जन-चेतना में आकार ग्रहण करते हैं तथा रोजमर्रा की स्वतःस्फूर्त धारणाओं के चौखटे का अतिक्रमण करते हैं।

विचारधारा का एक सामाजिक कार्य भी है जो इसकी एकांतिक विशिष्टता है। हम विचारधारा को बौद्धिक एवं आध्यात्मिक जीवन के क्षेत्र में एक वर्ग-विशेष की नीति का सर्वांगीण रूप मान सकते हैं।

---

1. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र,' संकलित रचनाएँ, खंड 6, पृ० 497
2. वही, पृ० 518
3. वही, पृ० 493

जैसे ही भौतिक उत्पादन परिवर्तित होता है यह आध्यात्मिक उत्पादन को
भावित करने वाले परिवर्तनों को भी जन्म देता है। साथ ही सामाजिक-आर्थिक
व राजनीतिक परिस्थितियों द्वारा निर्मित बौद्धिक एवं आध्यात्मिक जीवन
माज की प्रमुख विचारधारा तथा वैचारिक कारकों की व्यापकता व समग्रता के
भाव के अंतर्गत विकसित होता है। आध्यात्मिक जीवन की जटिलता व भावुक
वृत्ति के कारण इसके विकास को प्रभावित करने वाले वैचारिक कारकों का स्थान
सी अन्य नियामकों, उपायों व साधनों द्वारा नहीं लिया जा सकता जो तनिक भी
भावी हो सकें।

प्रत्येक वर्ग आध्यात्मिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, आध्यात्मिक उत्पादन की
रिधि में अपनी स्वयं की वैचारिक नीति की क्रियान्विति को अत्यंत महत्वपूर्ण
ानता है। यह सामाजिक चेतना एवं जनमत पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को भी
हद महत्वपूर्ण मानता है तथा इस तथ्य को ध्यान में रख कर ही अपनी वैचारिक
णनीति तथा शेष समाज पर प्रभाव डालने की पद्धतियों, विधियों व उनके रूपों
ो विकसित व निर्मित करता है।

किसी वर्ग का वैचारिक प्रभाव, विचारों को प्रेरित, संघटित एवं संचारित
रने की क्षमता उसकी ऐतिहासिक जीवन क्षमता (व्यवहार्यता) की सही निशानी
। अतः यह तर्कपूर्ण ही है, जैसाकि लेनिन ने रेखांकित किया : "जब मजदूरों पर
ूंजीपति वर्ग का वैचारिक प्रभाव क्षीण होने लगता है, कमजोर पड़ने लगता है या
म करके आंका जाने लगता है तो पूंजीपति-वर्ग सर्वत्र व हमेशा अत्यंत घृणित
सत्य एवं मिथ्यापवाद का सहारा लेता है।"[1] असत्य एवं मिथ्यापवाद, खुली
चारिक बहस में शामिल होने व वैचारिक सिद्धांतों की सीधी तुलना करने से
ंकार करना आदि पूंजीवादी विचारधारा के प्रभाव के क्षीण होने के तथा इसके
ंतरिक क्षय के पक्के लक्षण हैं।

विचारधारा वर्ग-हित को व्यक्त करती है पर सवाल यह है कि इसके मायने
ा हैं। हित के संबंध में मार्क्सवादी मान्यता यह है कि यह कोई आत्मगत अथवा
मानी चीज नहीं होती, बल्कि इसके विपरीत, इसकी वस्तुनिष्ठ अंतर्वस्तु होती
योंकि एक वर्ग-विशेष की सामाजिक-आर्थिक स्थिति से पैदा होती है। एंगेल्स ने
र देकर कहा : "किसी भी समाज के आर्थिक संबंध स्वयं को मुख्य रूप से हितों
रूप में प्रस्तुत करते हैं।"[2] वास्तविकता की वैचारिक पड़ताल का विशिष्ट
ाण यह होता है कि यह उनके हितों की व्याख्या के माध्यम से वर्गों के आर्थिक

वी॰आई॰ लेनिन, 'मजदूर वर्ग के खिलाफ पूंजीवादी बुद्धिजीवी वर्ग के संघर्ष की पद्धतियां,' संकलित रचनाएं, खंड 20, पृ॰ 485

फ्रेडरिक एंगेल्स, 'आवास समस्या,' संकलित रचनाएं तीन खंडों में, खंड 2, पृ॰ 363

संबंधों से प्रभावित होती है यानी विचारधारा हितों को सरल मानकर उनका अध्ययन नहीं करती बल्कि सामाजिक हितों में उनके आवर्तन के नियम के माध्यम से उनका अध्ययन करती है। वास्तविकता के किसी भी सामाजिक संज्ञान में वैचारिक तत्व निहित होता है तथा कोई भी विचारधारा समाज विज्ञानों के निष्कर्षों का उपयोग करने की चेष्टा करती है। विचारधारा में एक अन्य कार्य-भार, जो राजनीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, प्रमुख बन जाता है—किसी वर्ग के कार्यक्रम-लक्ष्यों को सूत्रित करना, सामूहिक हितों को (ये हित सर्वहारा वर्ग के भीतर भी व्यापक तौर पर अलग हो सकते हैं) एकमात्र हित में एकताबद्ध करना जोकि उस वर्ग के संघर्ष के कार्यक्रम-लक्ष्यों को अभिव्यक्ति दे सके तथा उस समूचे वर्ग के सामान्य हित को (संकीर्ण समूह के हित को नहीं) अभिव्यक्ति दे सके।

विचारधारा में व्यक्त कार्यक्रम-लक्ष्यों तथा सामान्य वर्ग-हितों के आधार पर ही संबंधित वर्ग अपनी पांतों को मजबूत करता है तथा अपनी राजनीतिक स्व-चेतना विकसित करता है। अन्य वर्गों से उस वर्ग की भिन्नता तथा उसकी स्वयं की भूमिका एवं लक्ष्य को समझने में यह सहायक होती है। दूसरे शब्दों में, विचारधारा समाज में विभिन्न वर्गों की स्थिति का एकीकृत चित्र प्रस्तुत करती है। कोई आश्चर्य नहीं कि लेनिन ने इस बात पर जोर दिया कि मजदूर वर्ग की समाजवादी चेतना न केवल पूंजीपति वर्ग से अपने संबंधों को बल्कि तमाम अन्य वर्गों से व राज्य से अपने संबंधों को समाविष्ट करती है।[1]

रूस के सर्वहारा की क्रांतिकारी चेतना सापेक्षतया तीव्रता से इसलिए विकसित हो सकी क्योंकि बोलशेविक पार्टी किसी भी वर्ग के साथ कुशासन, दमन, हिंसा तथा दुर्व्यवहार की प्रत्येक घटना का विरोध करने से संबंधित, लेनिन द्वारा निर्धारित, कार्य-भार को सफलतापूर्वक अंजाम दे पायी।

विचारधारा की कारगरता, सामाजिक प्रगति तथा विज्ञान एवं संस्कृति के विकास पर उसके प्रभाव की मात्रा इसके संज्ञानात्मक एवं सामाजिक कार्यों के आंतरिक अन्योन्याश्रय पर निर्भर करते हैं। वास्तविकता की व्याख्या किये बिना विचारधारा सामाजिक संकेत-स्तंभ की भूमिका नहीं निभा सकती क्योंकि उसमें संज्ञानात्मक अन्वेषकीय तत्व निहित होता है। विचारधाराओं में सामाजिक एवं ज्ञानशास्त्रीय पक्षों के अन्योन्याश्रय की समस्या ठोस ऐतिहासिक समस्या है जिसका समाधान भाववादी तरीक़े से संभव नहीं है।

मार्क्स ने यह सिद्ध कर दिया था कि 1848-49 की क्रांति के दौरान पूंजीवादी और खास तौर से निम्न-पूंजीवादी विचारधारा आंतरिक संरचना की दृष्टि से सर्वदर्शनग्राही थी। वह वास्तविकता की संयत-संतुलित व्याख्या नहीं कर पायी, प्रभुत्वशाली वर्ग के भीतर गुटों व समूहों की कलह व प्रतिद्वंद्विता से ऊपर उठ

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'हम क्या करें ?' संकलित रचनाएं', खंड 5, पृ॰ 400-01

पाने में असफल रही तथा जनतंत्र की रक्षा को आवश्यक मानकर अपने समग्र हितों को सूत्रित कर पाने में असफल रही। अपने पूँजीवादी-जनतंत्रीय तथा राजनीतिक सिद्धांतों का कदम दर कदम परित्याग करके इसने बोनापार्ट की तानाशाही का मार्ग प्रशस्त किया। संकीर्ण समूह के भेदकारी हितों की बेदी पर वर्ग-हितों की बलि चढ़ा दी गयी। इसके विपरीत, 1789-93 की फ्रांसीसी पूँजीवादी-जनतंत्रीय क्रांति की विचारधारा कुल मिलाकर उस युग की समुचित आध्यात्मिक अभिव्यक्ति थी तथा उसकी तमाम जीतों व हारों, सत्यों व त्रुटियों में भागीदार थी। अपने समय के लिए वह विकसित विचारधारा थी जोकि बड़े ऐतिहासिक संदर्भ में कर्म का तथा दुनिया की वैज्ञानिक पड़ताल का मार्ग-दर्शक बनने में समर्थ थी।

एक अन्य ऐतिहासिक परिस्थिति में व एक अन्य देश—1860 के दशक के रूस—में रूसी क्रांतिकारी जनतंत्र के प्रतिनिधि किसान जनता के हितों तथा सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं को अभिव्यक्ति देने में सफल रहे तथा उन्होंने ऐसी व्यापक व एकीकृत क्रांतिकारी-जनतंत्रीय विचारधारा को विकसित किया जोकि उस काल के रूस की दृष्टि से काफी आगे की थी। इन दोनों ही उदाहरणों में विचारधारा के सामाजिक कार्यों ने संज्ञान के कार्य-भारों का खंडन नहीं किया बल्कि वस्तुतः उनके समाधान को ही प्रेरित किया और इसी कारण से ये वैचारिक प्रवाह मानवता के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विकास में अगला क़दम माने जाते हैं।

किसी विचारधारा को संज्ञानात्मक कार्यों के क्षय का अर्थ है विद्यमान चेतना का आंतरिक संकट। इसका कारण यह हो सकता है कि संबंधित वर्ग की सामाजिक ऐतिहासिक भूमिका में परिवर्तन आ गया है या उसके दृष्टिकोणों तथा सामाजिक प्रगति की मुख्य धारा में गतिरोध उत्पन्न हो गया है। अस्तु, आरंभिक पूँजीवादी विचारधारा अपने समय के विकसित दार्शनिक सिद्धांतों—सटीक तर्कवाद तथा अपार मानवीय क्षमताओं में आस्था जिनकी विशिष्टता थी—से पैदा हुई थी। हेगेल ने लिखा : "आइसिस"[1] के घूँघट पर लिखे ये शब्द—"जो कुछ भी था, है और रहेगा वह मैं हूँ। किसी मनुष्य ने कभी भी मेरा घूँघट नहीं उठाया चिंतन की शक्ति के सामने विलीन हो जाते हैं।[2]"

मौजूदा पूँजीवादी विचारधारा—जो अतार्किकता के छोर तक पहुँच गई है, जिसने सामाजिक यथार्थ की वैज्ञानिक व्याख्या को त्याग दिया है और इस प्रकार समूचे व्यवहार में अपने संज्ञानात्मक कार्यों को भुला चुकी है—मूलभूत रूप से भिन्न चित्र प्रस्तुत करती है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संज्ञानात्मक

1. आइसिस—जनन क्षमता की देवी (मिस्र) जिसकी बाद में यूनान व रोम के साम्राज्यों में भी पूजा-अर्चना होने लगी। (अनुवादक)
2. हेगेल, रचनाएँ, खंड 9, फ्रेंकफर्ट, 1970, पृ० 19

कार्यों की इसकी क्षति को सरलीकृत रूप मे पेश न किया जाये। यह एक तथ्य है कि इजारेदार पूंजी (उनकी सीमित एवं स्थानीय प्रकृति के बावजूद) द्वारा मौजूदा वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के नतीजों को इजारेदार घरानों की आवश्यकताओं के अनुकूल ढालने के उपाय पूंजीवादी समाजशास्त्र व प्रबंध विज्ञान—जोकि पूंजीवादी विचारधारा की मुख्य धारा मे हैं तथा इसकी उदारवादी प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति देते हैं—के चौखटे के भीतर विकसित किये गये हैं। ये घटनाएँ लेनिन के निष्कर्ष से मेल खाती हैं कि विशेष क्षेत्रों मे काम करने वाले पूंजीवादी वैज्ञानिक मूल्यवान योगदान कर सकते हैं किन्तु दर्शन के क्षेत्र में—यानी समूचे समाज के जीवन के बारे मे मूलभूत साधारणीकरणों का सवाल उठने पर—उन पर रंच मात्र भी भरोसा नही किया जा सकता।[1] लेनिन ने इस मुद्दे पर मार्क्सवादी वैज्ञानिकों की स्थिति को सूचित किया ताकि वे विशिष्ट पड़तालों के परिणामों को व्यावहारिक समस्या-समाधान के लिए लागू कर सकें और साथ ही "वे अपनी प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति की काट-छांट कर सकें, सर्वहारा की नीति का अनुसरण करके हमारी विरोधी शक्तियों व वर्गों की संपूर्ण नीति से संघर्ष कर सकें।"[2]

अपने जन्म से ही समाजवादी विचारधारा—जिसमे सत्य की खोज तथा सर्वहारा के वर्ग-हित की रक्षा पूरी तरह मे रच-बस गये हैं—का चरित्र निर्विवाद रूप से सुसंगत वैज्ञानिक रहा है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा मे सत्य एवं वर्ग-हित की श्रेणियां एक-दूसरे की विरोधी तो नहीं हैं बल्कि पारस्परिक रूप से पूरक हैं। मजदूर वर्ग की सामाजिक स्थितियां वैज्ञानिक ज्ञान के विकास को निश्चित करती हैं। विज्ञान की सफलताएँ जितनी अधिक होंगी यह सर्वहारा के प्रमुख हितों के साथ उतना ही अधिक संगति कायम कर पायेगा। चीजों के प्रति वर्गाभिमुख दृष्टिकोण में स्वार्थपरता का भाव कतई नहीं है क्योंकि यह दृष्टिकोण किसी भी किस्म की संकीर्णता—सामाजिक, जातीय और राष्ट्रीय—से सर्वथा मुक्त है। इसका कारण इस विचारधारा के उत्कृष्ट सिद्धांतकारों की अनिंद्य व्यक्तिगत एवं बौद्धिक ईमानदारी ही नहीं है बल्कि सर्वहारा की वह वस्तुपरक स्थिति भी है जिसका वे प्रतिनिधित्व करते थे।

विचारधारा का एक प्रमुख कार्य-भार समाज में एक वर्ग-विशेष की वस्तुगत स्थिति की सैद्धांतिक अर्थ मे बुद्धिसंगत व्याख्या प्रस्तुत करना, उसके प्रमुख हितों की पहचान करना तथा अंततः उसका लक्ष्य का सारा सूचित करना है। इससे वर्ग-विशेष के वैचारिक प्रतिनिधियों के लिए यह अपरिहार्य हो जाता है कि वे

---

1. व्ला॰ इ॰ लेनिन, 'भौतिकवाद तथा अनुभवसिद्ध आलोचना,' संकलित रचनाएँ, खंड 14, पृ॰ 342
2. वही, पृ॰ 343

गंभीर वैज्ञानिक कर्म में संलग्न हों, समस्त सामाजिक प्रक्रियाओं पर वर्गाभिमुख विचारों को बलपूर्वक प्रस्तुत करें, क्योंकि तटस्थ, अपक्षपाती समाज विज्ञान जैसी कोई चीज नहीं होती जैसे वर्गों के वास्तविक एवं व्यावहारिक हितों को प्रभावित करने वाली घटनाक्रियाओं के बारे में कोई निष्पक्ष नजरिया नहीं होता।

समाजवादी विचारधारा इस कार्य-भार को हाथ में लेने के पूरे अवसर प्रदान करती है क्योंकि वैज्ञानिक विचारधारा के रूप में इसने सामाजिक चिंतन के इतिहास में पहली बार सामाजिक एवं ज्ञानशास्त्रीय कार्यों की सुव्यवस्थित एकता अर्जित की है।

विचारधारा—सामाजिक कर्म के कारक के रूप में

विचारधारा सामाजिक यथार्थ के प्रतिबिंबन एवं पड़ताल का विशिष्ट रूप ही नहीं है; धारणाओं, विचारों, बिंबों एवं आदर्शों की वर्ग-निर्धारित सैद्धांतिक प्रणाली ही नहीं है अपितु क्रियाशील विचारों की सुनिश्चित प्रणाली—सामाजिक व्यवहार में संलग्न प्रणाली—भी है।

भौतिक संबंधों की प्रमुखता तथा वैचारिक संबंधों की अनुपूरक प्रकृति का अर्थ मानवीय कार्य-व्यापार में सक्रिय सामाजिक कारक के रूप में विचारधारा का नकार अथवा अवमानना नहीं है। विचारधारा के भाववादी विश्लेषण (जो उसमें विश्वकर्मा के, इतिहास के निर्माता के दिव्य दर्शन पाता है) की सार-वस्तु का पर्दाफाश करते हुए मार्क्स-एंगेल्स ने जोर देकर कहा कि यह नजरिया "चीजों को उलटकर, सिर के बल खड़ा कर देता है।"[1]

समस्या के प्रति इस नजरिये के उत्स एक तो प्रमुख ज्ञान-शास्त्रीय समस्या के समाधान—भौतिक तत्व की प्रमुखता तथा वैचारिक तत्व की अनुपूरक महत्ता—में तथा दूसरे, सामाजिक जीवन की परिस्थितियों पर वैचारिक रूपों की निर्भरता की स्थापना में खोजे जा सकते हैं। विचारधारा की प्रकृति से संबंधित पहले कार्य-भार को सुलझा पाने में असफलता ने भूमिका से संबंधित कार्य-भार का समाधान असंभव बना दिया। इस समस्या से जूझने की सही मायने में यही एकमात्र ऐतिहासिक व तर्कसंगत प्रविधि थी।

किसी खास विचार के उद्भव को वैज्ञानिक दृष्टि से पहचान कर पाने, सामाजिक चेतना में सामाजिक जीवन के प्रतिबिंबन की सटीकता को सिद्ध करने का अर्थ है उनकी जीवन क्षमता, सामाजिक कारगरता तथा इतिहास के प्रवाह को सक्रिय रूप से प्रभावित करने की उनकी क्षमता का मूल्यांकन करना। वैज्ञानिक

1. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा,' संकलित रचनाएं, खंड 5, पृष्ठ 420

समाजवाद के विचारों की शक्ति के प्रमुख स्रोत की चर्चा करते हुए लेनिन ने इसे अत्यंत सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किया : "मार्क्सवादी सिद्धांत सर्वशक्तिमान है क्योंकि यह सत्य है।"[1]

इस समस्या का एक और पक्ष है विचारधारा के सिद्धांत में भौतिकवाद वैचारिक कार्य-व्यापार में यथार्थवाद से सीधा जुड़ा हुआ है। समस्त सामाजिक प्रक्रियाओं के प्रति भौतिकवादी दृष्टि के आधारों से ही समाज के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के वैचारिक पक्षों की पड़ताल संभव है। और इसी से उन बड़े अवसरों को गतिशील बनाया जा सकता है जो व्यावहारिक कार्य-भारों से जूझने के लिए संलग्न मनुष्यों के श्रेष्ठ संघटन तथा प्रतिबद्धता द्वारा प्राप्त कर लिये जाते हैं।

एंगेल्स ने इस बात पर ज़ोर दिया कि "राजनीतिक, विधिक, दार्शनिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक विकास आर्थिक विकास पर आधारित है। किन्तु ये सब एक-दूसरे से अभिक्रिया करते हैं तथा आर्थिक आधार से भी करते हैं।"[2] सामाजिक प्रक्रियाओं पर पारस्परिक प्रभाव की इस प्रक्रिया तथा पुनर्निवेशन परिणाम के समुच्चय में विचारधारा सापेक्ष स्वतंत्रता एवं सक्रियता प्रदर्शित करती है।

विचारधारा सामाजिक जीवन का प्रतिबिंब है। स्वाभाविक ही है कि इस प्रतिबिंब की पूर्णता की मात्रा एवं गहराई प्रतिबिंब सामाजिक संबंधों की परिपक्वता की मात्रा पर निर्भर करती है। इस प्रकार, उन्नत समाजवाद की धारणा मार्क्सवादी-लेनिनवादी विज्ञान में ही आकार ग्रहण कर पायी, जब असल में समाजवादी सामाजिक रूपों ने पूरी परिपक्वता प्राप्त कर ली। साथ ही, नई समस्या का समाधान ऐसे सटीक वैज्ञानिक आधारों की माँग करता है जोकि अन्वेषक को उपयुक्त पद्धतिमूलक उपकरणों से संपन्न करें तथा उसे आवश्यक वैचारिक एवं सैद्धांतिक सामग्री मुहैया कराएँ। उन्नत समाजवाद की अवधारणा का विवेचन समकालीन सामाजिक व्यवहार पर ही आधारित नहीं था बल्कि कम्युनिस्ट निर्माण की दो अवस्थाओं—समाजवादी क्रांति व समाजवादी निर्माण—के सिद्धांत के समूचे पूर्ववर्ती मार्क्सवादी-लेनिनवादी विकास ने इसे स्पष्ट आकृति प्रदान कर दी थी।

इस सबने उन्नत समाजवादी समाज के बुनियादी लक्षणों के ब्यौरेवार चित्रांकन को अपरिहार्य घटक के रूप में नये गठन के संदर्भ में इतिहास में इसका स्थान पूँजीवाद से समाजवाद तक के सापेक्षतया लंबे मार्ग के रूप में वैज्ञानिक सटीकता के साथ परिभाषित करने को संभव बनाया।

---

1. वी० आई० लेनिन, 'मार्क्सवाद के तीन स्रोत व तीन घटक,' संकलित रचनाएँ, खंड 19, पृष्ठ 23
2. फ्रेडरिक एंगेल्स, चयनित पत्रावली, पृष्ठ 441-42

मोटे तौर पर, यह सामाजिक चिंतन के समूचे प्रगति की रूपरेखा है जोकि विचारों के विकास में अंतर्निहित तर्क, तथा सैद्धांतिक एवं वैचारिक प्रश्नों के प्रस्तुतीकरण एवं समाधान में सुसंगतता की पूर्वशर्त को रेखांकित करती है।

यथार्थ के वैचारिक प्रतिबिंबन का विशिष्ट लक्षण इस तथ्य में निहित है कि समाज का आर्थिक आधार सामाजिक चेतना के अलग-अलग प्रिज्मों से अलग-अलग तरह से अपवर्तित होता है तथा यह अपवर्तन आध्यात्मिक उत्पादन के विशिष्ट रूपों के विकास को संचालित करने वाले आंतरिक नियमों से प्रभावित होता है—उदाहरण के लिए साहित्य एवं कला के आंतरिक नियम, विधि एवं नैतिकता के क्षेत्र में क्रियाशील नियमों से भिन्न है। आध्यात्मिक मूल्यों के संचित कोष को विरासत में प्राप्त करने व विकसित करने की प्रक्रिया संबंधित बौद्धिक क्षेत्र की खासियत के अनुरूप विशिष्ट रूप धारण करती है। कहने का अर्थ यह है कि कला की तुलना में दर्शन में यह प्रक्रिया भिन्न रूप धारण करती है।

विधिक मानदंड, नैतिक सिद्धांत, आर्थिक अवधारणाएँ तथा दार्शनिक श्रेणियाँ यथार्थ के दर्पणनुमा सहज प्रतिबिंब कतई नहीं होते, वास्तविक घटनाक्रियाओं की यांत्रिक अनुकृतियाँ नहीं होतीं बल्कि सुपरिष्कृत बौद्धिक प्रयास—जिसमें असंपृक्तता तथा अमूर्तन की समुचित मात्रा निहित होती है—का परिणाम होते हैं। इसी तरह कलात्मक बिंब सामाजिक-आर्थिक श्रेणियों अथवा दार्शनिक मान्यताओं के दृष्टांत नहीं होते हैं। कलात्मक एवं वैज्ञानिक चिंतन, अपनी खासियत के अनुरूप रूपों एवं विधियों का प्रयोग करके, वस्तुतः यथार्थ को प्रतिबिंबित करता है। इन विशिष्ट रूपों एवं विधियों का प्रयोग जितना अच्छा होता है। परिणामी प्रतिबिंब भी उतना ही अधिक सटीक एवं व्यापक होता है।

विचारधारा की क्रियाशीलता की समस्या को ऐतिहासिक प्रक्रिया की व्याख्या की प्रकृति तथा सामाजिक विकास में आत्मगत कारक की भूमिका से पृथक नहीं किया जा सकता है। मार्क्सवाद के आलोचक इतिहास में वस्तुपरक तथा आत्मपरक की दुविधा का अभी तक समाधान नहीं कर पाये हैं।

एक ओर तो पश्चिमी समाजशास्त्री इस आधार पर कि वह संबंधित घटनाओं के सटीक प्रारंभिक समेकन को खारिज करती है मार्क्सवादी विचारधारा को अंतर्बोधवादी अवधारणा मानते हैं। विचारधारा का काम मात्रात्मक गणनाएँ प्रस्तुत करना अथवा क्रांति जैसी खास घटनाओं के घटित होने की समय-सारणी देना नहीं होता क्योंकि क्रांतियाँ फ़रमाइश के हिसाब से नहीं होती हैं।

इतिहास की वैचारिक कल्पना का कार्य-भार अलग क़िस्म का होता है यानी सामाजिक विकास की बुनियादी प्रवृत्तियों को सही ढंग से पहचानना, घटनाओं, तथ्यों एवं घटनाक्रियाओं के बहुरूपदर्शी में उनकी जटिल एवं अंतर्विरोधपूर्ण बुनावट को उद्घाटित करना, इन प्रवृत्तियों के पीछे की सामाजिक शक्तियों को उजागर

करना, तथा इस आधार पर यह पूर्वानुमान लगाना कि ऐतिहासिक विकास का वस्तुगत तर्क भविष्य को कैसे निर्मित करेगा व इस अथवा उस घटना के घटित होने की संभावना का अनुमान लगाना आदि—युक्त कार्य-भार के अंग हैं। यह समझ पाना आसान है कि मार्क्सवाद के आलोचक जिसे अंतर्बोधवाद कहते हैं वह दरअसल ऐतिहासिक प्रक्रिया के बहुआयामी स्वरूप के प्रति मार्क्सवाद की द्वंद्वात्मक-भौतिकवादी दृष्टि ही है तथा जो यांत्रिक निर्धारणवाद की शिकार नहीं है।

दूसरी ओर, पूंजीवादी सिद्धांतकार ऐतिहासिक भौतिकवाद को सामाजिक विकास के प्रकृतवादी विवेचन से बराबरी करके इसे यांत्रिक निर्धारणवाद के एक रूप के रूप में प्रस्तुत करने के प्रयास कर रहे हैं।

असलियत में, इसकी उलट ही सही है। मार्क्स-एंगेल्स ने जोर देकर कहा था कि वे "···वास्तविक क्रियाशील मनुष्यों को ही प्रस्थान बिंदु मानकर प्रारंभ कर रहे थे···।"[1] अपने विचारों को सुस्पष्ट रूप में रखकर उन्होंने इतिहास के उस नजरिये का निरंतर विरोध किया जोकि उसे गुमनाम भाग्यवादी प्रक्रिया बना देता है जहां वर्गों व पार्टियों की पेशकदमी तथा वास्तविक मनुष्यों के सामाजिक कर्म के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती। एंगेल्स की मान्यता थी : "इतिहास कुछ नहीं करता, इसके पास कोई भारी संपदा नहीं होती, तथा कोई युद्ध नहीं छेड़ता। मनुष्य ही—वास्तविक, जीवित मनुष्य ही—यह सब करता है, जिसका संपदा पर स्वामित्व होता है तथा जो लड़ता है; इतिहास कोई अलग व्यक्ति नहीं है जोकि अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मनुष्य का साधन के रूप में इस्तेमाल करता है, अपने उद्देश्यों के अनुरूप आगे बढ़ते हुए मनुष्य की क्रियाशीलता के अलावा इतिहास कुछ नहीं है। हमारे युग के सृजनात्मक जीवन मार्क्सवाद के रूप में लेनिनवाद ने ऐतिहासिक प्रक्रिया के इस सक्रिय पक्ष को पूरी तरह अंगीकार किया है जो मनुष्यों की क्रियाशीलता की परिधि के बाहर, उसमें व्यक्त आत्मगत कारक के बिना साकार एवं फलीभूत नहीं हो सकता।"[2]

यहां इस बात पर गौर करना जरूरी है कि हाल के वर्षों में मानव व्यक्तित्व के क्रियाशील चरित्र से संबंधित मार्क्सवादी प्रस्तावना पर निरंतर हमले हुए हैं तथा सर्वाधिक हमले संशोधनवादियों की ओर से आये हैं जिन्हें डर है कि व्यक्तियों के प्रश्न पर जरूरत से ज्यादा जोर देने का परिणाम यह हो सकता है कि जनता की भूमिका वास्तविक रूप से भुला दी जाये। लेकिन यह डर वास्तविक न होकर मिथ्या आभास ही है क्योंकि यह केवल समाजवाद की व्यापक विचारधारा व उसके व्यवहार से उत्पन्न हुआ है जहां व्यक्तित्व की रुचि उन उद्देश्यों एवं कार्य-भारों की [illegible]

---

1. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, "पवित्र परिवार," संकलित रचनाएं, खंड [illegible], पृष्ठ [illegible]
2. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, "पवित्र परिवार," संकलित रचनाएं, खंड 4 पृष्ठ [illegible]

पर थोपा दी जाती है जोकि सही समाजवादी विश्वदृष्टि व जीवन व्यवहार के लिए विजातीय है। अमूर्त व्यक्तित्व और शक्लहीन गुमनाम जनता का ध्रुवीकरण मात्र निम्न-पूँजीवादी मनोवृत्ति का विशिष्ट चारित्रिक लक्षण है—फिर चाहे वह व्यक्ति को प्रमुख मानें अथवा जनता को।

ऐतिहासिक प्रक्रिया के क्रियाशील पक्ष के भीतर, उन मनुष्यों की सामाजिक क्रियाशीलता में जिन्होंने अपने लक्ष्यों एवं कार्य-भारों का सीमांकन कर लिया है, नई सामाजिक शक्तियों के गठन एवं सुदृढ़ीकरण में जो सृजनात्मक भूमिका है वह विचारों की है—ऐसे विचारों की जो किसी ऐतिहासिक आंदोलन के अनिवार्य तत्व बनने के लिए मनुष्यों के मस्तिष्कों पर छा गये हैं।

किसी भी विचारधारा की सार्थकता एवं प्रासंगिकता सामाजिक विकास पर उसके असर द्वारा निर्धारित होती है। नये विचार स्वतः ही हमें पुराने विचारों की सीमाओं के परे ले जा सकते हैं। किन्तु वस्तुओं का सार-तत्व तभी परिवर्तित होता है जबकि "सिद्धान्त" "जनता द्वारा अपनाये जाते ही भौतिक शक्ति बन जाता है।"[1] वैज्ञानिक समाजवाद एवं मजदूर आंदोलन के सम्मिश्रण के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत को इस सूत्र में सहज रूप से खोजा जा सकता है।

समस्त पूर्ववर्ती वैचारिक प्रवृत्तियों व दार्शनिक प्रणालियों की तुलना में मार्क्सवाद ने एक बुनियादी रूप से नया कार्य-भार—विचारधारा को भौतिक शक्ति में रूपांतरित करने का—प्रस्तावित किया। मार्क्स ने इस कार्य-भार को दो बुनियादी पक्षों के रूप में देखा : (1) सिद्धान्त जनता की संपत्ति बन जाना चाहिए तथा (2) क्रांतिकारी जन-आंदोलन के बिना क्रांतिकारी जन-चेतना असम्भव है।

इस समस्या के प्रति मार्क्स के नजरिये में जो नई चीज थी वह यह कि उनसे पहले बड़े-से-बड़े चिन्तकों ने, प्रगतिशील विचारों की सामाजिक सार्थकता के पूरे बोध के बावजूद, इस समस्या के सार को सही न आँक कर इसे—इस विश्वास में कि विचार अपने बूते पर ही दुनिया को सुधार देंगे—शासकों के खास विचारों से बदल दिया था। मसलन, जब काल्पनिक समाजवादी अपने विचारों को व्यापक रूप से प्रचारित करने की बात करते थे तो उन्हें यह निश्चित विश्वास था कि वे सत्ताधारियों के बीच से शिक्षित, प्रबुद्ध लोगों की आस्था को अवश्य ही बदल देंगे। उन्हें अपनी विचारधारा का कायल कर लेंगे। मार्क्स का दृष्टिकोण बुनियादी रूप से भिन्न था। मार्क्स की दृष्टि में नई विचारधारा की कारगरता की यह लाजमी शर्त थी कि सिद्धान्त जनता को मंत्र-मुग्ध कर दे। जन-चेतना को क्रांतिकारी व्यावहारिक कर्म के अपरिहार्य पक्ष के रूप में परिवर्तित किया जाना था।

किसी-न-किसी रूप में क्रांति सिर्फ इसलिए जरूरी नहीं थी कि शासक वर्ग

1 कार्ल मार्क्स, 'हेगेल के विधि दर्शन की आलोचना की भूमिका' 'संकलित रचनाएं', खंड 3, पृष्ठ 182

को आत्मसात करने का अन्य कोई तरीका नहीं था बल्कि इसलिए भी जरूरी था कि क्रान्तिकारी संघर्ष के माध्यम से ही दमित वर्ग अपनी स्वयं की मनोवृत्ति को बदलने में सक्षम हो सकता था।

ये प्रस्थापनाएँ इस रूप में ध्यान देने योग्य हैं कि ये दिखाती हैं कि मार्क्सवाद विकसित विचारों, वैज्ञानिक सिद्धान्त व क्रान्तिकारी विचारधारा को विद्यमान हालात को बदलने के साधन के रूप में कितना बड़ा महत्व देती है। उन्होंने विश्वसनीय रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि मार्क्सवाद का यांत्रिक भौतिकवाद से अथवा चेतना की सक्रिय रूपान्तरणकारी भूमिका का नकार करने वाले यांत्रिक निर्धारणवाद से कुछ लेना-देना नहीं है। विचारधारा यथार्थ तथा विकसित वर्ग के वास्तविक हितों को जितनी सटीकता से प्रतिबिम्बित कर पाती है, यह व्यावहारिक जन-चेतना को भी उतनी ही गहराई से प्रभावित करती है। तथा इतिहास के प्रवाह पर इसका असर भी उतना ही ज्यादा होता है।

विचारधारा की क्रियाशीलता की समस्या के समाधान में मार्क्सवाद ने उन्नत किस्म की चेतना से जनता को परिचित कराने के तरीक़े के प्रति एक नया नज़रिया अख़्तियार किया—राजनीतिक शिक्षा व स्व-शिक्षा के प्रति नया नज़रिया। मार्क्सवाद के उदय से पूर्व जो दृष्टिकोण (प्रबोधकों का दृष्टिकोण) प्रचलित एवं प्रभावी था उसने, ज्ञान के समेकन की वस्तुगत पूर्वा-पेक्षाओं को अलग हटाकर, ज्ञान के प्रसार में समूचे प्रश्न को घटाकर रख दिया था। मार्क्स ने वैज्ञानिक ज्ञान जनता के राजनीतिक शिक्षण, व सर्वोपरि समूचे मजदूर वर्ग के राजनीतिक शिक्षण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना। लाशात्रे (फ्रांसीसी भाषा में पूँजी के प्रथम खंड के प्रकाशक) को अपने पत्र मे उन्होंने लिखा : "मैं पूँजी के फ्रांसीसी अनुवाद को नियतकालिक किश्तों मे प्रकाशित करने के आपके विचार को पूरी तरह स्वीकार करता हूँ। इस रूप में यह रचना मजदूर वर्ग की और भी अधिक पहुँच के भीतर आ जायेगी तथा मेरे लिए यह निर्णायक महत्व की चीज है।"[1]

साथ ही, शिक्षा के नाम पर अमूर्त उपदेशबाजी व थोथी उपदेशबाजी से मार्क्सवादी शिक्षा का कुछ लेना-देना नहीं है। मार्क्स-एंगेल्स ने यह लिखकर नैतिकतावादियों का तीखा उपहास किया : "दार्शनिक सीधे-सीधे यह नहीं कहता : तुम जन नहीं हो। वह कहता है : तुम जन तो हमेशा से रहे हो, किन्तु तुम जो थे उसके प्रति सचेतन नही थे और इसी कारण यथार्थ में तुम वास्तविक जन नहीं थे···उसे यह खुशफ़हमी है कि जनता से उसकी नैतिक माँगें—यह माँग कि वे अपनी चेतना को बदल लें—चेतना में परिवर्तन ला देंगी···।"[2]

1. मार्क्स/एंगेल्स रचनाएं, खंड 33, पृष्ठ 434 (जर्मन में)
2. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा', संकलित रचनाएं, खंड 5, पृष्ठ 250

चेतना एवं शिक्षा के प्रश्न पर यह गुणात्मक रूप से नया नजरिया था जिसने समूचे पूर्ववर्ती भौतिकवाद के मननशील दृष्टिकोण पर विजय प्राप्त की। यह निष्कर्ष शिक्षा की समस्याओं पर लागू सामाजिक प्रक्रिया की भौतिकवादी व्याख्या का तात्कालिक परिणाम था। सच्चे क्रांतिकारी कम्युनिस्टों के रूप में मार्क्स-एंगेल्स ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि जनता की क्रांतिकारी शिक्षा मात्र शिक्षा के माध्यम से नहीं चलायी जा सकती। क्रांतिकारी जन-चेतना विकसित करने के लिए क्रांतिकारी जन-आंदोलन की जरूरत थी। इस बुनियादी मान्यता से आगे बढ़कर मार्क्स-एंगेल्स ने शिक्षा के प्रश्न को हल किया। **पवित्र परिवार** में मार्क्स ने पहले ही इसकी रूपरेखा इन शब्दों में प्रस्तुत कर दी थी : "यदि मनुष्य वातावरण द्वारा निर्मित होता है, तो उसके वातावरण को मानवीय बनाया जाना चाहिए।"[1]

परिस्थितियाँ-मनुष्य सूत्र की फ्रांसीसी भौतिकवाद द्वारा अंगीकृत सूत्र **वातावरण-मनुष्य** से सिर्फ सतही समानता ही थी। इन दोनों सूत्रों की सार-वस्तु एक-सी नहीं है। फ्रांसीसी **भोगवाद** मनुष्य को उसके वातावरण की निष्क्रिय उपज मानता था। यद्यपि अपने समय की दृष्टि से यह प्रगतिशील विचार था, तो भी कुल मिलाकर यह अपनी मननशील तथा अनैतिहासिक प्रकृति के कारण सीमाबद्ध था। मार्क्स-एंगेल्स, जिन्होंने सामाजिक वातावरण के भौतिकवादी विश्लेषण का पथ प्रशस्त किया, की दृष्टि यह थी कि "परिस्थितियाँ मनुष्य को उतने भर में ही निर्मित करती हैं जितना कि मनुष्य परिस्थितियों को निर्मित करता है।..."[2]

ये विचार मानव-कार्य व्यापार के सक्रिय स्वरूप को रेखांकित करते हैं तथा मार्क्सवाद द्वारा खोजी गयी चेतना और शिक्षा की बनावट के प्रति बुनियादी रूप से नये नजरियों का संकेत देते हैं। प्राक्-मार्क्सी भौतिकवाद समाज और मनुष्य की अपनी प्रकृतवादी व्याख्या के कारण **वातावरण-मनुष्य** के अंतर्विरोध के समाधान में असफल रहा था। यदि मनुष्य वातावरण की उपज है तो इस वातावरण का सृजन कौन करता है, यह सृजन किससे होता है? अतः प्राक्-मार्क्सी भौतिकवादी ने दुनिया को शिक्षकों व शिक्षितों में बाँट दिया यह भूलकर कि स्वयं शिक्षक को भी शिक्षित होना चाहिए।

काल्पनिक समाजवादियों के लिए भविष्य के मनुष्य को गढ़ने का प्रश्न चिरंतन बाधा (अड़ंगा) साबित हुई। मेधावी होने के कारण उन्हें इस बात का पूरा बोध था कि भविष्य के कम्युनिस्ट समाज को नये मनुष्य की आवश्यकता पड़ेगी। उनका यह विश्वास सही ही था कि भविष्य का मनुष्य सुसंगत रूप से विकसित

1. कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, 'पवित्र परिवार', संकलित रचनाएं, खंड 5, पृष्ठ 131
2. वही, पृष्ठ 54

मनुष्य होगा जिसका काम अपने साथी मनुष्यों के प्रति नया नज़रिया होगा, तथा जो सामूहिक-कल्याण को समर्पित होगा। वह ऐसा व्यक्ति होगा जिसकी उच्च आध्यात्मिक आवश्यकताएँ होंगी, जो पुरानी दुनिया के अमल्यों, हृदयहीनता व पूर्वाग्रहों से मुक्त होगा। किंतु भविष्य के अपने सपनों में इन कल्पनालोकवादियों का सामना ऐसे अंतर्विरोध से हुआ जिसका समाधान उनसे नहीं हो पाया।

एक ओर तो मनुष्य वैसे होते हैं जैसा उनका जीवन उन्हें बना देता है। निजी संपत्ति के प्रभुत्व वाले समाज में जीवन तदनुरूप वृत्तियों व रुझानों, पूँजीवादी मानसिकता व आचार शास्त्र को पैदा करता है तथा मानव संबंधों में जंगल के कानूनों को आदेशित करता है। दूसरी ओर, ऐसे समाज में रहने वाले लोगों को ही नये समाज का निर्माण करना होगा—दमन और शोषण से मुक्त समाज का—तथा इन्हीं लोगों को नये समाज में रहना व काम करना तथा नैतिकता एवं न्याय के उच्च मानदंडों से निर्देशित होना पड़ेगा।

काल्पनिक समाजवाद को इस अंतर्विरोध के समाधान का कोई रास्ता दिखायी नहीं दिया। कल्पनालोकवादियों ने मानव जीवन के त्रुटिहीन रूप विकसित करने की आशा प्रबुद्ध सुधारकों से बाँधी जिन्हें कि वे चाँदी की तश्तरी में रखकर अपने साथी-मनुष्यों को भेंट करते। यही कारण है कि नया जीवन निर्मित करना प्रारंभ किये बिना ही उन्होंने मनुष्य को बेहतर बनाने व उसके नैतिक आचरण को सुधारने के प्रयास किये।

इस अत्यंत वास्तविक अंतर्विरोध का कारगर समाधान मार्क्सवाद ही कर पाया। मार्क्स ने अपने फ़ायरबाख़ पर लेख में स्पष्ट किया कि परिस्थितियों और चेतना को बदलने की समस्या को मनुष्य की व्यावहारिक क्रांतिकारी क्रिया-कलाप के माध्यम से ही तर्कपूर्ण ढंग से समझा व ग्रहण किया जा सकता है—उस मनुष्य की क्रियाशीलता से जोकि बाहरी दुनिया को बदलकर अपनी प्रकृति को बदलेगा।[1] यह मार्क्स द्वारा प्रस्तावित एक प्रमुख मूलभूत तर्क वाक्य था।

इस प्रकार, विचारधारा तथा व्यावहारिक जन-क्रांतिकारी कर्म की अंतःसंबंधित किंतु सार रूप में एक ही समस्या का समाधान हुआ। इसके मायने हैं कि विचारधारा को सैद्धांतिक ज्ञान में घटाया नहीं जा सकता। इसका कार्यभार अपनी अंतर्वस्तु को जनता की पहुँच के भीतर ले जाकर उसे जनता की संपत्ति बनाना है, वैज्ञानिक कर्म को व्यावहारिक कर्म से एक कर देना है। दूसरे शब्दों में, विचारधारा एक संघटक कारक है, विशिष्ट विचारों तथा विश्व-दृष्टि पर आधारित वर्ग संशक्ति का उपकरण है।

समाजवादी विचारधारा का कार्य-भार सैद्धांतिक रूप से क्रांतिकारी कर्म को

1 देखें कार्ल मार्क्स, 'फ़ायरबाख़ पर लेख', संकलित रचनाएं, खंड 5, पृष्ठ 7

अध्याय : 2

वैज्ञानिक विचारधारा की लेनिनवादी अवधारणा पद्धति एवं अंतर्वस्तु की समस्याएँ

लेनिन से पूर्व किसी भी मार्क्सवादी ने विचारधारा संबंधी समस्याओं का उतने बड़े पैमाने पर, उतने व्यापक सामाजिक संदर्भ में व सावधानीपूर्वक अध्ययन नहीं किया था जितना कि उन्होंने किया था। लेनिन ने वैचारिक समस्याओं की पड़ताल अर्थशास्त्र, राजनीति, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों, विज्ञान, संस्कृति, साहित्य एवं कला तथा विभिन्न वर्गों व समूहों के सामाजिक मनोविज्ञान के साथ उनकी विविध अंतःक्रियाओं में की।

सामाजिक तथ्यों एवं घटनाक्रियाओं की अविश्वसनीय संपदा पर आधारित एक व्यक्ति के इस सर्वज्ञान विषयक भीमकाय प्रयास एवं उपलब्धि विस्मयकारी तो हैं किन्तु फिर भी इसे चिंतक, अध्येता एवं सिद्धांतकार के रूप में लेनिन की प्रतिभा और नये ऐतिहासिक युग—जिसकी विशिष्टता पूँजीवाद से कम्युनिज्म में मानवता का क्रांतिकारी संक्रमण है—में मजदूर वर्ग के व्यावहारिक राजनीतिक कार्य-भारों के संदर्भ में समझा जा सकता है। इतिहास के किसी भी अन्य काल में मानव जीवन के इतने व्यापक वैचारिक एवं सैद्धांतिक विश्लेषण की इससे ज्यादा जरूरत पहले कभी अनुभव नहीं की गयी।

लेनिन का ऐतिहासिक योगदान यह है कि उन्होंने मजदूर वर्ग की वैज्ञानिक विचारधारा के रूप में मार्क्सवाद के उदय एवं विकास का गहराई से अध्ययन किया है, कि उन्होंने समाजवादी विचारधारा के मार्क्सवादी सिद्धांत को संशोधनवादी तोड़-मरोड़ से बचाया है, कि उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी तथा मजदूर वर्ग को समाजवादी क्रांति के व्यापक वैचारिक कार्यक्रम से लैस किया है।

लेनिन ने समाजवादी विचारधारा की क्रांतिकारी—आलोचनात्मक सार-तत्त्व को उद्घाटित किया, मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी संघर्ष की भिन्न अवस्थाओं

(स्वतःस्फूर्त मज़दूर आंदोलनों में समाजवादी चेतना के प्रवेश की अवस्था से लेकर उन्नत समाजवाद के अंतर्गत प्रत्येक सदस्य द्वारा वैज्ञानिक विश्व दृष्टि अर्जित करने की अवस्था तक) में इसकी भूमिका का विश्लेषण किया।

प्रकृति-विज्ञान तथा मानव इतिहास में दो युगों के संधिकाल में सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की नयी घटनाक्रियाओं की अद्यतन उपलब्धियों का दार्शनिक शब्दावली में साधारणीकरण करके लेनिन ने मार्क्सवादी समाजशास्त्र में वैज्ञानिक विचारधारा की अवधारणा प्रस्तुत की। उन्होंने वर्ग समेकन—जो समेकन के अन्य रूपों के निर्माण से पहले आता है—की शक्ति के रूप में समाजवादी विचारधारा की भूमिका के प्रमाण प्रस्तुत किये। लेनिन ने लिखा : "स्याद एक थोथा शब्द है ऐसा ये धूर्त लोग और बुद्धिजीवी कहते हैं जो अपने को इस महान आधार पर मार्क्सवादी घोषित करने की प्रवृत्ति रखते हैं कि उन्होंने आर्थिक-भौतिकवाद के पृष्ठ प्रदेश की मजरसानी कर ली है।

जब विचार जन-समूहों को अभिभूत कर लेते हैं तब वे एक शक्ति बन जाते हैं। और ठीक अब बोल्शेविकों ने, यानी क्रांतिकारी-सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद के प्रतिनिधियों ने, अपनी नीति में उस विचार का समावेश कर लिया है जो सारे संसार में मेहनतकशों के अगणित जन-समूह को अनुप्रेरित कर रहा है।"[1]

लेनिन ने समाजवादी विचारधारा को व्यापक मज़दूर आंदोलन के साथ संयोजित करने की ऐतिहासिक अनिवार्यता को सिद्ध करके नयी किस्म की पार्टी, तथा विचारों को वास्तविकता में बदलने में इसकी व्यावहारिक क्रांतिकारी भूमिका के महत्व को रेखांकित किया। उन्होंने लिखा : "एक श्रेष्ठ संगठन की सहायता से ही हम अपने नैतिक बल को भौतिक बल में बदल सकते हैं।"[2]

लेनिन ने मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी द्वारा सत्ता हथिया लेने की स्थिति में—जब नये सामाजिक संबंधों का संवेदनशील सुन्दर जाल विकसित करने को प्रथम वरीयता दी जाये, जब सारा जोर आर्थिक विकास, समाजवादी स्वदेश की रक्षा, नयी पीढ़ी की कम्युनिस्ट शिक्षा, मानव चेतना एवं व्यवहार में से पूँजीवादी तथा निम्न-पूँजीवादी अवशेषों की सफाई करने तथा नयी जीवन शैली के सृजन पर हो—उसकी वैचारिक क्रियाकलाप में विचारधारा के स्थान एवं महत्व को निरूपित किया।

लेनिन ने विचारधारा के क्षेत्र में वर्ग-संघर्ष के नियमों को उद्घाटित किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि समकालीन युग की बुनियादी अंतर्वस्तु पर छाया हुआ

1. वी० आई० लेनिन, 'क्या बोल्शेविक राज्य-सत्ता को हाथ में रख सकते हैं ?' संकलित रचनाएँ, खंड 26, पृष्ठ 129-30
2. वी० आई० लेनिन, 'ए० ए० बोगदानोव व एस०आई० गुसेव के नाम पत्र', संकलित रचनाएँ, खंड 8, पृष्ठ 145

पूँजीवादी और समाजवादी विचारधाराओं का संघर्ष आज के समाज के दो प्रमुख वर्गों—सर्वहारा और पूँजीपति वर्ग—के संघर्ष का ही प्रतिबिंब है। और यह ऐसा संघर्ष है समूची दुनिया ही जिसका युद्ध का मैदान है। इस संघर्ष में समाज की वैचारिक एवं नैतिक क्षमताएँ उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि उसकी आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्षमताएँ हैं। लेनिन ने अक्तूबर क्रांति की विजय के तत्काल बाद इस केन्द्रीय महत्व के सिद्धांत को सूत्रित किया। समाजवाद के निर्माण की दिशा में जब देश तथा पार्टी आरंभिक क़दम उठा रहे थे, लेनिन ने इंगित किया कि यद्यपि आर्थिक एवं सैन्य-दृष्टि से सोवियत रूस कमज़ोर था, नैतिक दृष्टि से यह किसी भी अन्य देश की तुलना में अधिक तेजस्वी था। उन्होंने लिखा : "व्यवहार ने इसे सिद्ध कर दिया है; केवल शब्दों ने ही नहीं बल्कि आचरण ने इसे सिद्ध कर दिया है; यह एक बार सिद्ध हो चुका है तथा, यदि इतिहास की दिशा में कोई परिवर्तन होता है तो, यह संभवतया कई-कई बार फिर सिद्ध हो जायेगा।"[1] लेनिन की पूर्व-दृष्टि को सही साबित करते हुए, वस्तुतः इतिहास ने इसे बार-बार सिद्ध कर दिया है।

लेनिन ने कम्युनिस्ट पार्टी के वैचारिक क्रियाकलाप का विवेचन समाजवादी विकास में उसके नेतृत्व के अपरिहार्य अभिन्न अंश के रूप में किया। उन्होंने चेतावनी दी कि पार्टी के वैचारिक क्रियाकलाप में किसी भी तरह के विराम, समाजवादी समाज के आध्यात्मिक जीवन में पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका की हल्की-सी भी अवमानना का परिणाम यह होगा कि आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में मेहनतकश जनता व मज़दूर वर्ग की स्थितियाँ कमज़ोर होंगी तथा जनता की समाजवादी उपलब्धियाँ ख़तरे में पड़ जाएँगी। लेनिन ने वैचारिक नेतृत्व के सिद्धांतों को निरूपित किया जो तब से ही लेनिनवादी सिद्धांतों के रूप में जाने जाते हैं। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा क्रियान्वित, समाजवादी समाज के आध्यात्मिक जीवन की पथ-प्रदर्शक लेनिनवादी विधियों में "शक्ति, ऊर्जा, अधिक अनुभव, अधिक सर्वतोमुखी प्रतिभा, तथा अधिक निपुणता के गुणों पर आधारित"[2] नेतृत्व की अवधारणा निहित है।

समाजवादी विचारधारा की क्रांतिकारी-आलोचनात्मक सार-वस्तु

समाजवादी विचारधारा की विशेषता बताते हुए लेनिन ने रेखांकित किया कि "मार्क्स अपने सिद्धांत का समग्र मूल्य इस बात में निहित मानते थे कि यह

---

1. वी० आई० लेनिन, 'सोवियतों की नौवीं अखिल-रूसी कांग्रेस, दिसम्बर 23-28 1921,' संकलित रचनाएँ, खंड 33, पृष्ठ 151
2. वी० आई० लेनिन, 'हमारे संगठनात्मक कार्य-भारों के बारे में एक कामरेड को पत्र', संकलित रचनाएँ, खंड 6, पृष्ठ 242

अपनी सार-वस्तु में आलोचनात्मक एवं क्रांतिकारी है।"[1] यह दूसरा गुण मार्क्सवाद की पूर्ण एवं निर्बंध[2] विशिष्टता है।

समाजवादी विचारधारा की क्रांतिकारी—आलोचनात्मक सार-वस्तु इसकी वैज्ञानिक अंतर्वस्तु की अभिव्यक्ति है क्योंकि केवल वह सिद्धांत ही स्व-विकास में समर्थ होता है जो आलोचनात्मक तथा आत्मालोचनात्मक हो। इसके बिना कोई वैज्ञानिक ज्ञान संभव नहीं है। समाजवादी विचारधारा की सार-वस्तु मजदूर वर्ग की सामाजिक स्थिति, पूँजीवादी क्रांति से इसकी क्रांति के बुनियादी फ़र्क को व्यक्त करती है। केवल वही क्रांति जो अपने द्वारा उत्पन्न समस्याओं की नवीनता तथा विकट आयामों से कतराती नहीं है तथा केवल वही समाज जिसके पास अपार क्षमता है आत्मालोचना में समर्थ होते हैं, तथा भविष्य की दुनिया ऐसे समाज को ही विरासत में मिलेगी। ऐसी क्रांति को सर्वहारा-क्रांति कहते हैं तथा ऐसे समाज को समाजवादी समाज। महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति मानव इतिहास में ऐसी पहली क्रांति थी जिसके नतीजे उसके मूलभूत लक्ष्यों से मेल खाते थे।

समाजवादी विचारधारा की क्रांतिकारी-आलोचनात्मक सार-वस्तु, इसके सर्वाधिक पूर्ण एवं निर्बंध गुण के रूप में, मजदूर वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने से पूर्व के तथा बाद के विशिष्ट रूपों में व्यक्त होती है। मोटे तौर पर फ़र्क इस तथ्य में निहित है कि विजय से पूर्व समाजवादी क्रांति का प्रमुख कार्यभार सामाजिक एवं राष्ट्रीय दमन के तमाम रूपों को उखाड़ फेंकना होता है, जबकि क्रांति के बाद प्रमुख कार्य-भार नये सामाजिक रूपों का निर्माण, समाजवाद की प्रगति को अवरुद्ध करने वाली तथा इसकी समूची क्षमता के कार्यान्वयन को बाधित करने वाली प्रत्येक चीज़ की आलोचना करना व उन पर विजय प्राप्त करना होता है।

समाजवादी विचारधारा की क्रांतिकारी-आलोचनात्मक सार-वस्तु का प्रश्न दक्षिणपंथी संशोधनवादियों तथा वामपंथी संकीर्णतावादी तत्वों के लिए हमेशा से रास्ते की बाधा रहा है। आज तक यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद तथा विभिन्न रंगों के संशोधनवाद के बीच भयानक संघर्ष का स्थल बना हुआ है।

दक्षिणपंथी संशोधनवादियों का विचित्र तर्क यह था कि सर्वहारा की तानाशाही की विजय तथा नये सामाजिक संबंधों की स्थापना के साथ ही समाजवादी विचारधारा अपनी क्रांतिकारी-आलोचनात्मक अंतर्वस्तु को खोकर संस्थानिकतावादी सिद्धांत का रूप धारण कर लेती है तथा अन्य किसी भी विचारधारा की भाँति चरम अधःपतन (विकृति) की स्थिति में पहुँचने को कथित रूप से अभिशप्त

1. वी० आई० लेनिन, 'जनता के मित्र कौन हैं तथा वे सामाजिक-जनवादियों से संघर्ष कैसे करते हैं,' संकलित रचनाएं, खंड 1, पृष्ठ 327
2 वही

जिसकी जरूरत है वह है अधिक तथ्यात्मक ज्ञान तथा दिग्भ्रष्ट कम्युनिस्ट सिद्धांतों के संबंध में कम बहसें।"[1] लेनिन इस बात पर अनवरत जोर देते रहे कि "क्रांतिकारियों को चिंतन करने ··· विश्लेषण करने में समर्थ होना चाहिए।"[2]

समाजवादी विचारधारा की क्रांतिकारी-आलोचनात्मक सार-वस्तु उसके सैद्धांतिक सिद्धांतों तथा सृजनात्मक प्रकृति का प्रतिबिंब है। एकमात्र सही नीति वही है जोकि ऊँचे सिद्धांतों पर आधारित है। लेनिन सिद्धांत तथा व्यावहारिक कार्यकलाप दोनों के ही क्षेत्र में इस केंद्रीय महत्व के विचार पर बिना विचलित हुए कायम रहे। सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक प्रश्नों पर उच्च सिद्धांतों के प्रति पूर्ण निष्ठा ही सिद्धांत एवं व्यवहार के प्रति एक वास्तविक रचनात्मक रुख को सुनिश्चित कर सकती है। सृजनात्मक रुख की यह वास्तविक विशेषता होती है बशर्ते वह सुपरिभाषित मूलभूत सिद्धांतों से उत्पन्न हो।

लेनिन के शब्दों में : "सिद्धांत के प्रति अवज्ञा के भाव, टाल-मटोल तथा समाजवादी विचारधारा के साथ हिचर-मिचर करने का अवश्यंभावी परिणाम है पूंजीवादी विचारधारा के हाथों में खेलना।"[3] सिद्धांत सिर्फ इसलिए सिद्धांत होते हैं कि उनके साथ समझौता नहीं किया जाता। क्षणिक रणनीतिक लाभों तथा क्षण को महत्वपूर्ण मानने पर आधारित, सिद्धांतों के प्रति रवैया निश्चित रूप से ग़लत होता है। सिद्धांतों के मामले में रिआयतों की क़ीमत पर रणनीतिक सफलता प्राप्त करने के किसी भी प्रयास का अवश्यंभावी परिणाम कार्यनीतिक पराजय होती है। अतः वह जो तात्कालिक रणनीतिक लाभ प्राप्त करने की आशा में सिद्धांत के प्रश्नों की अवमानना करता है— उन्हें नज़रंदाज़ करता है—अंततः ऐसी कार्यनीतिक पराजय का सामना करता है जो अंतिम तथा अनपलट होती है। दक्षिणपंथी संशोधनवाद तथा वामपंथी दुस्साहसवाद—ये दोनों ही सिद्धांत के प्रश्नों को अलग हटा देने की कीमत पर तात्कालिक सफलताएँ प्राप्त करने के प्रयासों में संलग्न होते हैं—की ऐतिहासिक नियति यही रही है।

जहाँ तक सिद्धांतों के प्रति निष्ठा का सवाल है वह इन्हें विकसित एवं विस्तारित करने के सतत प्रयास की माँग करती है। यह वैचारिक अतिक्रमणों तथा किसी भी ओर से आने वाले हमलों की स्थिति में स्वयं विचारों के अविनाशी स्थायित्व को सुनिश्चित करती है। लेनिन सदा ही मार्क्सवादी सिद्धांतों को जीवंत इकाइयों के रूप में देखते थे जो निरंतर अपने को विकसित करते हैं तथा अपना

---

1. वी. आई. लेनिन, 'एकीकृत आर्थिक योजना', संकलित रचनाएं, खंड 32, पृ॰ 144
2. वी॰ आई॰ लेनिन, 'बॉयकाट के खिलाफ', संकलित रचनाएं, खंड 13, पृ॰ 40
3. वी॰ आई॰ लेनिन, 'समाजवादी क्रांतिकारियों के खिलाफ सामाजिक जनवादी हठसंकल्प व निर्मम युद्ध क्यों छेड़ते हैं', संकलित रचनाएं, खंड 6, पृ॰ 173-74

पुनरुत्पादन करते हैं तथा जो (ये दोनों ही गुण) अवसरवादी अस्पष्टता तथा कठमुल्ला-सैद्धांतिक जीवाश्मीकरण के विरुद्ध होते है।

समाजवादी विचारधारा अपने विकास की प्रत्येक अवस्था तथा दशा मे आलोचनात्मक होती है। उन्नत समाजवाद के अंतर्गत इसकी क्रांतिकारी-आलोचनात्मक सार-वस्तु में खास तौर पर ये तत्व निहित होते हैं :

—सामाजिक आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों मे विद्यमान विकट समस्याओं के समाधान के प्रयास में वैचारिक कारकों तथा नैतिक संसाधनों का सक्रिय अनुकूलन;

—सामाजिक ज्ञान के नये क्षितिजों का उद्घाटन, प्राप्त परिणामों तथा किये गये व्यावहारिक परिवर्तनों का सतत आलोचनात्मक सत्यापन, वैज्ञानिक शोध की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक उपादेयता (मूल्य) को ऊँचा उठाना, व्यक्ति के जीवन तथा उसके मूल्य-समुच्चय के लिए सामाजिक समस्याओं के महत्व तथा निहितार्थों को उजागर करना,

—पार्टी के सिद्धांतों मे प्रतिबद्धता के सिद्धांत का सुसगत क्रियान्वयन, वास्तविकता के प्रति अहंवादी तथा कठमुल्ला रुझानों पर विजय, वास्तविकता को विद्यमान अंतर्विरोधों की क्रियाशीलता के रूप मे देखने-समझने व चित्रित करने की सामर्थ्य।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे—विज्ञान, संस्कृति, शिक्षा एवं आर्थिक कार्य-कलाप—आलोचना एव आत्मालोचना के बुनियादी महत्व पर ज़ोर देती है। अर्जित नतीजों के प्रति यह यथार्थवादी दृष्टिकोण, हाथ में लिये गये काम के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण, तथा सोवियत समाज की प्रगति को बाधित करने वाली मुश्किलों व कमियों पर विजय प्राप्त करने के संदर्भ मे संकल्प व लगनशीलता का परिचायक है।

आलोचना एवं आत्मालोचना व्यापक जनसमूहों के सामाजिक तथा उत्पादक कार्य-कलाप, अपने देश के मालिक होने के उनके भावों तथा समान लक्ष्य में उनके साझे हित के अहसास पर आधारित, नये समाज के निर्माण की रचनात्मक कम्युनिस्ट पद्धति है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने उस व्यापक सामाजिक संदर्भ की विस्तृत विवेचना की है जिसमें कि पार्टी ने सोवियत समाज के जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण इस प्रश्न का हल खोजा। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की यह स्पष्ट मान्यता है आलोचना एवं आत्मालोचना को दिये गये बढावे ने उसके कार्यक्रम के क्रियान्वयन मे सहयोग दिया, उन्नत समाजवादी समाज के अंतर्निहित सचयों व क्षमताओ (तथा इनसे प्राप्त लाभों) को खोज व उनके उपयोग को सुसाध्य बनाया।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के निर्णयों मे तथा अन्य

दस्तावेजों में इस बात को रेखांकित किया गया है कि आलोचना एवं आत्मालोचना सोवियत समाज के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की एक स्थायी एवं अपरिहार्य शर्त है। सोवियत संघ के नये संविधान मे इस नजरिये को क़ानूनी रूप दिया गया। धारा 40 मे निहित प्रावधान द्रष्टव्य हैं : "राज्य के निकायों तथा सार्वजनिक संगठनों के समक्ष उनके कार्यकलाप को सुधारने की दृष्टि से प्रस्ताव प्रस्तुत करने का तथा उनके काम की कमियों की आलोचना करने का सोवियत संघ के प्रत्येक नागरिक को अधिकार है।

"कर्मचारियों का यह दायित्व है कि वे निर्धारित समय-सीमा के भीतर ही नागरिकों के प्रस्तावों तथा निवेदनों का अध्ययन करके उनका उत्तर दें तथा उचित कार्यवाही करें।

"आलोचना करने के लिए किसी का भी उत्पीड़न निषिद्ध है।" समाजवादी विचारधारा की क्रांतिकारी-आलोचनात्मक सार-वस्तु मे उसके तीन मूलभूत गुण—वैज्ञानिक अंतर्वस्तु, वर्ग चरित्र तथा पार्टी सिद्धांतों के प्रति निष्ठा—सन्निहित हैं। ज्ञान के क्षेत्र में इन गुणों को कृत्रिम ढंग से शामिल नहीं किया गया है बल्कि ये वैज्ञानिक विचारधारा मे सामाजिक जीवन के समुचित प्रतिबिंबन के सहज लक्षण हैं।

रूसी मेंशेविकों के अवसरवादी विचारों की आलोचना करते हुए लेनिन ने लिखा : "मार्क्सवादी यथार्थवाद की क्रांतिकारी द्वंद्वात्मकता, जो विकसित वर्गों के तात्कालिक कार्य-भारों को रेखांकित करती है—उन लोगों के लिए पूर्णतया विजातीय है।"[1] मार्क्सवादी यथार्थवाद की क्रांतिकारी द्वंद्वात्मकता को समाजवादी विचारधारा के समानार्थी (पर्याय) के रूप में देखा जाना चाहिए। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या तथा वैज्ञानिक विचारधारा की वर्गीय दृष्टि की धार्मिक, धार्मिक चेतना व किसी भी किस्म के मिथक-शास्त्र के साथ कोई संगति नहीं है। कम्युनिस्ट पार्टी का यह सिद्धांतनिष्ठ वैचारिक नीति उसकी विश्व-दृष्टि तथा वर्गाभिमुख दृष्टिकोणों के सुदृढ़ आधारों से ही निकलती है।

धार्मिक चेतना के सभी रूपों—कारण-कार्य न्याय के अनुसार यथार्थ की विभिन्नियों—के विरोध के पीछे समाजवादी विचारधारा का अपना यथार्थवाद ही है। लेनिन ने इस मुद्दे पर अपने दृष्टिकोण को रूस में क्रांतिकारी सर्वहारा आंदोलन के उदय के समय परिभाषित किया जब उन्होंने भ्रमों को त्यागने का तथा रूस के वास्तविक विकास (वांछित विकास में नहीं) में, वास्तविक (संभाव्य में नहीं) सामाजिक-आर्थिक संबंधों में समर्थन तलाशने का आह्वान किया।[2]

---

1 व्ला० इ० लेनिन, [illegible] 'संकलित रचनाएं', खंड 9, पृ० 142

2 देखें, व्ला० इ० लेनिन, 'जनता के मित्र' कौन हैं तथा सामाजिक-जनवादियों के विरुद्ध कैसे लड़ते हैं', 'संकलित रचनाएं', खंड 1, पृ० 207

उदारपंथी नरोदवादियों की आत्मपरकता तथा विधिक मार्क्सवादियों की वस्तुपरकता (ये दोनों ही मार्क्स के सिद्धांत की क्रांतिकारी सार-वस्तु के विरोधी थे) के साथ अपने संघर्ष के दौरान लेनिन ने उन परिस्थितियों को दर्शाया जिनके अंतर्गत आदर्श एवं वैचारिक सिद्धांत वैज्ञानिक दृष्टि से सही स्वरूप ग्रहण करते हैं तथा सामाजिक जीवन मे कर्म के पथ-प्रदर्शक की भूमिका अदा कर सकते हैं। आत्मपरक समाजशास्त्र मे आदर्श एक कल्पनालोकवादी सरचना होती है जोकि अपने वास्तविक आधार से विच्छिन्न मनुष्यों की आकाक्षाओं तथा भावो की जर्जर नींव पर आधारित होती है, जबकि वस्तुपरक दृष्टिकोण सामाजिक विकास की प्रमुख प्रवृत्तियों तथा उन प्रवृत्तियो के पीछे के वर्ग हितो की पहचान करने मे असफल रहता है।

सामाजिक घटनाक्रियाओ के प्रति अपने दृष्टिकोणों मे तमाम ऊपरी विरोध के बावजूद आत्मपरकता व वस्तुपरकता को विभाजित करने वाले तत्वो की तुलना मे वे तत्त्व अधिक व प्रमुख हैं जिनमे इन दोनो की भागीदारी है। पहली नजर मे यह विरोधाभासपूर्ण बेशक लगे, तथ्यों के संकलन एव विवरण मे वस्तुपरकता आत्मपरकता से ग्रस्त होती है क्योकि इसके पास सकलित तथ्यो के चयन, वर्गीकरण एवं मूल्यांकन की कारगर कसौटियों का अभाव होता है। इससे ऐसी स्थिति पैदा होती है जहाँ तथ्यो के ढेर मे से या तो बेतरतीब तथ्यो का चयन कर लिया जाता है अथवा उन तथ्यो का चयन कर लिया जाता है जिन्हे कि बेहतर एव वाछनीय माना जाता है।

इस संबंध मे लेनिन ने यह टिप्पणी की : "व्यवहार मे, मेरी शुभेच्छाएँ नहीं बल्कि, वर्ग-संघर्ष ही नये रूस के निर्माण को निर्धारित करेगा। नये रूस के निर्माण के बारे मे मेरे आदर्श असगत एव काल्पनिक तब ही नही होंगे जब वे वस्तुत. विद्यमान वर्ग—जिसके जीवन की परिस्थितियाँ उसे एक खास तरह के कार्य-कलाप के लिए विवश करती हैं—के हितो को व्यक्त करें।"[1] एक वैज्ञानिक आदर्श कल्पनालोक से इस मायने मे भिन्न होता है कि एक तो वह यथार्थ के सटीक वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित होता है तथा विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक घटनाक्रियाओं के पच्चीकारी-सदृश चित्र मे से सामाजिक विकास की दिशाओ को निर्धारित करने वाली प्रमुख (अनुपूरक नही) प्रभावी प्रवृत्तियों को अलग छाँट लेता है; दूसरे, यह विकसित वर्ग के हितों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा होता है जिसके लिए अपनी प्रमुख प्रवृत्ति का साकार होना उसके संघर्ष का चरम लक्ष्य है। यह लक्ष्य निश्चित सामाजिक संबंधों की प्रणाली मे उसकी वस्तुगत स्थिति से उत्पन्न होता है। इन शर्तों के पूरा होने पर एक आदर्श भविष्योन्मुख

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'राजनीतिक नीति,' सकलित रचनाएँ, खंड 18, पृ॰ 330

से संबंधित मार्क्सवादी थीसिस को हमले का निशाना बनाकर मानहाइम ने रेखांकित किया कि ज्ञान तभी वास्तविक हो सकता है जबकि विश्व दृष्टि के विभिन्न सामाजिक रूपों पर गौर करके, एक साथ अलग-अलग दृष्टिकोणों से उसकी खोज की जाय। उन्होंने लिखा कि अन्य विभिन्न सामाजिक दृष्टिकोणों की समझ से प्राप्त होने वाली ज्ञान की संभावित बढ़ोतरी को ध्यान में रखकर एक खास किस्म का खुलापन बनाये रखना बेहद जरूरी है। इस तरह हम देख व समझ सकते हैं कि मूल्यांकन-मुक्त विचारधारा, जिसे विकसित करने का दावा मानहाइम ने किया था, असल में कल्पना (गल्प) से अधिक कुछ नहीं है। सामाजिक असामंजस्यता पूरी तरह उतनी ही वास्तविक है जितनी कि जैवीय असामंजस्यता।

यथार्थ के किसी भी सामाजिक ज्ञान में वर्गीय दृष्टिकोण विद्यमान होता है—चाहे यह दृष्टिकोण खुले पर मान्य एवं स्वीकृत हो अथवा सावधानीपूर्वक छिपाया गया हो। विभिन्न सामाजिक शक्तियों के व्यावहारिक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले सामाजिक संबंधों के वस्तुगत स्वरूप से ही वर्गाभिमुख दृष्टिकोण तथा मूल्यांकन का जन्म होता है। लेनिन ने रेखांकित किया कि "हमारे राज्य पर शासन करने वाले वर्गों के आर्थिक हितों एवं आर्थिक दृष्टिकोण में ही हमारी घरेलू तथा वैदेशिक नीति की जड़ें निहित हैं। ये प्रस्तावनाएँ...मार्क्सवादी विश्व-दृष्टि का आधार निर्मित करती हैं।"[1]

पूँजीवादी सिद्धांतकारों के लिए वर्गों एवं राज्यों की घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय नीतियों के हर क्षेत्र में साफ़ तौर पर तथा ठोस रूप में व्यक्त वर्ग-हितों की वास्तविकता को नकार पाना निरंतर मुश्किल होता जा रहा है। यही कारण है कि समस्या की वास्तविक सारवस्तु के अन्यथाकरण (झुठलाने) के अत्यन्त सूक्ष्म एवं परिष्कृत रूप देखने में आ रहे हैं, वर्ग-हितों को आत्मपरक बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं, उन्हें जीवन की विशिष्ट स्थितियों से उत्पन्न लोगों की साझी पीड़ा व भावों के समान नामकरण के रूप में घटाकर प्रस्तुत किया जा रहा है। यहाँ इस बात पर गौर करना जरूरी है कि साझी प्रतिक्रिया के आधार पर वर्गीय दृष्टिकोण को आँकना-परखना लगभग उतना ही बुद्धिमत्तापूर्ण है जितना कि एक व्यक्ति की स्वयं के बारे में राय तथा उसकी अनुभूतियों एवं अनुभवों के आधार पर उसके चरित्र का मूल्यांकन करना।

वर्ग-हित साझी प्रतिक्रिया तथा साझे अनुभवों के आधार पर रूप धारण नहीं करते हैं क्योंकि प्रतिक्रिया तथा अनुभव अस्तित्व की सुनिश्चित परिस्थितियों की अधिरचना का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही नहीं, प्रतिक्रिया की तीव्रता, या यूँ कहें

1. वी॰ आई॰ लेनिन, "अखिल रूसी केंद्रीय कार्यकारिणी समिति तथा मास्को सोवियत की संयुक्त बैठक, मई 14, 1918 में प्रस्तुत वैदेशिक नीति संबंधी रिपोर्ट," संकलित रचनाएँ, खंड 27, पृ॰ 365

कि वर्गीय दृष्टिकोण के बोध का स्तर, एक ही वर्ग के भीतर अलग-अलग समूहों में अलग व भिन्न हो सकता है तथा होता है। यह विभिन्न चलनशील तत्वों—राजनीतिक अनुभव, शैक्षणिक स्तर, व्यवसाय, परंपराओं, वर्गीय शिक्षा, आदि पर निर्भर करता है। किंतु मूलतः, समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना में वर्ग-विशेष के वस्तुगत स्तर—यह वर्ग वास्तव में क्या है तथा क्या करता है—द्वारा ही वर्गीय दृष्टिकोण निर्मित किया जाता है। वर्ग-विशेष के व्यक्तित्व को निर्धारित एवं चित्रांकित करने वाले रोजमर्रा के लाखों लाख निष्ठुर तथ्यों के प्रमाण के आधार पर ही इसके अनुभवों की वास्तविक अंतर्वस्तु तथा इसके सामाजिक मनोविज्ञान की व्युत्पत्ति के बारे में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

वैज्ञानिक विचारधारा का, चेतना के समस्त रूपों तथा आर्थिक एवं राजनीतिक घटनाक्रियाओं के प्रति इसके दृष्टिकोण में, सामाजिक निर्धारणवाद द्वारा तात्त्विक चित्रण किया जाता है। लेनिन के शब्दों में: "क्या यह रूढ़िवाद नहीं है कि निर्धारणवाद को पड़ताल के क्षेत्र में सीमित कर दिया जाता है जबकि पड़ताल के क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों—नैतिकता, सामाजिक कार्यकलाप के क्षेत्रों—में सवाल आत्मपरक मूल्यांकन द्वारा हल किये जाने को छोड़ दिया जाता है?"[1] चेतना के विभिन्न रूपों के अध्ययन के लेनिन के पद्धतिशास्त्र में पड़ताल एवं मूल्यांकन के क्षेत्रों के कृत्रिम पार्थक्य के लिए कोई जगह नहीं है। मूल्यांकन के बिना पड़ताल सीधे वस्तुपरकवाद की ओर ले जाती है। दूसरी ओर, मूल्यांकन पड़ताल का परिणाम है, उसका पूर्वानुमान अथवा पूर्वाकलन नहीं है। अन्यथा परिणाम आत्मपरकवादी ध्येयवाद होता है।

यथार्थ के प्रति आत्मपरकवादी तथा वस्तुपरकवादी दृष्टिकोणों से भिन्न, मार्क्सवादी दृष्टिकोण सामाजिक विकास के वस्तुगत विश्लेषण पर आधारित होता है। सामाजिक विरोधों एवं अंतर्विरोधों का उद्घाटन, सामाजिक प्रगति की प्रेरक सामाजिक शक्तियों एवं प्रमुख प्रवृत्तियों की पहचान तथा सभी निहित वर्ग हितों पर विचार इस दृष्टिकोण की पूर्व शर्तें हैं। सामाजिक चेतना में, अलग-अलग वर्गीय दृष्टिकोणों से, इन समस्त कारकों के सैद्धांतिक अपवर्तन का प्रतिनिधित्व करने वाले वैचारिक रूपों का विश्लेषण, इस कोण से किये जाने पर ही वैचारिक दृष्टि से सही माना जा सकता है।

विचारधारा एवं वर्ग-हित के संबंध के सवाल पर लेनिन ने मजदूर वर्ग की सैद्धांतिक चेतना के रूप में मार्क्सवाद के महत्व की खिल्ली उड़ाने के प्रयासों का विरोध किया तथा साथ ही सामाजिक चेतना के भिन्न रूपों तथा व्यावहारिक

> ... कार्य-भारों की कड़ियों के विशिष्ट लक्षणों, विभिन्न छवियों तथा स्वरूप को प्रकट किया।

1. व्ला॰ लेनिन, 'ज्ञान का सिद्धांत,' संकलित रचनाएं', खंड 14, पृष्ठ 191

रूसी अवसरवादियों—पोत्रेसोव तथा बाजारोव—(उन्होंने दिशा और काल की दार्शनिक श्रेणियों तथा मजदूर वर्ग के सामाजिक एवं राजनीतिक संघर्ष के बीच सीधा संबंध स्थापित करने के प्रयास किये थे) के विकृत विचारों की आलोचना करते हुए लेनिन ने लिखा था : "यह कहना ग़लत है कि अत्यंत दुर्बोध स्थापनाओं की (ड्यूहरिंग के खिलाफ़ एंगेल्स की स्थापनाओं की) जर्मनी के मजदूर आंदोलन के लिए महत्वपूर्ण व ठोस सार्थकता थी। एंगेल्स की अत्यंत गूढ़ स्थापनाओं की सार्थकता इस बात में निहित थी कि उन्होंने मजदूर वर्ग के सिद्धांतकारों को यह समझाया कि भौतिकवाद से प्रत्यक्षवाद तथा भाववाद की ओर विचलन में क्या भ्रांति निहित थी।"[1] जर्मनी के मजदूर आंदोलन के लिए एंगेल्स की गूढ़ स्थापनाओं की महत्वपूर्ण व ठोस सार्थकता संबंधी पोत्रेसोव तथा बाजारोव के उल्लेखों को लेनिन ने गुंजायमान किंतु थोथे मुहावरों[2] की संज्ञा दी। यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि विचारधारा एवं वास्तविक जीवन के संबंधों की मार्क्सवादी व्याख्या सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवहार के साथ, अदृश्य कड़ियों की श्रृंखला के माध्यम से जुड़ी हुई सैद्धांतिक समस्याओं को नज़रंदाज करने की छूट नहीं देती है। सामाजिक सैद्धांतिक ज्ञान की अत्यंत गूढ़ प्रस्तावनाएँ इसकी समग्र अंतर्वस्तु के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी होने के कारण ऐसी वैचारिक सार्थकता अर्जित कर लेती हैं जो मनुष्यों की विश्व-दृष्टि को प्रभावित करती है।

पार्टी सिद्धांतों के प्रति निष्ठा वैज्ञानिक स्तर पर, वर्गीय दृष्टिकोणों की सटीक अभिव्यक्ति है तथा यह वर्ग-विशेष की राजनीतिक परिपक्वता की अपरिहार्य शर्त और उसके स्तर का अत्यंत विश्वसनीय सूचक है।

वैज्ञानिक विचारधारा के प्रवर्तकों ने क्रांतिकारी विश्व-दृष्टि की खुली पार्टी—अभिमुख प्रकृति पर तथा विचारधारा में सैद्धांतिक रूप से व्यक्त होने वाले वर्ग-हित की वास्तविक सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक अंतर्वस्तु पर सदा ही जोर दिया है। मार्क्सवाद के पूँजीवादी-उदारवादी आलोचकों ने मार्क्सवाद पर इसकी तथाकथित अतिशय विवादात्मक प्रकृति का आरोप लगाया है जो वैज्ञानिक अंतर्वस्तु के आत्मसात्करण के प्रतिकूल पड़ती है।

मार्क्सवादी विचारधारा अपनी विवादात्मक तथा पार्टी-अभिमुख प्रकृति को टाल नहीं सकती। लेनिन ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा : "मार्क्स की प्रणाली विवादात्मक प्रकृति की है, इसलिए नहीं कि यह प्रयोजनमूलक है बल्कि इसलिए कि यह सिद्धांत में वास्तविकता में विद्यमान समस्त अंतर्विरोधों का सटीक चित्र प्रस्तुत करती है। इसी कारण से इसकी विवादात्मक प्रकृति को समझे बिना

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'जो हमें समाप्त करना चाहते हैं', संकलित रचनाएं, खंड 17, पृष्ठ 73
2. वही

मार्क्स की प्रणाली को समझ पाने के तमाम प्रयास असफल होते रहेंगे। इस प्रणाली की विवादात्मक प्रकृति खुद पूँजीवाद की विवादात्मक प्रकृति के सच्चे प्रतिबिंब से अधिक कुछ नहीं है।"[1] विवादात्मक प्रकृति की दो क़िस्में होती हैं, आत्मपरक-वादी तथा दूसरी वह जो किसी वस्तु की आंतरिक, वस्तुगत विवादात्मक प्रकृति को व्यक्त करे, जोकि अन्य वर्गों के प्रति तटस्थ नहीं रह सकती हो।

इन दिनों पूँजीवादी प्रचारक मार्क्सवाद के बारे में तथाकथित दोहरी अवधेनु की कहानी को पुनरुज्जीवित करके एक अन्य बौद्धिक फ़ैशन के रूप में प्रसारित कर रहे हैं। यह कहानी वैज्ञानिक और वैचारिक हिस्सों में मार्क्सवाद के कृत्रिम विभाजन पर आधारित है तथा इसका प्रयोजन इसमें दो प्रेरकों—प्रत्यक्षवादी-वैज्ञानिक तथा क्रांतिकारी-स्वच्छंदतावादी—की तलाश करना है। पूंजीवादी प्रचारक विज्ञान के संज्ञानात्मक मूल्य को सप्रतिबंध मान्यता देते हैं तथा क्रांति को अवैज्ञानिक, मनमानीपूर्ण, तथा आंदोलन एवं प्रचार के क्षेत्र से उखाड़ी हुई व वैज्ञानिक ज्ञान के क्षेत्र में कृत्रिम रूप से प्रतिरोपित मानते हैं।

इस कार्य नीति की जड़ें मार्क्सवाद के ख़िलाफ़ पूँजीवादी सिद्धातकारों के संघर्ष के इतिहास में काफ़ी गहरी हैं। आज वैचारिक रूप से मार्क्सवाद की घेराबंदी असंभव हो गयी है। जब पूँजी का पहला खंड प्रकाशित हुआ था, पूँजीवादी प्रेस ने इसके ख़िलाफ़ चुप्पी का षड्यंत्र रचने का प्रयास किया था। आज जब मार्क्सवाद 20वीं शताब्दी की नेतृत्वकारी विचारधारा बन चुका है इस तरह की कार्यनीति सफल नहीं होती। अतः पूँजीवादी सिद्धांतकारों को समाजवादी विचारधारा के बढ़ते हुए प्रभाव को तथा मार्क्स, एंगेल्स एवं लेनिन की रचनाओं में लोगों की बढ़ती रुचि को स्वीकार करना पड़ रहा है। इसी तथ्य से मार्क्सवाद की मान्यता, खासकर अर्द्ध-मान्यता उत्पन्न होती है।

आज पश्चिम में बहुत से समाजशास्त्री मार्क्स को मानव चेतना के अध्ययन के अग्रदूत के रूप में तथा विचारधारा के सिद्धांत (जिसके बिना वैज्ञानिक प्रकृति का दावा करने वाली, चेतना की कोई भी समकालीन अवधारणा चल नहीं सकती) के प्रमुख प्रस्ताव के रूप में वर्णित करते हैं किंतु इन तमाम स्वीकृतियों के बावजूद ये पूँजीवादी समाजशास्त्री मार्क्स को उसी श्रेणी में रखते हैं जिसमें कि परेटो व मानहाइम जैसे पूँजीवादी समाजशास्त्रियों को रखते हैं तथा मार्क्सवादी विचार-धारा सिद्धांत और पूँजीवादी अवधारणाओं के बुनियादी फ़र्क़ को मिटा देने की चेष्टा करते हैं। इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर मार्क्सवाद की दोहरी प्रकृति की कहानी गढ़ी गयी है, तथा अब उसका—मार्क्सवाद के वैज्ञानिक तथा अवैज्ञानिक हिस्सों तथा विज्ञान एवं पार्टी सिद्धांतों की असामंजस्यता के बारे में कहानी का—

[1] वाई. लेनिन, 'एक बार फिर कार्यान्वयन के सिद्धांत के बारे में,' संकलित [illegible], खंड 4, पृष्ठ 85

की जान है।

पूँजीवादी प्रचारकों का एक अन्य प्रिय तर्क उनकी यह उक्ति है कि समाजवादी विचारधारा का सर्वहारा वर्ग-चरित्र किसानों और बुद्धिजीवियों जैसे अन्य समूहों के हितों पर आघात करता है। आज दिन तक, विद्यमान समाजवाद का रिकार्ड है कि उसने मजदूर वर्ग के खिलाफ़ पूँजीवादी प्रचारकों द्वारा गढ़े गये मिथ्या प्रचार की कलई खोल दी है, उसकी असत्यता को उजागर कर दिया है। इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं में मानव समाज में जिन भी वर्गों का प्रभुत्व रहा है उन सबकी तुलना में सर्वहारा ही अकेला ऐसा वर्ग है जिनके कार्यकलाप पर उसके स्व-हित तथा संकीर्ण स्वार्थवादिता की कोई छाप नहीं रही है।

मानव इतिहास में कोई भी अन्य वर्ग सर्वहारा के साहस तथा आत्म-उत्सर्ग की सामर्थ्य तथा समाज के प्रति उसके कर्तव्य-बोध का मुकाबला नहीं कर सकता। मानव इतिहास मे किसी भी वर्ग ने सत्ता में आकर जन-कल्याण के लिए वह कुछ नही किया है जोकि सर्वहारा ने किया है: इसने जनता की सामाजिक, राजनीतिक एव आध्यात्मिक मुक्ति के लिए संपूर्ण राज्य-यंत्र को संचालित एवं निर्दिष्ट किया। किसी अन्य वर्ग ने नये समाज के निर्माण में अपना सक्रिय योगदान करने में समर्थ विभिन्न सामाजिक समूहों की सृजनात्मक शक्तियों को विकसित करने के लिए सर्वहारा की तुलना में कुछ नही किया है।

इतिहास में ऐसा कोई वर्ग नहीं रहा जोकि सर्वहारा के उच्च लक्ष्यों, ऐतिहासिक कर्म के उसके दायरे तथा शेष समाज पर उसके प्रभाव की व्यापकता व गहराई से मुकाबला कर सके। लेनिन ने मजदूर वर्ग को समाजवाद की अविनाशी आड़ (बचाव) के रूप में देखा तथा उसमें तमाम तकलीफों, पीड़ाओं व कष्टों को बर्दाश्त करने की सामर्थ्य देखी; वे तमाम महान त्याग करने की सामर्थ्य देखी जिनकी कि इतिहास ऐसे लोगों से, जोकि अतीत से कटकर भविष्य की राह रोशन करने का संकल्प रखते हैं, अपरिहार्य रूप से अपेक्षा करता है। यह वह वर्ग है जोकि भ्रष्ट मूल्यों के प्रति हिकारत का भाव रखता है तथा अपनी सृजनात्मक कार्य क्षमता तथा ईमानदारी के साथ लोगों का भला करने वालों के प्रति सम्मान का भाव प्रेरित व उत्पन्न कर सकता है।

मजदूर वर्ग के सामाजिक एवं राजनीतिक लक्ष्य के संदर्भ में वैज्ञानिक समाजवाद के प्रवर्तकों के प्रारंभिक विचारों को विकसित करते हुए लेनिन ने निष्कर्ष निकाला: "केवल यही वर्ग मेहनतकश जनता को एकताबद्ध करने मे, उनकी पाँतों को जगाने व एकजुट करने में सहायक हो सकता है तथा कम्युनिस्ट समाज की रक्षा में, सुदृढ़ीकरण में व निर्माण में निर्णायक रूप से सहायक हो सकता है।"[1]

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'युवक संघों के कार्यभार', संकलित रचनाएं, खंड 31, पृ॰ 292

मार्क्सवादी वर्ग-विश्लेषण का एक विशिष्ट लक्षण उस ख़ास ऐतिहासिक चौखटे की, जिसके भीतर प्रक्रिया विशेष न केवल जन्म लेती है बल्कि विकसित भी होती है, पहचान करना तथा उसकी गुणात्मक विशिष्टताओं की सुस्पष्ट स्थापना करना है। इस पद्धतिमूलक कार्यभार का समाधान कई कारकों के टकराव के कारण मुश्किल बन जाता है। कभी-कभी भिन्न सामाजिक-आर्थिक अंतर्वस्तु जीवन में स्वय को एक ही अथवा मिलते-जुलते वैचारिक रूपों (पहनावे) में प्रस्तुत करती है, भिन्न राजनीतिक एवं वैचारिक शब्दावली में एक ही अथवा मिलती-जुलती अंतर्वस्तु निहित हो सकती है। लेनिन ने इसे सिद्ध करने के लिए रूसी खेतिहर समाजवाद का तथा समाजवाद के निम्न पूँजीवादी रूपों—जोकि 1848-49 की फ़ांसीसी क्रांति को व्यंजित करते थे—का उदाहरण दिया। उनके वैचारिक पहनावे की समानता का उल्लेख करते हुए लेनिन ने लिखा : "दोनों ही निर्विवाद रूप से पूँजीवादी जनतन्त्रवादी की ऐसी वक्तृताएँ हैं जो संघर्ष की वास्तविक ऐतिहासिक अंतर्वस्तु को अस्पष्ट अभिव्यक्ति देती हैं। त्रुदोविक की वक्तृताएँ वस्तुगत परिस्थितियों द्वारा संभव (20वीं शताब्दी के रूस में खेतिहर क्रांति को संभव बनाया) बनायी गयी पूँजीवादी क्रांति के असली लक्ष्यों की अस्पष्ट अभिव्यक्ति है, जबकि फ़ांसीसी बलाइनबर्गर ने 1848 में समाजवादी क्रांति के लक्ष्यों की अस्पष्ट अभिव्यक्ति की; पिछली शताब्दी के मध्य में फ़ांस में यह क्रांति असंभव थी।"[1] परिणामस्वरूप, पहले मामले में हमारा सामना ऐसे कार्यक्रम से होता है जो सारतः यथार्थवादी है किन्तु भ्रामक-वैचारिक रूप के माध्यम से व्यक्त किया गया है, जबकि दूसरे मामले में हमारा सामना काल्पनिक कार्यक्रम से होता है जोकि 19वीं शताब्दी के मध्य तक फ़ांस में रूपायित ऐतिहासिक परिस्थितियों के संदर्भ में सुनिश्चित सामाजिक-आर्थिक अंतर्वस्तु से रहित है।

खेतिहर समाजवाद की रूसी किस्म का लेनिन द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण यह प्रदर्शित करता है कि वैचारिक प्रणालियों का व्यापक मूल्यांकन तभी संभव है जब कि वह विरोधी प्रवृत्तियों, विचारधाराओं एवं वर्गों के संदर्भ में एक ख़ास ऐतिहासिक स्थिति में उनकी कार्यशीलता की यंत्रविधि का पता लगाने व उसकी पहचान करने पर आधारित हो। मार्क्स, एंगेल्स व लेनिन ने इस विरोधाभासपूर्ण स्थिति का पता लगाया : कि वह जो औपचारिक आर्थिक अर्थ में मिथ्या है किन्हीं ख़ास सामाजिक परिस्थितियों में, तथा घटना-प्रवाह में बदलाव की स्थिति में ऐतिहासिक अर्थ में सत्य बन सकता है; दूसरे शब्दों में, ऐतिहासिक विकास की वास्तविक अपेक्षाएँ विचारधारा के भ्रामक रूपों में भी अभिव्यक्ति पा सकती हैं।

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'प्रथम रूसी क्रांति (1905-1907) में सामाजिक जनवाद का कृषि सम्बन्धी कार्यक्रम,' 'संकलित रचनाएँ', खंड 13, पृ॰ 397

विचारधारा के रूप में खेतिहर समाजवाद की वास्तविक प्रकृति उसमें निहित नहीं थी। जिसे इसके निर्माता इसकी वास्तविक प्रकृति समझते थे। समाजवादी सिद्धांत के रूप में खेतिहर समाजवाद मिथ्या ही रहा किन्तु इसने निश्चित जनवादी वैचारिक प्रवृत्ति के रूप में वास्तविक अर्थ अर्जित कर लिया। लेनिन ने इस घटनाक्रिया की अतिशय जटिलता तथा विजातीयता (पंचमेल) तथा इसके आंतरिक अंतर्विरोधों व जटिलता को उजागर किया। खेतिहर समाजवाद में एक-दूसरे से मेल न खाने वाले तत्व—जनवादी आकांक्षाएँ, काल्पनिक समाजवाद, निम्न-पूँजीवादी सुधारवाद तथा अनुदारवाद—समाहित थे।

मार्क्सवादी वर्ग सिद्धांत हमें न केवल सामाजिक घटनाक्रियाओं तथा प्रक्रियाओं की विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक अंतर्वस्तु को परिभाषित करने में सहायता करते हैं बल्कि (और यह कम महत्वपूर्ण नहीं है) विभिन्न वर्गों एवं सामाजिक समूहों के, उनकी सामाजिक स्थिति पर आधारित, क्रिया में अलग-अलग आवर्तन के कारण, इतिहास के प्रवाह को प्रतिबिंबित करने वाले चेतना के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करने में भी सहायता देता है। इतिहास के क्रांतिकारी कालखंड इस तरह के विश्लेषण के लिए ढेर सारी सामग्री उपलब्ध कराते हैं। ये कालखंड वैचारिक प्रणालियों के सत्यापन के लिए बुनियादी महत्व के हैं। जबकि क्रांति पूर्व (प्राक्-क्रांतिकारी) के कालखंडों में अलग-अलग विचारधाराओं तथा मतवादों की मात्र तुलना की जाती है, क्रांतियों के दौरान अलग-अलग विचारधाराएँ एवं समान व्यावहारिक अर्थों में मुठभेड़ की स्थिति में आ जाते हैं तथा इस तरह विचारधाराओं में उस समय तक जो दबा-छिपा रहता है वह खुले में आ जाता है।

1905 की प्रथम रूसी क्रांति के समय लिखी अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की रूपरेखा[1] में लेनिन ने रूसी समाज का सामाजिक समूह चित्र प्रस्तुत किया तथा प्रत्येक वर्ग तथा शक्ति की महत्ता के प्रत्येक सामाजिक समूह के विवरण में, अपनी [illegible] के अतिरिक्त, उनकी चेतना व संगठन के स्तर से संबंधित ज्ञापन भी जोड़ा जिसे वह क्रांतिकारी स्थिति में प्रत्यक्ष रूप से मजबूत कारक के रूप में देखते थे।

क्रांति [illegible] को [illegible] नहीं देती है, वह सभी वर्गों व सामाजिक [illegible] के [illegible] वर्ग के [illegible] से उद्घाटित करा देती है। रूसी समाज के [illegible] की सीमा को दर्शाते हुए लेनिन ने लिखा। [illegible] —[illegible] —को खुले में आने [illegible] किया है। [illegible] है। [illegible]

1 [illegible] पृ० [illegible]

पुजारी, नृशस दूकानदार तथा वोदका के नशे मे धुत्त पूंजीवादी समाज के कुली-कबारी। हमारे बेंदी (पश्चिमी फ्रांस की 1793 की राजशाही विद्रोह में शामिल। यहाँ शोषक शक्तियो का प्रतीक। अनुवादक) ने अभी अपने पूरे तेवर नही दिखाये हैं'''अभी तो इसने अपनी शक्तियो को ढग से लामबद करके तैनात करना प्रारंभ ही किया है। इसके पास भी इसके अपने दहनशील पदार्थों के सुरक्षित भंडार हैं जो इसने अज्ञान, उत्पीड़न, कृषि दास-प्रथा तथा पुलिस सर्वसत्तावाद की शताब्दियो के दौरान सचित किये हैं। अपने अदर यह पक्के एशियाई पिछड़ेपन के साथ-साथ पद-दलितो—जोकि पूंजीवादी शहरो की सभ्यता द्वारा जगली जानवरों से भी बदतर हालत में डाल दिये गये हैं—के शोषण, दमन के परिष्कृत तरीको के अत्यत घृणास्पद लक्षणो को संजोये हुए है। यह बेंदी जार के घोषणापत्र मात्र से लुप्त नही हो जायेगा, नौकरशाही के ऊपरी और निचले तलों पर होने वाले परिवर्तन भी इसे समाप्त नही कर पायेंगे। इसे सगठित व प्रबुद्ध सर्वहारा की शक्ति ही ध्वस्त कर सकती है, क्योंकि निरतर शोषित सर्वहारा ही अपने से नीचे के तमाम लोगो को प्रेरित करने मे तथा उनमे नागरिक-बोध जगाकर उन्हे तमाम शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखा पाने मे समर्थ है।"[1]

रूसी सामाजिक परिस्थितियो का यह जीवत चित्र वर्गों तथा बड़े सामाजिक समूहो की गतिशीलता, सत्ता के प्रति उनके रुझान (जो क्राति का केंद्रीय मुद्दा है) तथा उनके आपसी सबधो की पड़ताल के माध्यम से घटनाक्रियाओ के प्रति मार्क्सवादी वर्गीय दृष्टिकोण को भी प्रदर्शित करता है। यहाँ उनके वास्तविक आर्थिक हितो तथा राजनीतिक लक्ष्यो को ही नही अपितु चेतना एवं सघटन के उनके स्तर को भी विश्लेषित किया गया है। ये दो कारक एक महत्वपूर्ण सामाजिक तत्व की रचना करते हैं क्राति तथा प्रतिक्राति की शक्तियो के संघर्ष का अतिम परिणाम निर्धारित करने मे जिसकी भूमिका निरंतर महत्वपूर्ण होती जायेगी।

लेनिन का विश्लेषण इसके सामान्य पद्धतिमूलक मूल्य के अलावा एक अन्य दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। पूंजीवादी प्रचारको का प्रमुख तर्क यह है कि कम्युनिस्ट शोषित जनता की गरीबी को क्रातिकारी विचारो तथा क्रातिकारी कर्म के तथाकथित स्रोत के रूप मे देखते हैं। जबकि असलियत यह है कि मार्क्सवादियो ने गरीबी को कभी भी आदर्श के रूप मे प्रस्तुत नही किया है और न वे जनता को अज्ञान मे—अंधेरे से घिरी हुई व बचकानी अवस्था मे—रखना ही चाहते हैं। लेनिन ने लिखा : "राजनीतिक अज्ञान को'''आशिक रूप से'''विवादास्पद तथा महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रश्नो के सबध मे सटीक प्रमाण जुटा पाने की असमर्थता मे, चीखने-चिल्लाने व प्रतिवादो तथा जिनके हित दाँव पर लगे हैं उनकी शरणों तथा

1 वी० आई० लेनिन, 'दो अहातों के मध्य,' संकलित रचनाएं', खड 9, पृ० 463-64

उन्हे दिये गये आश्वासनों मे सहज विश्वास देखा व खोजा जाना चाहिए।"[1]

19वीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस में तथा 1905-07 में रूस में क्रांति तथा प्रतिक्रांति, 1933 मे जर्मनी में हिटलर द्वारा सत्ता प्राप्ति, चिली में सैन्य-फ़ासिस्ट तानाशाही की स्थापना तथा अन्य व्यापक रूप से भिन्न परिस्थितियों व कालखंडों मे घटित घटनाओं ने यह साफ़ तौर पर दिखा दिया कि ग़रीबी, अज्ञान, पूर्वाग्रह का दोहन किसने किया, किसने जान-बूझकर इन्हें भड़काया, इनका पोषण किया तथा किसने प्रतिक्रियावादी लक्ष्यों के लिए इनका लाभ उठाया। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के मौजूदा आलोचक इतिहास के इन अकाट्य सबकों—जो यह दिखाते हैं कि गरीबी तथा अभावों से उत्पन्न निराशा व हताशा की मनःस्थितियों का लाभ किन्हे मिला, तथा इनका दोहन किसने और कैसे किया—से जानबूझ कर कतराते रहे हैं।

सिद्धांत, प्रचार, व्यवहार

लेनिन ने इस बात पर बल दिया कि जनता की चेतना का विकास तमाम वैचारिक कार्य का आधार तथा उसकी प्रमुख अंतर्वस्तु है जबकि जनता को समझाने का कार्यभार सदा ही सरकार के प्रमुख कार्यभारों में बना रहेगा।[2] लेनिन की ये परिभाषाएँ कम्युनिस्ट पार्टी के कार्य में, सामाजिक प्रक्रिया के प्रबंधन में वैचारिक पक्षों के स्थान एवं भूमिका को उजागर करती हैं। ये इसकी अंतर्वस्तु—जनता की राजनीतिक चेतना का विकास—को दिखाती हैं, जनता को शिक्षित करने के इसके कार्यभार को व्यक्त करती हैं तथा ऐसा करने के तरीक़े—विश्वास उत्पन्न करके—को रेखांकित करती है।

एक सैद्धांतिक नियम तथा वास्तविक व्यावहारिक कार्य-व्यापार के रूप में समाजवाद सामाजिक चेतना निर्मित करने की वैचारिक एवं वैज्ञानिक कसौटियों की अंगभूत एकता क़ायम करने का आवश्यक आधार उपलब्ध कराता है।

निश्चय ही, इसका अर्थ यह नहीं है कि समाजवाद के अंतर्गत चेतना के निर्माण मे वैचारिक तथा सैद्धांतिक वैज्ञानिक कसौटियों व नियमों की एकता क़ायम करने मे स्वचलता की कोई भूमिका होती है। कोई भी स्वचलता न केवल इसलिए विद्यमान नहीं होती कि अतीत के अवशेषों के प्रतिरोध पर, समाजवाद के लिए विजातीय विचारधारा के प्रभाव के साथ ही, विजय प्राप्त करनी होती है बल्कि इसलिए भी कि समाजवाद की प्रकृति मे, इसकी वस्तुगत पूर्वापेक्षा के रूप में, अन्तर्निहित होती है। इन पूर्वापेक्षाओं की सिद्धि समाजवादी विचारधारा की

1. वी० आई० लेनिन, 'एक प्रचारक के नोट्स,' संकलित रचनाएं', खंड 19, पृ० 228
2. वी० आई० लेनिन, 'मास्को विद्रोह के सबक', संकलित रचनाएं', खंड 11, पृ० 178.
   सोवियत सरकार के तात्कालिक कार्यभार, संकलित रचनाएं', खंड 42, पृ० 68

कार्यशीलता के लिए कारगर यन्त्रविधि, वैचारिक कार्य, शिक्षा, आंदोलन एवं प्रचार के कार्य-भारों का समाजवादी समाज के विकास की प्रत्येक अवस्था मे उसके सामने उभरने वाली ठोस सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं के साथ अंतःसंबंधों (अन्योन्याश्रय) की यंत्रविधि की माँग करती है। वह यह भी माँग करती है कि आबादी के विभिन्न हिस्सों की सामाजिक सांस्कृतिक विशिष्टताओं पर, तथा समाजवादी एवं कम्युनिस्ट निर्माण-कार्य मे संलग्न विभिन्न सामाजिक समूहो के चरित्र व विशिष्ट लक्षणो पर भी ग़ौर किया जाये ताकि वैचारिक कार्य-व्यापार की अंतर्वस्तु, रूपों तथा पद्धतियो मे निरंतर सुधार लाया जा सके। आखिर मे, यह मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धात के सृजनात्मक विकास तथा सामाजिक जीवन की नयी, सामयिक समस्याओ व घटनाक्रियाओं की खोज-पड़ताल के प्रति अभिमुखीकरण को भी आवश्यक शर्त मानती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक विचारधारा के रूप मे समाजवादी विचारधारा की विशिष्टताएँ तथा लाभ कतिपय वस्तुगत तथा आत्मगत पूर्वापेक्षाओं तथा समाज की वैचारिक संस्थाओ के सुसंगत लक्ष्योन्मुख प्रयासों के सदर्भ में ही उजागर होते हैं तथा वैचारिक प्रक्रियाओ के वैज्ञानिक प्रबधन और जनता की राजनीतिक शिक्षा की कला में महारत हासिल करने की माँग करते हैं।

कम्युनिस्ट पार्टी का वैचारिक कार्य-व्यापार सामाजिक जीवन के सभी प्रमुख क्षेत्रों—आर्थिक गतिविधि एवं राजनीति, उत्पादन एव विज्ञान, सस्कृति एवं नैतिकता—को अंगीभूत करने वाला जटिल एवं बहुआयामी प्रयास है। यह विविध सैद्धांतिक वैज्ञानिक समस्याओं तथा संगठन की व्यावहारिक समस्याओ के सृजनात्मक हल करने मे संलग्न होती है।

मनुष्य को ढालने व शिक्षित करने के उद्देश्य से किया जाने वाला वैचारिक काम कम्युनिस्ट पार्टी का सीधा दायित्व एवं सरोकार है। कम्युनिस्ट निर्माण के प्रत्येक क्षेत्र में यह पार्टी नेतृत्व एवं दिशा-निर्देशन का अभिन्न हिस्सा है।

वैचारिक कार्य के प्रति सही वैज्ञानिक दृष्टिकोण की एक आवश्यक शर्त यह है कि समाज के विकास की प्रत्येक अवस्था मे इसके कार्य-भारों के समग्र सदर्भ में उठने वाली समस्याओं का व्यापक हल खोजा जाये। इससे वैचारिक कार्य मे संलग्न सभी व्यक्तियों के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वे अर्थव्यवस्था, संस्कृति तथा विज्ञान के क्षेत्र मे देश के स्तर पर तथा अतर्राष्ट्रीय पैमाने पर घटित हो रहे परिवर्तनों पर उनके सामाजिक परिणामों, रोजमर्रा की ज़िंदगी पर उनके प्रभावों, मनुष्यों की जीवन व काम की परिस्थितियों, मनुष्यों की चेतना, मनोविज्ञान व भावनाओं पर उनके प्रभावो के प्रिज्म के माध्यम से ग़ौर करें। इस तरह के विश्लेषण की परिधि के बाहर वैज्ञानिक दृष्टिकोण या तो जड़ (मृत) शब्द बन जाता है या, उससे भी बदतर, चालू शब्द बन जाता है तथा ऐसे संकीर्ण रास्तों की

ओर ले जाता है जो विज्ञान के साज-सामान से आच्छादित होते हैं।

वैचारिक कार्य को शुद्ध अमूर्त चेतना अथवा उत्पादन प्रौद्योगिकी का क्षेत्र मानना ग़लत है। वैचारिक कार्य मानव संबंधों का क्षेत्र है। यही कारण है कि इन संबंधों को निर्धारित एवं प्रभावित करने वाले विविध कारकों के महत्व पर ग़ौर करना बेहद ज़रूरी है, सामाजिक घटनाक्रियाओं का सटीक वैज्ञानिक विश्लेषण ज़रूरी है। इस प्रकार का विश्लेषण सकारात्मक कारकों के प्रगतिशील विकास की तथा नकारात्मक कारकों के उदासीनीकरण की संभावनाओं को उजागर करता है। यह स्थायी एवं अस्थायी, बाह्य एवं आंतरिक लक्षणों को निर्धारित करता है जो अपने तईं वैचारिक प्रभाव की इष्टतम परिस्थितियां निर्मित करके उन्हें वैचारिक व्यवहार का अंगभूत बनाता है। सामाजिक तथ्य वैचारिक कार्य के आधार व कसौटी होने के साथ-साथ उसका प्रस्थान बिंदु तथा चरम परिणाम भी होते हैं। हम समाजवादी समाज के मानवीय उपक्रम का कोई भी क्षेत्र क्यों न चुनें—आर्थिक कार्य-व्यापार, उत्पादन, दैनंदिन जीवन, संस्कृति, सामूहिक जीवन, आदि में से कोई भी—हर जगह वैचारिक एवं शैक्षणिक प्रयासों की कारगरता का सूचक चेतना, संघटन व संलग्न मनुष्यों के दायित्व बोध का स्तर होता है जोकि व्यक्तियों के सामाजिक कार्यकलाप में व्यावहारिक रूप में व्यक्त होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैचारिक कार्य-व्यापार शुद्ध चेतना की स्व-गति-शीलता की प्रक्रिया नहीं है जिसमें कि जीवित व्यक्तियों के बदले अमूर्त विचार एवं प्रतीक सक्रिय रहते हों। साथ ही, वैचारिक एवं शैक्षणिक कार्य कर्त्ता-कर्म संबंधों का दायरा भी नहीं है जिन्हे कि किसी उत्पादन प्रौद्योगिकी में—युक्तिमूलक संचालन की समुचित प्रतिनिधिक व्याप्ति के लिहाज़ से—वैचारिक एवं शैक्षणिक कार्य के उद्देश्य से 'कूटबद्ध किया जा सके। यह तथ्य, कि मनुष्य अपनी चेतना, स्वतंत्र चयन, जीवन के प्रति सुनिश्चित रुझानों व रुचियों के 'विस्तार के साथ वैचारिक संबंधों को क़ायम करते हैं, वैचारिक 'प्रक्रियाओं के प्रबंधन' के प्रमुख विशेष लक्षणों को निर्धारित करता है। यह वैचारिक एवं शैक्षणिक प्रयासों—जिनकी चरम कसौटी बाह्य व्यवहारवादी चिह्न एवं प्रतीक नहीं है बल्कि व्यक्तियों की चेतना, संघटन तथा दायित्व बोध का स्तर है। इन आत्मपरक कारकों की स्थिति को अंकित कर पाना कभी-कभी बेहद मुश्किल या एकदम असंभव हो जाता है तथा उन्हें पूरी तरह से विकसित करने वाली व्यावहारिक स्थितियों के प्रकट होने से पूर्व उन पर ग़ौर कर पाना और भी मुश्किल हो जाता है—के वास्तविक प्रभाव के हिसाब-किताब व माप को बेहद मुश्किल बना देता है।

साथ ही, वैचारिक कार्य की कारगरता का प्रश्न वास्तविक जीवन के संबंध में उसकी प्रासंगिकता के प्रश्न से भी जुड़ा हुआ है।

आज दिन तक सोवियत समाज के विकास का रिकार्ड यह संकेत देता है कि

समाजवाद तथा कम्युनिज्म के निर्माण और विचारधारा के बीच की कड़ी को अनुभववाद अथवा वैचारिक समस्याओं को मौजूदा विशिष्टीकृत प्रश्नों व समस्याओं की समग्रता में विलीनीकृत करने के माध्यम से मजबूत नहीं किया जा सकता; बल्कि सामाजिक प्रक्रिया के विश्लेषण को अधिक गहन बनाकर, आज के घटनाक्रम तथा सामाजिक जीवन की समस्याओं को सामाजिक प्रगति के व्यवहार तथा दूरगामी सम्भावनाओं के साथ इसे जोड़ कर ही उक्त कड़ी को सुदृढ़ किया जा सकता है। यदि वैचारिक कार्य को सामान्यताओं के दुष्चक्र से बचे रहना है तो यह तभी संभव है जब वह समाज के आर्थिक एवं आध्यात्मिक जीवन को प्रभावित करने वाले समकालीन परिवर्तनों से असंपृक्त न हो, स्वयं को उनसे काट न ले। हर नयी घटना एवं विकास के प्रति प्रचार की तीव्र प्रतिक्रिया तथा समाज के जीवन में अब का यथार्थवादी विश्लेषण न केवल जनमत निर्माण को, वाँछित दिशाओं में ढाल कर तथा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे सही बनाकर, संभव बनाता है बल्कि वैचारिक कार्य की अधिकतम कारगरता के लिए आवश्यक विश्वास के समग्र वातावरण का सृजन भी करता है।

'जनता के दोस्त' कौन हैं तथा सामाजिक जनवादियों से वे कैसे संघर्ष करते हैं मे लेनिन ने कार्ल लिब्नेख्त के शब्दों—अध्ययन, प्रचार, संगठन[1]—को समाजवादी विचारधारा के कार्य-भारों की सही परिभाषा के रूप में रेखांकित किया। अध्ययन करना, प्रचारित करना, संगठित करना वैचारिक कार्यकलाप के लेनिनवादी सार को अभिव्यक्ति देते हैं। यह सूत्र वैचारिक कार्य की अंतर्वस्तु एवं चरित्र—वैज्ञानिक प्रकृति, सामाजिक कार्यकलाप, व्यावहारिक कारगरता—को निर्धारित करने वाली उसकी सार-वस्तु को बखूबी व्यक्त करता है।

समाजवादी व्यवहार में परिणामवाद के लिए कोई जगह नहीं है जो सदा ही सुपरिभाषित वैचारिक भविष्य प्रभाविता के आधार पर विकसित हुआ है। रूस मे हुई तीन क्रांतियों का, तथा सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण का इतिहास यह बताता है कि इन परिवर्तनों को पूरा करने में लेनिन द्वारा स्थापित कम्युनिस्ट पार्टी ने इन परिवर्तनों के वैचारिक पक्ष को छाँटने में, तथा इसके आधार पर सामाजिक प्रगति की सुनिश्चित अवस्था में उसके वैचारिक कार्यकलाप की ठोस अंतर्वस्तु निर्धारित करने में काफ़ी सतर्कता बरती।

आर्थिक कार्यकलाप, उत्पादन, दैनंदिन जीवन तथा संस्कृति के अपने विशिष्ट वैचारिक पक्ष होते हैं। वैचारिक समस्याएँ खास तरह से अपवर्तित होती हैं, सामाजिक जीवन के प्रत्येक विशिष्टीकृत क्षेत्र मे अलग-अलग रूपों मे वैचारिक पक्ष को अलग करना, सामाजिक जीवन मे इसके स्थान तथा इसके तमाम परिणामों

---

1 देखें, वी आई. लेनिन, 'जनता के दोस्त कौन हैं तथा सामाजिक जनवादियो से वे कैसे संघर्ष करते हैं,' संकलित रचनाएं, खंड 1, पृष्ठ 298

को निर्धारित करना तथा समस्या के समाधान को विशिष्ट वैचारिक विधियों का पता लगाना आवश्यक है। इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तीव्र राजनीतिक अंतर्दृष्टि तथा उच्च व्यावसायिक कुशलता की माँग करने वाले वैचारिक कार्य की एक अत्यंत बड़ी चुनौती निहित है।

समाज के सदस्यों के मध्य समाजवादी चेतना निर्मित करने की समस्या के स्वायत्त पक्षों का विश्लेषण कारकों—सिद्धांत, प्रचार व व्यवहार—के निरंतर समुच्चय को उद्घाटित करता है जोकि समाजवादी समाज में वैचारिक प्रक्रियाओं के प्रवाह को निर्धारित एवं प्रभावित करते हैं। इन कारकों की द्वंद्वात्मक अंतःक्रिया के बारे में व्यापक विचार ही किसी समाज के वैचारिक विकास के प्रबंधन को कारगर बनाता है। यह तथ्य, कि लेनिन ने वैचारिक कार्यकलाप के इन कारकों की एकता क़ायम करके इन्हें पार्टी की नेतृत्वकारी व पथ-प्रदर्शक भूमिका के क्रियान्वयन से सीधा जोड़ दिया, यह प्रदर्शित करता है कि उन्होंने इनको काफ़ी महत्त्व दिया। लेनिन ने लिखा: "तुम सैद्धांतिक काम के बिना वैचारिक नेता नहीं बन सकते ठीक वैसे ही जैसेकि लक्ष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस काम को आगे बढ़ाये बिना, इस सिद्धांत के परिणामों का प्रसार किये बिना तुम वैचारिक नेता नहीं बन सकते।"[1]

सैद्धांतिक काम तथा प्रचार वैचारिक कार्यकलाप के ऐसे पक्ष हैं जिन्हें एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। इन्हें अलग करके न तो पहचाना जा सकता है और न इनमें विरोध पैदा किया जा सकता है। सिद्धांत प्रचार को वैज्ञानिक व्याख्या प्रदान करता है जबकि प्रचार सिद्धांत को व्यावहारिक एवं कारगर सामर्थ्य प्रदान करता है।

व्यावहारिक प्रचार तथा वैज्ञानिक एवं सैद्धांतिक कार्यकलाप के संबंधों को उजागर करते हुए लेनिन ने लिखा: "इसके विपरीत, प्रचार तथा आंदोलन के व्यावहारिक काम को सदैव प्रमुखता मिलनी चाहिए क्योंकि सैद्धांतिक काम मुख्यतः व्यावहारिक काम द्वारा उठाई गयी समस्याओं के समाधान ही उपलब्ध कराता है।"[2] सिद्धांत अपना कार्य तभी पूरा कर सकता है जब यह असल अनुभव पर भरोसा रखे और तभी यह वास्तविक जीवन द्वारा प्रस्तुत समस्याओं के समाधान उपलब्ध करा सकता है। दूसरी ओर, प्रचार की समूचे समाज के कार्य-भारों के सैद्धांतिक प्रतिपादन के स्तर के अनुरूप होना चाहिए।

लेनिन ने जनता की राजनीतिक शिक्षा तथा व्यावहारिक कर्म के लिए उन्हें संगठित करने को प्रचार के बुनियादी कार्य-भार के रूप में देखा। सोवियत

1 वी० आई० लेनिन, "जनता के 'मित्र' कौन हैं [illegible]", संकलित रचनाएँ, खण्ड 1, पृष्ठ 298
2 वही, पृष्ठ [illegible]

कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने क्रांतिकारी संघर्ष तथा नये समाज के निर्माण की प्रत्येक अवस्था मे इस समस्या को हल किया है।

लेनिन ने **चेतन तथा स्वतःस्फूर्त** की समस्या का **क्या करें ?** मे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया था। यह कोई संयोग नहीं है कि उनकी यह रचना मार्क्सवाद के पूँजीवादी एव संशोधनवादी आलोचकों के बेहद भयानक हमलों का निशाना बनी है। रोजर गरोदी पिछले एक दशक से लगातार यह दावा कर रहे हैं कि लेनिन ने **क्या करें ?** मे निहित बुनियादी प्रस्थापनाएँ काउत्स्की से उधार ली थी। गरोदी ने अपनी पुस्तक **लेनिन** मे लिखा है : "लेनिन की पार्टी की अवधारणा को परिभाषित करने के लिए **क्या करें ?** मे निहित विचारो से पथ-प्रदर्शन पाने की कोशिश बडी एवं भयानक गलती होगी।"[1]

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रवर्तकों ने समाजवादी चेतना को मजदूर आंदोलन से जोडने के प्रश्न को सर्वहारा की क्रांतिकारी पार्टी के निर्माण के प्रश्न के रूप मे देखा था। इस प्रश्न की यही वह व्याख्या है जो लेनिन ने प्रस्तुत की थी : "हमे सभी यूरोपीय देशो मे एकल सामाजिक जनवादी आंदोलन के रूप मे समाजवाद तथा मजदूर आंदोलन को मिला देने की निरंतर बढ़ती हुई आकांक्षा दिखायी पड रही है···मार्क्स-एंगेल्स ने समाजवाद को मजदूर वर्ग के आंदोलन के साथ मिलाने की दिशा में आगे बढ़ाकर अपना श्रेष्ठतम योगदान किया : उन्होंने ऐसे क्रांतिकारी सिद्धांत का सृजन किया जो इस मिलन की आवश्यकता की व्याख्या करता था तथा जिसने समाजवादियों को सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष को संगठित करने का कार्यभार सौंपा।"[2] समाजवादी चेतना के बारे मे लिखते समय लेनिन काउत्स्की के विचारो को तो दोहरा ही नही रहे थे—जैसाकि गरोदी ने दिखाने का किया है—बल्कि इसके विपरीत, मार्क्स एव एंगेल्स के विचारो को ही विकसित कर रहे थे।

स्वत.स्फूर्त मजदूर आंदोलन में समाजवादी विचारधारा प्रविष्ट करने से संबंधित लेनिन की अवधारणा को मार्क्स-एंगेल्स के इस आधारभूत विचार मे खोजा जा सकता है कि **क्रांतिकारी समाजवाद के इर्द-गिर्द, कम्युनिज्म के इर्द-गिर्द एकत्र होकर ही** सर्वहारा अपना ऐतिहासिक आंदोलन अर्जित करता है।[3] मार्क्स के विचारों को लेनिन के विचारों के खिलाफ रखने के प्रयत्न उतने ही सफल हुए हैं, अधिक नहीं, जितने कि समाजवादी विचारधारा को मजदूर वर्ग के लिए विजातीय सिद्ध करने के, ऊपर से थोपी हुई तथा उसकी अंत.प्रेरणा का निरोध

---

1. रोजर गरोदी, लेनिन, पेरिस, 1968, पृ॰ 20
2 वी॰ आई॰ लेनिन, 'रूसी सामाजिक-जनवाद की प्रतिगामी रुझान,' संकलित रचनाएँ, खंड 4, पृ॰ 257-58
3. कार्ल मार्क्स, 'फ्रांस में वर्ग-संघर्ष,' संकलित रचनाएँ, तीन खंडो में, खंड 1, पृ॰ 232

करने वाली के रूप में चित्रित करने वाले प्रयास हुए हैं। यानी ये प्रयास भी असफल ही होंगे।

लेनिनवाद के आलोचकों द्वारा किया गया समस्या का पदनिम्नक विदूनीकरण स्वतः-स्फूर्ति और चेतना के बीच परम विरोध में निहित है। वे इस विषय में लेनिन की दृष्टि को गलत ढंग से चित्रित करते हैं। मजदूर आंदोलन में समाजवादी विचारधारा का प्रविष्ट किया जाना इस आधार पर न्याय-संगत ठहरता है कि यह चेतना सर्वोपरि वैज्ञानिक होने के कारण स्वतःस्फूर्त ढंग से विकसित नहीं की जा सकती। समाजवादी विचारधारा सर्वहारा के वर्ग संघटन का उपकरण है, आत्मान्वेषण का उपकरण है, वर्ग के रूप में सर्वहारा के राजनीतिक तथा वैचारिक सुदृढीकरण का औजार है, स्वयं में एक वर्ग से स्वयं के लिए एक वर्ग के रूप में उसके रूपान्तरण का उपकरण है। मजदूर आंदोलन को स्वतःस्फूर्त ढंग से विकसित होने देकर इस ऐतिहासिक कार्यभार को पूरा नहीं किया जा सकता क्योंकि यह मात्र आर्थिक मनोवृत्ति को ही उत्पन्न कर सकता है। आज जब पूंजीवाद मेहनतकश जनता पर उपभोक्ता रुझानों और मानसिकता को लादने की कोशिशें बड़े मनोयोग से कर रहा है, तो ऐसे में यह समस्या एक खास समकालीन ध्वनि देने लगती है।

लेनिन ने स्वतःस्फूर्त तथा चेतन तत्वों को कभी भी अभौतिक ढंग से एक-दूसरे के सामने नहीं रखा। लेनिन की अवधारणा इस अनुभव से प्रस्थान करती है कि स्वतःस्फूर्त तत्व सार रूप में चेतना को उसकी भ्रूण (आरंभिक-अविकसित) अवस्था[1] में प्रस्तुत करता है, इससे न कम न ज्यादा। ऐतिहासिक परिस्थितियों के अभाव पर ही, भौतिक क्षेत्र के प्रभाव पर ही सारा दोष मढ़ देने को वैचारिक कार्यकलाप के प्रति निष्क्रिय दृष्टिकोण मानकर लेनिन ने इसे सिद्धांतकारों का अपनी कमजोरियों के प्रति मोह[2] की संज्ञा दी। लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों ने समस्त वैचारिक एवं सामाजिक प्रश्नों पर इसकी भौतिकवादी स्थितियों पर डटे रहकर प्रारंभ से ही इन्हें कार्यकलाप का सक्रिय एवं स्वायत्त रूप तथा मजदूर आंदोलन और इतिहास को प्रभावित करने वाला कारक माना।

1903 में एक वैचारिक रुझान तथा राजनीतिक पार्टी के रूप में अपने जन्म से ही बोल्शेविकवाद ने वैचारिक कार्यकलाप के क्षेत्र में दो भ्रांतिपूर्ण रुझानों का तिरस्कार किया : एक ओर तो उस वैचारिक रुझान का जो दैनंदिन जीवन में भौतिक परिस्थितियों से संबंध-विच्छेद के कारण दिवा-स्वप्नों तथा जुमलेबाजी के रूप में पतित हो जाता है, तथा दूसरी ओर उसका जो परिस्थितियों के अभाव पर सारा दोष मढ़कर निष्क्रियता तथा जड़ता को विचारधारा की नियति घोषित

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'क्या करें ?' संकलित रचनाएं, खंड 5, पृ॰ 374
2. वही, पृ॰ 378

कर देता है। बोल्शेविक पार्टी को संगठित करते समय लेनिन द्वारा प्रमाणीकृत यह अत्यंत सिद्धांतनिष्ठ दृष्टिकोण उनकी परवर्ती रचनाओं में विकसित हुआ तथा तमाम सोवियत कम्युनिस्टों के वैचारिक कार्यकलाप का आधार-स्तंभ बन गया।

लेनिन के क्या करें ? के आज के आलोचक इस तथ्य पर चुप्पी खींच जाते हैं (और यह मात्र संयोग नहीं है) कि लेनिन ने स्वतःस्फूर्त तथा चेतना की समस्या का समाधान पूंजीवादी तथा समाजवादी विचारधाराओं के विरोध के संदर्भ में किया है। लेनिन ने रेखांकित किया था : "...एक मात्र विकल्प है—या तो पूंजीवादी विचारधारा या समाजवादी विचारधारा।"[1] यहाँ यह विरोध संपूर्ण एवं सीधा-सादा है क्योंकि कोई बीच का रास्ता न तो है और न हो सकता है। अतः वैचारिक एवं राजनीतिक दृष्टि से मजदूर आंदोलन की स्वतःस्फूर्ति के महिमागान का परिणाम समाजवादी विचारधारा की सार्थकता में कमी तथा पूंजीवादी विचारधारा का और अधिक प्रभाव होगा।

लेनिन ने मार्क्सवाद-विरोधी आरोपों का—कि समाजवादी विचारधारा को मजदूर आंदोलन पर थोप दिया गया है—खंडन करते हुए लेनिन ने सिद्ध कर दिया कि सर्वहारा ने वैज्ञानिक विचारधारा को दो कारणों से अपनी विचारधारा के रूप में अंगीकार किया : एक तो इसलिए कि समाजवादी विचारधारा ने अन्य विचारधाराओं की तुलना में मजदूर वर्ग के हितों को अधिक गहराई से व सटीकता के साथ परिभाषित किया था, और दूसरे इसलिए कि मजदूर वर्ग की वस्तुगत स्थिति उसके लिए समाजवादी विचारधारा को आत्मसात करने को काफी आसान बना देती है वैसे ही जैसे रूसी समाज के निम्न पूंजीवादी तबकों की वस्तुगत स्थिति सर्वहारा क्रांति की विजय के बाद उनकी समाजवादी पुनर्शिक्षा को एक मुश्किल कार्यभार बना देती है।

समाजवादी चेतना और जनता का अनुभव

मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी मजदूर आंदोलन तथा समाजवाद के सम्मिश्रण से उत्पन्न होती है। लेनिन ने पार्टी के प्रमुख कार्यभारों में से एक को (उसके जन्म के समय ही) मजदूर वर्ग के राजनीतिक संघटन को तथा राजनीतिक विकास को बढ़ावा देने के रूप में परिभाषित किया।[2] लेनिन की दृष्टि में, जनता के स्वयं के राजनीतिक अनुभव के दायरे से परे इस कार्यभार की सिद्धि के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। उन्होंने लिखा : "निश्चय ही, सामाजिक जनवादियों के समक्ष यह सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है कि सिवाय राजनीतिक संघर्ष

1 वी॰ आई॰ लेनिन, 'क्या करें ?' संकलित रचनाएं', पृष्ठ 384

2 वी॰ आई॰ लेनिन, 'हमारे आंदोलन के तात्कालिक कार्यभार', संकलित रचनाएं', खंड 4, पृ॰ 363

व राजनीतिक कर्म के माध्यम से, राजनीतिक शिक्षा असंभव है। निश्चय ही, यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि राजनीतिक कार्यकलाप तथा राजनीतिक संघर्ष से दूर रखे जाने पर मेहनतकश जनता को अध्ययन मंडलियों अथवा पुस्तकों के माध्यम से राजनीतिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है।"[1] लेनिन ने 1905 की प्रथम रूसी क्रांति से पहले ही इस समस्या को इस रूप में सूत्रित कर लिया था।

लेनिनवाद के समकालीन आलोचक क्या करें ? तथा लेनिन प्रथम रूसी क्रांति के वर्षों 1905-07 के दौरान लिखी रचनाओं के बीच कृत्रिम रूप से विरोध दिखाने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसा यह सिद्ध करने के प्रयास के रूप में किया जा रहा है कि 1902 में जब उन्होंने क्या करें ? लिखी थी लेनिन काउत्स्कीवादी थे जबकि 1905-07 की अपनी रचनाओं में वह लेनिनवादी थे। उनका दावा यह है कि अपने कार्यकलाप के आरंभिक काल में लेनिन काउत्स्की के आर्थिक भौतिकवाद के प्रभाव में थे तथा इसके कारण वह मजदूर वर्ग की ऐतिहासिक अंत:प्रेरणा तथा जनता के स्वयं के राजनीतिक अनुभव की भूमिका को सही-सही नहीं आँक पाये। रोजर गरौदी लिखते हैं : 1902 में लिखे अपने क्या करें ? में लेनिन ने भूमिगत पार्टी—जिसे आतंकवादी जारशाही तानाशाही के ख़िलाफ़ तीव्र संघर्ष की परिस्थितियों में काम करना था—के संघटन के सिद्धांतों को परिभाषित किया। लेनिन ने उस समय सैन्य अनुशासन तथा केन्द्रीयतावाद पर तर्कसंगत जोर दिया था (किन्तु इस पुस्तक में कहीं भी वह जनतंत्रीय केन्द्रीयतावाद का उल्लेख भी नहीं करते)। इसके विपरीत, काफी भिन्न परिस्थितियों में 1917 में, लेनिन ने जनसमूहों की ऐतिहासिक अंत:प्रेरणा तथा उनकी सृजनात्मक स्वत:स्फूर्ति का गुण-गान किया।"[2] संशोधनवादी आलोचकों को समाजवादी चेतना के प्रवेश तथा राजनीतिक कार्यकलाप एवं क्रांतिकारी संघर्ष के चौखटे के बाहर जनसमूहों की कारगर शिक्षा की असंभवता संबंधी लेनिन की प्रस्थापनाओं में असमाधेय अंत-विरोध दिखायी पड़ता है।

समाजवादी चेतना का प्रवेश तथा जनसमूहों का स्वयं का राजनीतिक अनुभव (हमारा स्पष्ट आशय राजनीतिक अनुभव से है, क्योंकि कपटी आलोचक इस प्रश्न को सावधानीपूर्वक टाल जाते हैं कि लेनिन के मस्तिष्क में किस किस्म के अनुभव पर जोर था)—ये समाजवादी शिक्षा की एकल प्रक्रिया के ही दो पक्ष हैं।

उनकी ये मान्यताएँ भी ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खातीं कि लेनिन ने मजदूर-वर्ग तथा विशाल समूहों के राजनीतिक अनुभव का प्रश्न भी तथाकथित रूप से 1905-07 की क्रांति तथा 1917 की अक्तूबर क्रांति के अनुभव के संबंध में ही

[1] व्ला॰ इ॰ लेनिन, 'दे कोई की घोषणा के संदर्भ में', संकलित रचनाएँ, खंड 4, पृ॰ 283.

[2] रोजर गरौदी, ग्रेंड टूर्नांट, पेरिस, 1975, पृ॰ 197

उठाया था। बहुत पहले, यानी रूस में सर्वहारा आंदोलन के उदय-काल—1894 में ही, लेनिन ने अपनी रचना "जनता के दोस्त कौन हैं तथा वे सामाजिक-जनवादियों से संघर्ष कैसे करते हैं" में इस मूलभूत रूप से महत्वपूर्ण प्रश्न पर रूस के सामाजिक-जनवादियों के दृष्टिकोण को परिभाषित किया था। उन्होंने लिखा : "सामाजिक-जनवादियों के सैद्धांतिक कार्य की आवश्यकता, महत्व तथा विशालता को रेखांकित करते हुए भी मैं यह कतई नहीं कहना चाहता कि इसे व्यावहारिक कार्य पर वरीयता मिलनी चाहिए—और यह तो मैं बिलकुल ही कहना नहीं चाहता कि पहले कार्य के पूरा हो जाने तक इसे स्थगित कर देना चाहिए। केवल समाजशास्त्र के आत्मपरक पद्धति के प्रशंसक अथवा काल्पनिक समाजवाद के अनुयाई ही इस तरह के निष्कर्ष तक पहुँच सकते हैं।"[1]

तो यह है समस्या की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि। लेनिन द्वारा 1905 के क्रांतिकारी कार्यभारों के संदर्भ में जनसमूहों के राजनीतिक अनुभव पर विशेष ध्यान दिया जाना आसानी से समझ में आ सकता है, खासकर इस तर्क के संदर्भ में कि जहाँ तक राजनीतिक अनुभव अर्जित करने का सवाल है, पूरे पैमाने पर एक घंटे की क्रांति कई वर्ष के सापेक्षतया शांतिपूर्ण विकास जितनी ही मूल्यवान है।

अपना स्वयं का राजनीतिक अनुभव प्राप्त करने का अर्थ है समाज के सभी वर्गों को उनकी क्रियाशीलता में देखना सीखना, उनके व्यावहारिक आचरण तथा वैचारिक कार्यक्रमों में तदनुरूपता सत्यापित होने का निहितार्थ है सैद्धांतिक नियमों की कसौटी पर व्यावहारिक कार्यकलाप की परख करना। लेनिन ने बलपूर्वक कहा : "फिर भी, सर्वहारा के व्यापक जन-समूहों की समझ में ये सच्चाइयाँ तभी आएँगी जबकि इन वर्गों के पास इस या उस वर्ग की पार्टियों के आचरण का स्पष्ट एवं ठोस अनुभव होगा, जब उनके वर्गीय स्वरूप की साफ समझ को अनुपूरित करने के क्रम में पूँजीवादी पार्टियों के संपूर्ण चरित्र तक पहुँचने के लिए सर्वहारा मस्तिष्क तत्काल प्रतिक्रिया करने लगे।"[2]

अपने स्वयं के राजनीतिक अनुभव के माध्यम से ही हम अपने समाजवादी ज्ञान को समाजवादी विश्वासों में बदल सकते हैं। राजनीतिक अनुभव एक ओर तो वैज्ञानिक ज्ञान को पुख्ता बनाता है तथा दूसरी ओर वह इसे अर्जित करने के लिए तथा यथार्थ एवं सामाजिक घटनाओं के सार को ग्रहण करने के लिए कारगर उत्प्रेरणा का काम करता है। लेनिन ने टिप्पणी की : "यह आकस्मिक नहीं था कि क्रांति (यानी 1905-07 की प्रथम रूसी क्रांति-लेखक) की असफलता के बाद

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'जनता के दोस्त कौन हैं तथा सामाजिक-जनवादियों से कैसे संघर्ष करते हैं,' संकलित रचनाएँ, खंड 1, पृष्ठ 297-98
2. वी॰ आई॰ लेनिन, 'एक प्रचारक के नोट्स,' संकलित रचनाएँ, खंड 13, पृष्ठ 73

से ही, समाज के सभी वर्गों, जन-समूहों के व्यापक हिस्सों ने विश्व दृष्टि के मूलभूत तत्वों, धर्म एवं दर्शन के प्रश्नों, तथा समग्र मार्क्सवादी सिद्धांत के नियमों में एक नई एवं अभूतपूर्व रुचि प्रदर्शित की है; यह तो अवश्यंभावी था। यह कोई संयोग नहीं है कि क्रांति के दौरान कार्य-नीति के प्रश्न पर तीक्ष्ण रूप से विभाजित जन-समूह ने उसके बाद के काल—जिसकी विशिष्टता प्रत्यक्ष व खुले संघर्ष का अभाव है—में सामान्य सैद्धांतिक ज्ञान के पक्ष में आकांक्षा व्यक्त की है, यह भी अवश्यंभावी था। हमें इन जन-समूहों को मार्क्सवाद के मूलभूत तत्वों को फिर से समझाना चाहिए : मार्क्सवादी सिद्धांत की रक्षा पुनः समय की माँग बन गयी है।"[1]

यह तर्कसंगत ही है कि प्रमुख राजनीतिक घटनाओं—खास कर बड़ी उथल-पुथल—के परिणामस्वरूप व्यापक दार्शनिक, वैचारिक एवं नैतिक प्रश्नों के पुनर्मूल्यांकन में रुचि बढ़ना अवश्यंभावी बन जाये। प्रत्येक वर्ग अपने वैचारिक सिद्धांतों तथा लक्ष्यों के समुच्चय की पुनर्परीक्षा करता है। 1905-07 की प्रथम रूसी क्रांति के बाद के काल की विशेषता यह थी कि मार्क्सवाद के दार्शनिक प्रश्नों की विशद व्याख्या की गयी तथा वैचारिक तथा सैद्धांतिक मुद्दों पर गरमागरम बहस चलाई गयी क्योंकि प्रत्येक वर्ग क्रांति से अपने सबक ले रहा था तथा आगे आने वाले संघर्षों के लिए स्वयं को तैयार कर रहा था।

प्रतिक्रांतिकारी शक्तियाँ भी 1905-07 की दुर्दांत घटनाओं की जाँच-परख कर रहे थे। प्रथम रूसी क्रांति की असफलता के तुरंत बाद उनके समूचे खेमे में वैचारिक प्रतिक्रिया में नाटकीय वृद्धि दिखाई दी जोकि भाववादी तथा रहस्यवादी दर्शनों के प्रसार, साहित्य एवं कला में पतनशील प्रवृत्तियों के पुनरुत्थान, तथा रूसी उदारवादी आंदोलन की समस्त जनवादी परंपराओं के संशोधन के रूप में उभर कर आयी। इस काल में क्रांति के अच्छे दिनों के सहयात्रियों के मध्य घृणास्पद गद्दारी भरे रुझान सामने आये, तथा विचारधारा का गहराता संकट और क्षय लक्षित किया गया। लेनिन ने प्रतिक्रियावाद के खेमे के भीतर की इन प्रक्रियाओं के सार-तत्व को उद्घाटित करते हुए लिखा : "1908-10 के काल में जो हमें दिखाई पड़ता है वह···पूँजीपति-वर्ग द्वारा स्वयं को एक वर्ग के रूप में मान्यता देने का परिणाम है। वह पिछले तीन वर्षों के दौरान प्राप्त हुए सबकों के प्रति सजग है तथा ऐसी विचारधारा का निर्माण कर रहा है समाजवाद (यूरोपीय समाजवाद नहीं, सामान्य तौर पर समाजवाद भी नहीं, बल्कि खास तौर पर रूसी समाजवाद) के सिद्धांतों तथा जनतंत्र के प्रति जिसका रवैया शत्रुतापूर्ण है।"[2]

घटनाक्रम में आया यह बदलाव यकायक (आश्चर्य के रूप में) नहीं था बल्कि

---

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'पार्टी के हालात' संकलित रचनाएं', खंड 17, पृष्ठ 35

2. वी॰ आई॰ लेनिन, 'राज्य-सभा की सामाजिक संरचना, संभावनाएं तथा धर्मवाद,' संकलित रचनाएं', खंड 17, पृष्ठ 168

रादिश्चेव तथा दिसम्बरवादियों के जमाने से हर्जेन तथा चेर्निशेव्स्की तक की रूसी क्रांतिकारी मुक्ति आंदोलन की वैचारिक निरंतरता के प्रश्न पर हुए पूर्ववर्ती संघर्ष का तार्किक परिणाम था। मार्क्सवाद—रूसी जमीन पर इसके कृत्रिम रूप से प्रत्यारोपण की बात ही हास्यास्पद है—जो रूसी चिंतन के श्रेष्ठतम प्रतिनिधियों ने दिक्कतों तथा तकलीफ़ों से भरे रूसी मुक्ति आंदोलन के लंबे काल के बाद—ग्रहण करने योग्य सही दर्शन की अनवरत तथा पीड़ादायक खोज के बाद—अंगीकार कर लिया था। सामाजिक-जनवादी आंदोलन तथा बोल्शेविक पार्टी का विकास रूसी मुक्ति आंदोलन की मुख्य धारा से बाहर नहीं हुआ था। लेनिन रूसी मुक्ति आंदोलन के सर्वहारा-युग को देश के मुक्ति आंदोलन की विभिन्न पूर्ववर्ती अवस्थाओं का सीधा विस्तार मानते थे। उन्होंने यह सिद्ध किया कि रूसी मुक्ति आंदोलन की वैचारिक विरासत कंकड़-पत्थर तो नहीं ही थी बल्कि दक्षिणपंथियों द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त, तथा बाद में सामाजिक-जनवादियों व कम्युनिस्टों द्वारा समृद्ध, जीवंत धरोहर थी। इसलिए यह कतई आकस्मिक नहीं था कि 1905-07 की क्रांति के बाद प्रतिक्रियावाद का सारा जोर रूसी मुक्ति आंदोलन को बदनाम करने (कि इसकी राष्ट्रीय जड़ें नहीं थी, या कि रूसी इतिहास में इसकी कोई संगति नहीं थी) पर आ गया। यह संघर्ष क्रांतिकारी-जनवादी परंपराओं के खिलाफ़ ही नहीं था। प्रतिक्रियावादी एक जीवित शत्रु—बोल्शेविक-वाद—के खिलाफ़ लड़ रहे थे जोकि रूस में पूर्ववर्ती मुक्ति आंदोलन के योग्य उत्तराधिकारी तो था ही, राजनीतिक एवं वैचारिक प्रवृत्ति भी था।

समाजवादी ज्ञान को जन-समूहों के समाजवादी अनुभव के साथ मिला देने का विचार मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रमुख विचारों में एक है तथा यह क्रांतिकारी संघर्ष व कम्युनिस्ट निर्माण के प्रत्येक चरण में प्रभावी बना रहता है। अक्तूबर क्रांति की सफलता के बाद लेनिन ने इस विचार को और आगे बढ़ाते हुए लिखा : "जब यह नया वर्ग सरकार के व्यावहारिक अनुभव से—किताबों, बैठकों अथवा भाषणों से नहीं—ज्ञान प्राप्त कर लेगा'''तो यह ऐसी शक्ति गठित करेगा जोकि पूंजीवाद तथा उसके सभी अवशेषों को उतनी ही आसानी से साफ़ कर देगा जितनी आसानी से पुआल अथवा धूल को साफ़ किया जा सकता है।"[1] लेनिन ने इस बात पर जोर दिया कि सामाजिक जीवन में गहरी संलग्नता तथा देश के शासन में भागीदारी के माध्यम से ही मेहनतकश जनता अपने व्यावहारिक अनुभव के आधार पर समाजवादी निर्माण के विज्ञान को समझ पायेगी तथा एक नये किस्म का अनुशासन विकसित कर सकेगी।

---

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'दूसरी अखिल रूसी ट्रेड यूनियन कांग्रेस में 20 जनवरी 1919 को प्रस्तुत रिपोर्ट, संकलित रचनाएं', खंड 28, पृष्ठ 420

जन-समूहों को वैचारिक रूप से प्रभावित करने के साधनों को क्रमिक रूप से सुधार कर, दैनंदिन सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकलाप में जन-समूहों को सम्मिलित करके, समाजवादी चेतना तथा उच्च वैचारिक गुणों के विकास की अपरिहार्य शर्त के रूप में उनके राजनीतिक अनुभव को बढ़ाने में सहायता देकर, ये नये विचार कम्युनिस्ट शिक्षा के सार-तत्व की वैज्ञानिक समझ की कुंजी उपलब्ध कराते हैं। सीधा सामाजिक एवं राजनीतिक अनुभव न केवल वैज्ञानिक ज्ञान को पुख्ता करने मे सहायक होता है बल्कि यह राजनीतिक अंतर्दृष्टि व राजनीतिक आदतों को विकसित करने में भी सहायक होता है बिना जिनके सचेत सामाजिक एवं राजनीतिक जारी नहीं रह सकती।

हाल के वर्षों में प्रकाशित सोवियत दार्शनिक साहित्य में सैद्धांतिक तथा दैनंदिन चेतना और विचारधारा तथा सामाजिक मनोविज्ञान के संबंधों के प्रश्न पर ध्यान केंद्रित किया गया है। प्रचार संबंधी कार्यकलाप के संदर्भ में इस प्रश्न को उच्च आदर्शों एवं लक्ष्यों को आम लोगों के रोजमर्रा के व्यावहारिक हितों तथा सरोकारों के साथ जोड़ने की समस्या के रूप में देखा जा सकता है।

इन प्रश्नों से संबंधित विचार-विमर्श को कृत्रिम अथवा दूर की कौड़ी मानना गलत है क्योंकि यह वास्तविक आधारों पर आश्रित है। समाजवाद द्वारा अर्जित परिपक्वता का उच्च स्तर चेतना के दो स्तरों—सैद्धांतिक एवं रोजमर्रा—के प्रश्न को नया आयाम देता है। सिद्धांत रूप में, इन दोनों स्तरों के बीच के संबंध जड़ अथवा स्थिर नहीं हैं बल्कि द्वंद्वात्मक हैं—यानी परिवर्तनशील हैं तथा समाज के विकास के स्तर, समाजवादी सामाजिक संबंधों की परिपक्वता तथा मानव व्यक्तित्व के विकास पर निर्भर करते हैं।

इतना कह चुकने के बाद, और खास कर सोवियत समाज के जीवन के मौजूदा यथार्थ के संदर्भ मे, हम उन लोगों से सहमत नहीं हो पाते जोकि दैनंदिन चेतना को सामान्य दुनियादारी के रूप मे अथवा आदिम, अपरिपक्व तथा समाजवादी मानदंडों से नीची किसी चीज के रूप मे चित्रित करने का रुझान प्रदर्शित करते हैं। हमें लगता है कि यदि हम इस प्रवृत्ति को अपना लें तथा इसे सुसंगत रूप से लागू करें तो बुनियादी महत्व के कई मुद्दों की तर्कसम्मत व्याख्या कर पाना हमारे लिए असंभव हो जायेगा।

वस्तुतः यह मानना तो अतिसरलीकरण ही होगा कि समाज के व्यावहारिक राजनीतिक कार्यकलाप मे जनसमूहों की भागीदारी उस ज्ञान पर ही आधारित हो सकती है जोकि वे प्रचार के विभिन्न माध्यमों से अर्जित करते हैं। वैसे ही यह मानना भी तर्कसंगत नहीं होगा कि जन-समूहों के व्यावहारिक कार्यकलाप में यह ज्ञान शुद्ध रूप में सक्रिय रहता है, जैसेकि यह उनकी दैनंदिन गतिविधियों से प्राप्त जीवन-अनुभव से अप्रभावित रहता हो। किंतु यदि हम इस बात पर सहमत हों

जायें कि दैनंदिन चेतना लाखों लोगों की रोजाना की कड़ी मेहनत का हिस्सा ही है—इससे अधिक कुछ नही, तो सवाल यह उठेगा कि समाजवादी तथा कम्युनिस्ट निर्माण में व्यावहारिक भागीदारी से प्राप्त यह प्रत्यक्ष नया अनुभव जन-समूहों के मस्तिष्कों में क्या रूप व आकार ग्रहण करता है? ज़ाहिर है, रातोंरात यह सैद्धांतिक ज्ञान का रूप धारण नहीं कर सकता क्योंकि सैद्धांतिक ज्ञान वैज्ञानिक अध्ययन का परिणाम होता है। प्रारंभ में, यह अनुभव जन-समूहों के मस्तिष्कों में उनकी आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक विश्व-दृष्टि के संदर्भ में वास्तविक दुनिया के प्रति उनके रुझानों के स्तर पर स्थिर होता है। अतः तथाकथित सामान्य दैनंदिन चेतना को नित्य कर्म जैसी, संकीर्ण तथा आदिम के रूप में (संस्कृति-विहीन तो और भी दूर की बात है) विशेषीकृत करने में सावधानी बरतना बुद्धिमत्ता-पूर्ण माना जायेगा। यह कहना ही काफ़ी होगा कि अकृत्रिम यथार्थवाद—जो भौतिक दुनिया की वस्तुपरक प्रकृति को रेखांकित करता है—को जानबूझ कर द्वंद्वात्मक-भौतिकवादी प्रतिबिंबन सिद्धांत का आधार बनाया गया है।

यह मान लेना एकांगी दृष्टिकोण का परिचायक होगा कि सामान्य चेतना रोज़मर्रा की ज़िंदगी के मात्र तुच्छ, गौण पक्षों, निस्सारताओं, तथा दूसरे व तीसरे दर्जे के महत्त्व के मुद्दों को ही आवेष्टित करती है। सामान्य चेतना (इसे व्याव-हारिक चेतना की संज्ञा देना बेहतर होगा) मनुष्य के रोज़मर्रा के हितों को प्रतिबिंबित करती है तथा इन हितों का दायरा काफ़ी व्यापक हो सकता है—युद्ध और शांति की समस्याओं तथा मौजूदा अंतर्राष्ट्रीय स्थिति से लेकर बच्चों के लालन-पालन तथा काम के स्थान की परिस्थितियों तक। दुनिया के उच्चतम आदर्शों तथा अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाओं को लोग अपने अनुभव के प्रिज़्म से देखकर समझते व ग्रहण करते हैं : इन घटनाओं व आदर्शों को अपने दैनंदिन जीवन से जोड़कर, इन घटनाओं व आदर्शों से प्रभावित सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक प्रश्नों के संदर्भ में अपना दृष्टिकोण सूत्रित करते हैं। मार्क्सवादियों ने इन परिस्थितियों के महत्त्व को सदा ही स्वीकारा है तथा अपने राजनीतिक एवं प्रचारात्मक कार्यकलाप के निर्धारण में इन पर ग़ौर किया है।

मार्क्सवादी विचारधारा तथा प्रचार द्वारा सैद्धांतिक ज्ञान के महत्व पर दिये गये ज़ोर का अर्थ सामान्य चेतना—जिसके भीतर लोग अपने अनुभव को पालते हैं, उनकी रोज़मर्रा की चिंताएँ प्रतिबिंबित होती हैं तथा जीवन के तथ्य साधारणी-करणों व मूलभूत निष्कर्षों के आयाम ग्रहण कर लेते हैं—के महत्व को कम करना कभी नहीं रहा है। रूस में क्रांतिकारी सर्वहारा आंदोलन के उषाकाल में भी लेनिन ने इन प्रश्नों को हिम्मत के साथ उठाया था। उन्होंने एकदम बेलाग शब्दों में कहा : "उच्चतम आदर्शों का मूल्य छदाम जितना भी नहीं है यदि उन्हें उन लोगों के हितों के साथ अविच्छिन्न रूप से नहीं मिला दिया जाय जोकि आर्थिक संघर्ष में भागी-

दारी करते हैं, यदि उन्हें किसी वर्ग की संकीर्ण एवं तुच्छ रोजमर्रा की समस्याओं जैसे श्रम का उचित पुरस्कार के साथ जोड़ नहीं दिया जाय, जिसे कि शब्दाडंबरी नरोदवादी इतनी उदास हिकारत से देखते हैं।"[1]

अक्तूबर क्रांति की सफलता के बाद लेनिन ने कम्युनिस्ट इंटरनेशनल में प्रवेश की शर्तों में लिखा : "रोजमर्रा का प्रचार तथा आंदोलन असली कम्युनिस्ट स्वभाव व स्वरूप का होना चाहिए...सर्वहारा की तानाशाही की चर्चा रटे जाने योग्य घिसे पिटे मुहावरे के रूप में नहीं की जानी चाहिए : इसे इस तरह लोकप्रिय बनाया (प्रसारित किया) जाना चाहिए कि हमारी प्रेस द्वारा व्यवस्थित रूप से विवेचित तथ्य दिन-ब-दिन हमारे सामान्य मेहनतकश पुरुषों व महिलाओं को, सैनिकों और किसानों को यह समझा सकें कि यह उनके लिए अपरिहार्य है।"[2]

युवक संघ (कोम्सोमोल) की तीसरी कांग्रेस में अपने भाषण में लेनिन ने इसी विषय को रेखांकित करते हुए कहा :

"समान काम एक दिन मे पैदा नहीं किया जा सकता। यह असंभव है। यह आसमान से नहीं टपकता है। यह कठिन श्रम तथा तकलीफों से पैदा होता है; इसका निर्माण संघर्ष के दौरान होता है···इसके लिए हमारे निजी जीवन-अनुभव की आवश्यकता है। यह ऐसा अनुभव है जिसे युवा कम्युनिस्ट लीग के समस्त कार्यकलाप का आधार बनाया जाना चाहिए।"[3]

जीवन के अत्यंत साधारण व नीरस तथ्यों तथा मजदूरों व किसानों की चेतना के प्रिज्म के माध्यम से उनके अपवर्त्तन ने लेनिन को बार-बार वह मूल्यवान सबूत उपलब्ध कराया जिसके आधार पर उन्होंने व्यापक तथा दूरगामी साधारणीकरण किये। आम लोगों के रोजमर्रा के हितों, मनोदशाओं, अनुभव एवं दृष्टिकोण को बेहद महत्त्वपूर्ण मानते हुए लेनिन ने इस बात पर हमेशा जोर दिया कि पार्टी के सदस्य जनसमूहों के बीचोबीच रहे, उनसे निरंतर संपर्क बनाये रखें, किसी भी मसले पर सदा उनकी मनोदशाओं व रुझानों की नब्ज को महसूस करते रहें तभी वे यह जान पायेंगे कि जनसमूह वस्तुतः क्या चाहते हैं तथा उनके दिमाग किस तरह काम कर रहे हैं : दूसरे शब्दों मे, यही सब तो सामान्य चेतना है।

हम सोचते हैं कि उपरोक्त विवरण इस बात को पूरी तरह सिद्ध करता है कि सामान्य चेतना को किसी नकारात्मक तथा परिसीमित रूप में घटाकर देखना एकदम गलत है क्योंकि यह चेतना जनसमूहों के स्व-अनुभवों को ईमानदारीपूर्वक

---

1. वी० आई० लेनिन, 'नरोदवाद की आर्थिक अंतर्वस्तु तथा श्री स्त्रूव की पुस्तक में इसकी आलोचना,' संकलित रचनाएं', खंड 1, पृ० 391
2. वी० आई० लेनिन, 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल में प्रवेश की शर्तें,' संकलित रचनाएं', खंड 31, पृ० 2०7
3 वी० आई० लेनिन, 'युवक संघों के कार्यभार,' संकलित रचनाएं', खंड 31, पृ० 296

प्रतिबिंबित करती है तथा इसमें समुचित मात्रा मे सहज बुद्धि, व्यावहारिक निष्कर्ष तथा साधारणीकरण निहित हैं, हालाँकि यह भी सही है कि ये सुव्यवस्थित वैज्ञानिक अथवा सैद्धांतिक ज्ञान को गठित नही करते।

उन्नत समाजवाद के अंतर्गत समाजवादी समाज के सदस्यो की जीवन शैली तथा रोजमर्रा का आचरण मात्र उन्हें अपने समाजवादी सामाजिक हितो को देख-समझ पाने में तथा स्वयं को देश के स्वामी के रूप मे देखने व अनुभव करने मे सहायक होता है। इस तरह पूर्णतया उन्नत समाजवादी समाज के सदस्यो की सामान्य चेतना समृद्ध होती है। इसीलिए उच्च आदर्शों की समुदाय के रोजमर्रा की तुच्छ व नीरस आवश्यकताओं के साथ जोड पाने की सामर्थ्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। क्रांतिकारी संघर्ष तथा समाजवादी निर्माण की प्रत्येक अवस्था मे यह रिश्ता प्रत्येक मोड़ पर समाज के विशिष्ट कार्यभारो, विद्यमान सामाजिक-आर्थिक वातावरण, मजदूर वर्ग के ऊपर उठते हुए सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक स्तरो तथा उनके द्वारा अर्जित सामाजिक अनुभव के अनुरूप बदलता तथा परिष्कृत होता रहा।

विचारधारा का चरित्र तथा प्रचार की किस्में

विचारधारा का चरित्र प्रचार की किस्म को प्रत्यक्ष रूप से निर्धारित करता है। इस निर्भरता को यूँ परिभाषित किया जा सकता है : विचारधारा की अंतर्वस्तु प्रचार के कार्य—विधियाँ एवं संगठन। विचारधारा की प्रकृति पर प्रचार की किस्म की इस प्रत्यक्ष तथा सीधी-सादी निर्भरता ने ही वह स्थिति उत्पन्न की है जिसमे आज की दुनिया की दो प्रमुख ध्रुवीकृत विचारधाराएँ प्रचार की दो धुर-विपरीत किस्मो—समाजवादी तथा पूँजीवादी—से मेल खाती हैं। इस तथ्य का पूरा अर्थ इन दो संबंधित विचारधाराओं द्वारा प्रचार की उपयुक्त अवधारणाएँ विकसित करने के संदर्भ मे ही खुलता है। अब यह तथ्य समाजशास्त्रीय तथा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक शोध का विषय बन गया है जिसमे यह अपेक्षा है कि वह संबंधित वैचारिक प्रणाली को अत्यंत कारगर प्रचार प्रविधियो तथा पद्धतियों से लैस करे।

पश्चिम मे अभी हाल तक प्रचलित विचारधारा-विहीनीकरण की अवधारणा बेहद रोष सूचक है। एक ओर, विचारधारा तथा प्रचार के बीच, तथा दूसरी ओर विज्ञान तथा सूचना के बीच अलंघ्य अवरोध उत्पन्न करके, तथा वैचारिकीकरण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पूर्ण निषेध मानकर, और प्रचार को सूचना का निषेध मानकर इस अवधारणा का इस्तेमाल जनमत को यह समझाने के उद्देश्य से किया जाता है कि वैज्ञानिक क्रांति के युग मे—ऐसी स्थिति मे जहाँ मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को तर्कसंगत बनाने की निरंतर बढ़ती हुई वस्तुगत आवश्यकता का वर्चस्व है, जहाँ सामाजिक जीवन के लगभग हर क्षेत्र मे विज्ञान का प्रभुत्व है—

विचारधारा अपने अवश्यंभावी अवसान की ओर अग्रसर है।

जैसीकि उम्मीद थी, विचारधारा-विहीनीकरण की यह अवधारणा अपने उदय (प्रकट होने) के साथ ही यथार्थ के साथ छत्तीसों संबंधों में उलझ गयी जो इस बात का संकेत था कि आधुनिक समाज में विचारधारा का महत्व निरंतर विकासमान था। अधिकाधिक पश्चिमी समाजशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि पूँजीवादी समाज में ऐसा सैद्धांतिक दृष्टिकोण विकसित कर पाना असम्भव है जोकि सभी को स्वीकार्य हो सके, जो किसी भी वर्गीय पक्षपात से मुक्त हो तथा समाज के विभिन्न हिस्सों तथा समूहों की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को पूरी तरह पूरा कर सके। इस तथ्य की स्वीकृति का परिणाम यह होता है कि पूँजीवादी समाजशास्त्री यह निष्कर्ष निकालने लगते हैं कि मोटे तौर पर समाज में केवल साधनों—सामाजिक प्रौद्योगिकी—को ही तर्कसंगत बनाया जा सकता है, उद्देश्यों को नहीं, तथा मानव-व्यवहार के आरंभिक मूलभूत रुझानों तथा सिद्धांतों को तो एकदम नहीं। समाज को पुनःवैचारिकीकृत करने संबंधी कतिपय पूँजीवादी समाजशास्त्रियों की माँगों के पीछे इन दिनों यही निष्कर्ष है। विचारधारा-मुक्त समाज—जहाँ समस्त संबंध एवं लक्ष्य विचारधारा के क्षेत्र से बाहर हों—की उनकी आशाएँ फलीभूत नहीं हो पायी हैं। इस वस्तुस्थिति को पश्चिम के कई ग़ैर-मार्क्सवादियों ने स्वीकार कर लिया है। सामाजिक संरचनाओं के कामकाज में विचारधारा के महत्व के बारे में भी बहुत से पश्चिमी दार्शनिकों एवं समाजशास्त्रियों ने ऐसी ही स्वीकारोक्तियाँ की हैं। यह पश्चिमी दर्शन तथा समाजशास्त्र की यात्रा—1960 के दशक में विचारधारा विहीनीकरण से प्रारंभ होकर 1970 के दशक में पुनः वैचारिकीकरण में समाप्त होने वाली यात्रा—के रोग के लाक्षणिक आसार हैं। विचारधारा विहीनीकरण की अवधारणा के निर्माताओं में प्रमुख, रेमंड आरों ने 1973 में लिखा कि "विचारधाराओं के अवसान की चर्चा अपने अंत की ओर बढ़ रही है तथा एक नये वैचारिक युग का उदय हो रहा है।"[1]

ज्यों-ज्यों बहुत से पश्चिमी समाजशास्त्री ऐसी घटनाओं तथा घटनाक्रियाओं से मुठभेड़ करते हैं जो यह संकेत देती हैं कि आज की दुनिया में मनुष्यों के व्यवहार पर वैचारिक संरचनाओं तथा कारकों का असर घटने के बजाय निरंतर बढ़ रहा है क्योंकि अधिकाधिक लोग इतिहास-निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न हो रहे हैं, त्यों-त्यों वे इस समस्या की सार-वस्तु को इसकी प्रौद्योगिक व्याख्या—जन-संचार माध्यमों के पास उपलब्ध नयी पद्धतियों तथा उपकरणों की चमत्कारिक प्रचुरता—में घटाने के प्रयास तेज़ करने में लग रहे हैं।

3. आरों, "रिमार्क्स सूर ले सूरेम एज आइडियालॉजीक", कात्रे पोइंन, पेरिस, ,, अंक 9, पृ० 13

निश्चय ही टेलिविजन, रेडियो तथा प्रेस विचारधारा तथा प्रचार के लिए नये अवसर तथा नयी स्थिति का सृजन कर रहे हैं। प्रत्येक जन माध्यम की अपनी विशिष्टताएँ तथा विशेष लाभ हैं : प्रेस लंबी अवधि तक सूचना के संचयन को सुनिश्चित करती है, रेडियो सूचना के तीव्र प्रसार को सुनिश्चित करता है तथा टेलिविजन शब्द और चित्र की एकता को—जैसा घटित हो वैसा ही देख पाने के प्रभाव को—तथा घटनाओं को भौतिक गति में प्रेषित करने की संभावना को सुनिश्चित करता है। ये लाभ इतने आकर्षक हैं कि इन पर गौर किया जाना चाहिए, इनकी परीक्षा की जानी चाहिए।

जन-माध्यमों के क्षेत्र में प्रौद्योगिक प्रगति द्वारा प्रस्तुत विस्मयकारी संभावनाओं के बावजूद यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आधुनिक समाज के जीवन के वैचारिक पहलू की अंतर्वस्तु तथा सार-तत्व का प्रश्न—मनुष्यों के मस्तिष्कों व व्यवहार पर विचारधारा एवं प्रचार के असर का प्रश्न—प्रौद्योगिक क्षेत्र में निहित न होकर, सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक-वैचारिक क्षेत्रों में निहित होता है यही नहीं, पश्चिमी समाजशास्त्रियों का समस्या के प्रौद्योगिक पहलू पर आवश्यकता में अधिक ज़ोर अपने आप में उन आंतरिक सीमाओं का सबसे अच्छा प्रमाण है जिन्हें पूँजीवादी विचारधारा की अंतर्वस्तु, उसकी वर्गीय प्रकृति तथा प्रतिबल जनमानस को प्रभावित करने के लिए इस विचारधारा द्वारा प्रयुक्त पद्धति पर लाद देते हैं।

पूँजीवादी विचारधारा के पुनः वैचारिकीकरण की माँगें विचारधारा तथा विज्ञान के बीच के विरोध—जोकि पूँजीवादी समाजशास्त्र का विशिष्ट लक्षण है—को दूर नहीं करती है। प्रस्तावित पुनः वैचारिकीकरण के चौखटे के भीतर विज्ञान एवं विचारधारा सह-अस्तित्व का आभास मात्र देते हैं, वे एक-दूसरे को अनुपूरित तथा पारस्परिक रूप से परिसीमित करते हैं। किसी समस्या विशेष के सूत्रीकरण मात्र के संबंध में वैचारिक संघर्ष की तीव्रता मानवीय कार्यकलाप के आध्यात्मिक-व्यावहारिक दृष्टिकोणों तथा मूल्यों के गठन में—मानवता के सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास की मौजूदा अवस्था में खास तौर से सिद्धांत एवं व्यवहार के आपसी संबंधों में—वास्तविक अंतर्विरोधों तथा प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित करती है।

प्रविधिज्ञों के विपरीत, मार्क्सवादी सिद्धांतकार विचारधारा की बढ़ती हुई भूमिका को सर्वोपरि सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक कारकों में देखते हैं; वर्ग-हितों, विशिष्ट सामाजिक समूहों की वस्तुगत स्थिति तथा उनके लक्ष्यों, कार्यभारों व व्यवहार के, हमारे युग के मज़दूर-वर्ग तथा प्रगतिशील शक्तियों की नयी स्थितियों तथा प्रवृत्तियों के सैद्धांतिक बोध की बढ़ती हुई आवश्यकता में देखते हैं।

वैचारिक व्यवहार का आज तक का इतिहास प्रचार की दो ध्रुवीकृत अवधारणाओं के अस्तित्व का संकेत देता है। यह धुर विरोध प्रयुक्त पद्धतियों की

अंतर्वस्तु तथा रूप-तत्व दोनों में ही स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। भिन्नता का मुख्य बिंदु—जिस पर शेष सब कुछ निर्भर करता है—यह है कि प्रचार की मार्क्सवादी अवधारणा अपना प्रमुख लक्ष्य जनसमूहों की चेतना को विकसित करने को मानती है जबकि पूंजीवादी अवधारणा की आस्था 'जनमानस के युक्तिपूर्वक इस्तेमाल में है। युक्तिपूर्वक इस्तेमाल को यहाँ यथार्थ के विकृत, पक्षपाती विचारों पर आधारित, व्यक्ति के मस्तिष्क एवं व्यवहार पर लागू सामाजिक नियंत्रण के रूप में देखा जाना चाहिए। ऐसा करने के लिए वैयक्तिक चेतना को सामाजिक यथार्थ से पृथक कर दिया जाता है। अपनी कृति द माइंड मैनेजर्स (मस्तिष्क के व्यवस्थापक) में अमरीकी समाजशास्त्री हर्बर्ट शिलर यह स्वीकार करते हैं कि : "....व्यावसायिक समाज में टेलिविज़न कार्यक्रमों तथा फिल्मों का उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक वास्तविकताओं के प्रति सरोकार को बढ़ावा देना नहीं बल्कि कम करना होता है।"[1]

बूर्ज्वा समाजशास्त्रियों के प्रचार-संबंधी विचारों में समस्त भेद-प्रभेदों के बावजूद, गैर-मार्क्सवादी साहित्य में प्रचार की परिभाषाओं के उद्रेक के बावजूद इन सबमें दो समान बुनियादी बिंदु दिखायी पड़ते हैं : 1. ये सब प्रचार को युक्तिपूर्वक इस्तेमाल के कार्यव्यापार के रूप में परिभाषित करते हैं, 2. ये सभी प्रचार को उसके ठोस सामाजिक संदर्भ के बाहर, प्रचार की किस्म को निर्धारित करने वाली उसकी वर्गीय अंतर्वस्तु तथा वर्गीय कार्यभारों के दायरे के बाहर, परीक्षित करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पूंजीवादी सिद्धांतकारों के बीच प्रचार की अत्यंत आडंबरिक परिभाषा यह है जिसके अंतर्गत यह वह "कला है जो लोगों से वह करवा ले जोकि वे स्थिति विशेष से संबंधित सभी तथ्यों की जानकारी होने पर न करें।"[2] प्रचार के बारे में इस दृष्टिकोण से सहमत पश्चिमी समाजशास्त्रियों व राजनीतिशास्त्रियों में प्रमुख हैं हैरल्ड लैसवैल, माल्कोम फुगाग तथा रॉबर्ट मेर्टन। जाहिर है, यह व्याख्या प्रचार के कार्य तथा सूचना के कार्य को पृथक करने तथा एक-दूसरे के विरोध में रखने की इच्छा पर आधारित है।

अमरीकी समाजशास्त्री डिम्स बार्डेन ने अपनी अमर्यादित थ्योरी ([illegible]) में लिखा है : "सूचना एजेंसी का कार्य तथ्य का प्रसार करना है—तथ्य एवं मत (राय) को उपलब्ध कराना, प्रत्येक पर ध्यानपूर्वक लेबल लगाया हुआ हो तथा दूसरे से पृथक कर दिया गया हो। सूचना एजेंसी का उद्देश्य प्रामाणिक तथ्य तथा अधिकतम मत के आधार पर यथासंभव अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को अपने स्वयं के वैयक्तिक मूल्यांकन कर पाने में समर्थ बनाना है।

1. हर्बर्ट शिलर, द माइंड मैनेजर्स, बोस्टन 1973 पृ० 3।
2. माल्कोम फुगाग [illegible] 1969, पृ० 36

"प्रचार एजेंसी का कार्य इसके ठीक विपरीत है : इसका कार्य सूचना देना नहीं बल्कि स्वीकार कराना (क़ायल करना) है। कायल करने के लिए यह ज़रूरी है कि यह मात्र ऐसे तथ्य तथा मत को, तथा तथ्य का जामा पहनाकर मनगढंत को प्रसारित करना चाहिए जोकि लोगों को कर्म करने के लिए अथवा न करने के लिए, जैसा भी इरादा हो—प्रेरित तथा प्रवृत्त कर सके। "यह सोचना कि ये दोनों मक़सद एक ही हैं, या मिलते-जुलते भी हैं, खतरनाक ग़लती होगी।"[1]

सापेक्षिक रूप से, प्रचार की पूंजीवादी अवधारणाएं सामाजिक कार्यकलाप के अन्य रूपों से प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों की दृष्टि से पृथक नहीं हैं बल्कि अपनाई जाने वाली पद्धतियों की दृष्टि से भी पृथक हैं। पश्चिमी समाजशास्त्रियों ने प्रचार की पद्धतियों तथा प्रविधियों पर विशेष ध्यान दिया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रचार का पूंजीवादी समाजशास्त्र भी बटे दस इसकी युक्तिपूर्वक इस्तेमाल करने की प्रविधि का विश्लेषण है। लैसवैल तो वस्तुतः यह स्वीकारोक्ति भी करते हैं : प्रचार को जो हिंसा, बहिष्कार, रिश्वत तथा सामाजिक नियंत्रण के अन्य मिलते-जुलते साधनों के आधार पर मनुष्यों के संचालन से अलग करता है वह इसका उद्देश्य नहीं बल्कि इसकी पद्धति है। प्रचार अपना लक्ष्य—सामूहिक रुझानों का युक्तिपूर्वक संचालन—प्राप्त करने के लिए प्रतीकों पर आश्रित होता है (उनका सहारा लेता है)।"[2]

प्रचार को दिमाग़ पर युक्तिपूर्वक असर करने के रूप में देखने वाले पश्चिमी समाजशास्त्री प्रचार के सामाजिक चरित्र, इसके वैचारिक उद्गम तथा हितों के प्रश्न से होशियारी से कतरा जाते हैं तथा इसके बजाय प्रचार को ऐसी सुस्पष्ट यंत्रविधि के रूप में चित्रित करने के प्रयास करते हैं जिसके भीतर किसी भी तरह के तथा सभी विचार—चाहे उनका कोई भी संदेश अथवा अंतर्वस्तु हो—प्रचलित होने को स्वतंत्र होते हैं। प्रचार के संबंध में यह दृष्टिकोण न केवल एक ख़ास विचारधारा तथा उसके अनुरूप प्रचार की किस्म के विश्लेषण को पूंजीवादी समाजशास्त्रियों की अनिच्छा को छिपाता है बल्कि एक ख़ास किस्म का वैचारिक प्रभाव अर्जित करने—प्रचार के बारे में उसकी अंतर्वस्तु के बावजूद नकारात्मक रवैया पैदा करना, जन-मानस में यह विचार बैठाना कि झूठ तथा मिथ्यावाद पूंजीवादी प्रचार का ही वैधानिक विशेषाधिकार नहीं है बल्कि किसी भी किस्म के प्रचार के स्वाभाविक गुण हैं—की इच्छा को भी छिपाता है।

प्रचार की पूंजीवादी अवधारणाएँ विचारों एवं यथार्थ के अंत:संबंधों के प्रश्न को नज़रंदाज़ करती हैं यानी वस्तुगत सत्य के प्रश्न को ऐसे बहिष्कृत कर दिया जाता है जैसे कि सामाजिक कार्यकलाप के विभाग पर उसका कोई प्रभाव होता ही

1 जे० पी० वार्बर्ग, अनरिटिन ट्रीटी, न्यूयॉर्क, 1946, पृ० 18

2. माइकेल चूकास, प्रोपेगेंडा कम्स ऑफ एज, पृ० 14

न हो। अमरीकी प्रचार विशेषज्ञ आर० एम० सैवर्ट ने उसे यूं प्रस्तुत किया कि महत्वपूर्ण चीज़ यह नहीं है कि जो तुम प्रचारित करते हो उसकी यथार्थ में सगति है या नहीं, महत्वपूर्ण यह कि तुम जिन्हें प्रभावित करना चाहते हो वे विश्वास करके कर्म के लिए प्रस्तुत होते हैं या नहीं।[1]

प्रचार की अंतर्वस्तु के विश्लेषण के प्रति यह नकार संभवतया पूंजीवादी समाजशास्त्र का सबसे विशिष्ट लक्षण है। पश्चिमी सिद्धांतकार साथ ही, प्रचार के परिणामवादी पहलू पर, अपने प्रचार-प्रयत्नों के व्यावहारिक पहलुओं पर विशेष ध्यान देते हैं। इसका यह अर्थ बिलकुल नहीं होता कि पश्चिमी सिद्धांतकार प्रचार की अंतर्वस्तु से कोई सरोकार नहीं रखते। अमरीकी समाजशास्त्री हर्बर्ट शिलर उन पांच मूलभूत मिथकों की सूची प्रस्तुत करते हैं जन-संचार जिनका जनमानस में प्रवेश करा देता है : 1. व्यक्तिवाद तथा व्यक्तिगत वरण का मिथक; 2. समस्त प्रमुख संस्थाओं की तटस्थता का मिथक; 3. अपरिवर्तनशील मानव प्रकृति का मिथक; 4. आधुनिक पूंजीवादी समाज में वर्ग-संघर्ष की अनुपस्थिति का मिथक; तथा 5. माध्यमों के अनेकवाद का मिथक।[2]

आधुनिक पूंजीवाद के प्रबंधकों ने वैचारिक कारकों की बढ़ती हुई भूमिका से जुड़ी प्रक्रियाओं की विचित्र व्याख्या की है। पूंजीवादी समाज के सभी बुनियादी क्षेत्रों में राज्य इजारेदारी प्रवृत्तियां जैसे-जैसे तेज होती हैं वैसे-वैसे ही शासक वर्ग का रुझान इस विचार को स्वीकार करने की ओर बढ़ता है कि प्रचार कार्य को अनाड़ी लोगों के ज़िम्मे नहीं छोड़ा जा सकता। माइकेल चुकास लिखते हैं : "प्रचार का व्यवहार अधिक समय तक प्राक्-वैज्ञानिक अवस्था—यानी कलात्मक अवस्था—में नहीं रह सकता जबकि वे सभी क्षेत्र जिन्होंने इन आधुनिक संघर्षों—आर्थिक, राजनीतिक व अन्य—को उत्पन्न किया है, वैज्ञानिक तरीकों से अधिकाधिक पुनर्संगठित किये जा रहे हैं। देर-सबेर प्रचार को भी विज्ञान के उदीयमान नक्षत्र की कक्षा (कार्य-क्षेत्र) में आकृष्ट कर लिया जायेगा।"[3] इसके कारणों को न केवल सामाजिक-राजनीतिक तर्कों में बल्कि पूंजीवादी राज्यों तथा इजारेदार घरानों द्वारा प्रचार-कार्यों पर किये जाने वाले (पहले से कहीं अधिक) वित्तीय प्रावधानों में भी खोजा जा सकता है।

प्रचार यंत्रविधि के विश्लेषण को इस संकीर्ण परिणामवादी दृष्टिकोण से देख कर ही आधुनिक पूंजीवादी विचारधारा की यह प्रस्थापना समझी जा सकती है जो प्रचार को कला से वैज्ञानिक गतिविधि में रूपांतरित करना अभीष्ट मानती है।

---

1. आर० एम० सैवर्ट, प्रोपेगेंडा, न्यूयार्क, 1938
2. हर्बर्ट शिलर, द माइंड मैनेजर्स, पृ० 8-24
3. माइकेल चुकास, प्रोपेगेंडा कम्स ऑफ एज, पृ० 79

चुकास लिखते हैं : "आधुनिक पूँजीवाद'''हमारे युग की वैज्ञानिक ज़मीन में गहरी जड़ें जमा चुका है, तथा भविष्य का कोई भी विकास इस ज़मीन के संवर्द्धन पर अवलंबित है।"[1] देखना यह है कि इस ज़मीन के संवर्द्धन पर अवलंबित भविष्य के विकास का क्या अर्थ है ? पश्चिमी सिद्धांतकार विज्ञान के रूप में प्रचार की अंतर्वस्तु तथा अर्थ को किस रूप में देखते हैं ? तथा यथार्थ के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रचार द्वारा वश में कर लेने की सार्थकता क्या है ?

चुकास इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि अतीत में प्रचार कमोबेश प्रबोधकों द्वारा प्रस्तावित पद्धतियों की ओर आकृष्ट था तथा उसका चरित्र ज़्यादातर अनाड़ीपन (अदक्षता) का था जबकि आधुनिक दुनिया में "पुरानी समर्थनात्मक गतिविधियों से विचलन देखा जा सकता है। क्योंकि अब सत्य का प्रसार सूचना देने मात्र के लिए नहीं किया जाता। वस्तुतः अब प्रबोधन के माध्यम से समायोजन का सिद्धांत ही अव्यावहारिक हो गया है। अब ज़रूरत लोगों को सूचना देने की नहीं, बल्कि उन्हें युक्ति-चालक करने की है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक नया सिद्धांत पैदा होता है : सफल युक्ति-चालन भ्रम के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। भ्रम उत्पन्न करने के लिए नयी पद्धतियाँ तथा नयी प्रविधियाँ विकसित की जाती हैं तथा एक नये किस्म का प्रोत्साहन—प्रचार-वादी—प्रकट होता है।"[2]

वैज्ञानिक पद्धतियों के अनुसार पूँजीवादी प्रचार के पुनर्संगठन का सार कुल मिलाकर यह है :

1. प्रचार-प्रयत्नों की कारगरता इस बात पर निर्भर है कि प्रचारक लोगों के व्यवहार पर नियंत्रण प्राप्त करने में किस हद तक तथा कितनी कुशलता के साथ सफल हुआ है। यह नियंत्रण जितना अधिक परोक्ष होगा कारगरता उतनी ही अधिक होगी।
2. प्रचार-उपायों का नियोजन तथा क्रियान्वयन सटीक वस्तुपरक वैज्ञानिक आधार पर आश्रित होना चाहिए तथा प्रचारक को पूरी तरह अपक्षपाती पर्यवेक्षक बने रहना चाहिए।
3. प्रचार कार्यकलाप शुरू किये जाने से पूर्व, उस सामाजिक समूह की मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक चारित्रिक विशिष्टताओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन व विश्लेषण किया जाना चाहिए जिसे कि युक्तिपूर्वक संचालित किया जाना है, क्योंकि किसी भी प्रचार-अनुष्ठान की सफलता काफ़ी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि उसे कितनी कुशलता के साथ तैयार किया गया है।

---

1. मारकेल चुकास, प्रोपेगेंडा कम्स ऑफ एज, पृष्ठ 61
2. वही, पृष्ठ 74

पश्चिमी समाजशास्त्री एवं राजनीतिशास्त्री सामजिक मनोविज्ञान तथा विज्ञान के अन्य क्षेत्रों से प्राप्त निष्कर्षों व खोजों पर आधारित प्रचार कार्यकलाप की नयी पद्धतियाँ, प्रविधियाँ तथा शैलियाँ विकसित करने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए अघाते नहीं हैं।

समकालीन प्रक्रिया—जिसमें पूँजीवादी प्रचार को वैज्ञानिक लिबास में सजा कर प्रस्तुत किया जा रहा है—के सटीक तथा त्रुटिहीन मूल्यांकन की आवश्यकता है। ठोस समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा शरीर क्रियावैज्ञानिक शोध से प्राप्त प्रमाणों को पूँजीवादी प्रचार की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने का अर्थ यह क़तई नहीं है कि प्रचार अधिक वस्तुपरक बन गया है। पश्चिमी प्रचारक वैज्ञानिक सिफ़ारिशों का उपयोग अपने प्रचार की अंतर्वस्तु तथा यथार्थ के बीच घनिष्ठ सदनुरूपता क़ायम करने के लिए, इसे अधिक गंभीर सैद्धांतिक अंतर्वस्तु प्रदान करने के लिए नहीं बल्कि तमाम तरह के भ्रम, वास्तविक दुनिया के बारे में मनगढ़ंत दृष्टिकोण पैदा करने तथा उन्हें प्रसारित करने व जनमानस का अंग बनाने के लिए कर रहे हैं। पूँजीवादी प्रचार वैज्ञानिक बनने में तो असफल रहा है, हाँ, अधिक सूक्ष्म तथा परिष्कृत अवश्य हो गया है क्योंकि यह अपने भीमकाय यंत्र (संगठन) की कार्य-शैली को सुधारने पर, अधिकाधिक आध्यात्मिक नशीली वस्तुएँ—भ्रम, विश्वास—पैदा करने पर, मानव मनोविज्ञान के मर्म-स्थलों की पहचान करने पर तथा जन-पूर्वाग्रहों को बढ़ावा देने पर अपना सारा ध्यान केंद्रित करता रहा है।

इस विषय से सम्बन्धित ताज़ा पूँजीवादी साहित्य में प्रचार के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पहलुओं को काफ़ी स्थान दिया जा रहा है। पूँजीवादी प्रचार की प्रमुख विशेषताओं में इसका मनोवैज्ञानिकीकरण है—जिसे यह प्रभावित करना चाहता है वह व्यक्ति का मस्तिष्क नहीं बल्कि उसकी भावनाएँ हैं। यह आवेशन को प्रदर्शित करता है तथा पारम्परिक, विकृत रूढ़ियों तथा तमाम प्रकार के अमरवृत्त भावों तथा पूर्वाग्रहों का दोहन करता है। फिर भी इसका अर्थ यह नहीं है कि मनोवैज्ञानिक प्रभाव वैचारिक प्रभाव को पूरी तरह बाहर कर देता है। पूँजीवादी प्रचार कुल मिलाकर आज भी उतना ही वैचारिक है जितना कि यह दीस, पचास वर्ष पहले था। इसके बावजूद भी ऐसे कई उल्लेखनीय परिवर्तन देखने में आते हैं क्योंकि पूँजीवादी प्रचार की संरचना के साथ-साथ उसकी अन्तर्वस्तु द्वारा वैचारिक विषयों का प्रदर्शन करते हैं। ये प्रक्रियाएँ दिलचस्प इसलिए हैं कि ये प्रचार की वैकल्पिक अन्तर्वस्तु के विकास तथा प्रचार-कार्यकलाप की पद्धतियों तथा रूपों के परिवर्तन कारकों को देखने-समझने में हमें सहायता देते हैं।

पूँजीवादी क्रांति के उपरान्त आरम्भिक पूँजीवादी विचारधारा प्रगतिशील एवं जनवादी विचारधारा थी जिसने [illegible] स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के

नारों के अंतर्गत सामंत-प्रभुओं तथा चर्च के उत्पीड़न के खिलाफ जन-समूहों को उठ खड़े होने को प्रेरित-प्रोत्साहित किया। आरंभिक पूँजीवादी सिद्धान्तकार अपने पाठकगण के मस्तिष्कों तथा उनकी नागरिक भावनाओं को संबोधित करते थे। प्रबोधन के माध्यम से प्रचार का इस्तेमाल समर्थ अस्त्र के रूप में करते थे। यहाँ यह स्मरण कराना आवश्यक है कि पूँजीवाद की स्थापना के बाद पूँजीवादी विचारधारा का प्रगतिशील चरित्र समाप्त हो गया। आज इसके मनपसंद नायकों में प्रमुख है उपभोक्ता, जोकि इसके नये विकसित नारों तथा अपीलों का निशाना बनता है। आज पूँजीवादी प्रचार का लक्ष्य समझाना तथा विश्वास जीतना नहीं है बल्कि ललचाना व फँसाना है।

जो कुछ असल में घटित हुआ है उसका वि-राजनीतिकीकरण अथवा विचारधाराविहीनीकरण से कुछ लेना-देना नहीं है बल्कि वह प्रचार के रूपों तथा पद्धतियों के उस परिवर्तन से जुड़ा हुआ है जोकि विज्ञापन उद्योग द्वारा उपभोक्ता के दिमाग की सफ़ाई की प्रविधियों को उधार लेने का मूर्त रूप है तथा जिसका परिणाम यह होता है कि उपभोक्ता सचेत स्वतंत्र चयन करने में सर्वथा असमर्थ हो जाता है। इसी के साथ, पूँजीवादी प्रचार किसी-न-किसी रूप में उन सभी क्षेत्रों तथा कार्यविधियों को अपने अधीन करने की इच्छा को भी प्रदर्शित कर रहा है जोकि मनुष्यों के मस्तिष्कों तथा उनके मनोविज्ञान को सक्रिय रूप में प्रभावित करते हैं। पूँजीवादी देशों में विज्ञापन के बढ़ते हुए वैचारिकीकरण के स्पष्ट संकेत मिल रहे हैं। आधुनिक पूँजीवादी समाज में विज्ञापन विशिष्ट वस्तुओं तथा सेवाओं को बढ़ावा देने संबंधी अपने पारंपरिक कार्यों को पूरा करने के अलावा नयी आवश्यकताएँ प्रेरित करने तथा कृत्रिम माँग उत्पन्न करने के कार्यों के साथ-साथ साफतौर पर वैचारिक महान कार्यभार से भी जुड़ रहा है और वह है उपभोक्ता से यह मनवाना कि उसकी दुनिया तमाम संभव दुनियाओं से श्रेष्ठ है।

पूँजीवादी प्रचारकों द्वारा मनोवैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक पद्धतियों का उपयोग, भ्रष्ट उपभोक्ता-रुझानों तथा अन्य प्रकार के पूर्वाग्रहों के उत्पन्न करने पर ज़ोर, लुभावनी राजनीतिक नारेबाजी के माध्यम से चेतना के विकृत रूपों के संवर्द्धन पर ज़ोर प्रमुखतया पूँजीवाद के विनाशकारी गहराते वैचारिक संकट के लक्षण हैं, उसकी विकासमान आध्यात्मिक दरिद्रता के लक्षण हैं। पूँजीवादी विचारधारा के संकट का, फिर भी, यह अर्थ नहीं है कि उसने शासक वर्ग के हाथों में अपनी सहायक कार्यक्षमता खो दी है। अब सकारात्मक कार्यक्रम का अभाव, राष्ट्र को एकजुट करने वाले आदर्शों का अभाव का प्रतिकार करने के लिए पूँजीवादी प्रचार अन्य साधनों का सहारा लेता है। तथ्य यह है कि वैचारिक अवधारणाओं का प्रभाव तथा प्रसार उनकी अन्तर्वस्तु पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि विशिष्ट विचारों को प्रसारित करके, विद्यमान पूर्वाग्रहों

का दोहन करने, वास्तविक समस्याओं से चाँदी बनाने में समर्थ एजेंसियों तथा माध्यमों का जाल कितना शक्तिशाली है तथा कितनी दूर तक फैला हुआ है।

मौजूदा पूँजीवादी प्रचार की दोहनकारी संभावनाओं को राज्य इजारेदार पूँजीवाद के समग्र उपायों—अपने तीव्र आंतरिक अंतर्विरोधों का शमन करने, तथा संकट की स्थितियों की धार को ख़त्म करने के लिए विज्ञान एवं अभियांत्रिकी की अद्यतन उपलब्धियों का सहारा लेकर अपनी सामाजिक-राजनीतिक चालबाज़ी को और अधिक सूक्ष्म बनाना तथा तेज़ करना—से काटकर नहीं देखा जा सकता। पूँजीवादी प्रचार के विकास की वर्तमान अवस्था का एक विशिष्ट लक्षण यह है कि प्रचार के मामलों में राज्य इजारेदार पूँजीवाद का हस्तक्षेप निरंतर बढ़ रहा है। "नतीजा यह निकलता है कि समस्त प्रचार-कार्यकलाप पूरी तरह उन लोगों के हाथों में रख दिये जाने चाहिए जोकि राज्य की सुरक्षा के लिए ज़िम्मेदार हैं, यानी इन्हें सरकार के हाथों में सौंप दिया जाना चाहिए।"[1] प्रचार-यंत्र क्रमिक रूप से अधिक केंद्रीकृत बनता जा रहा है क्योंकि इसके संचालन में पूँजीवादी राज्य अधिक प्रत्यक्ष तथा सक्रिय हिस्सा लेने लगा है। 1977 के उत्तरार्द्ध में वैदेशिक नीति के पक्षों से संबंधित सभी अमरीकी प्रचार एजेंसियों को विदेश विभाग के छाते के नीचे ले आया गया।

जैसे-जैसे नये व्यवसायों—नैतिक कार्रवाई अधिकारी तथा प्रचार विश्लेषक—का जन्म हो रहा है वैसे-वैसे ही प्रचार कार्यकलाप अधिक विशिष्टीकृत तथा दस्तावादी बनते जा रहे हैं। विभिन्न प्रचार एजेंसियाँ विशेष सेवाओं में संलीन हो जाती हैं, यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो वैदेशिक नीति तथा ख़ुफ़िया समुदाय के तत्वों से संबंधित प्रचार एजेंसियों के संदर्भ में विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। चुकास लिखते हैं: "चाहे युद्ध से संबंधित हो अथवा शांति से, आज किसी भी बड़े पैमाने पर होने वाली प्रचार कार्रवाई में प्रचारकों के चारों ओर ख़ुफ़ियागीरी से संबंधित पदों पर ऐसे विशेषज्ञों को देखा जा सकता है जिनका एकमात्र कार्य प्रचारकों को विचाराधीन लक्ष्य-समूह से संबंधित अत्यंत सटीक तथा तात्कालीन सूचना उपलब्ध कराना है।"[2]

शासक वर्ग के हाथ में आ जाने पर जन-चेतना गढ़ने (निर्मित करने) का काम प्रभावशाली आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्षमताएँ प्राप्त कर लेता है: प्रचार एजेंसियाँ पूँजीवादी राज्य के समस्त संसाधनों का उपयोग कर सकती हैं तथा इन्हें राजनीतिक कार्रवाइयों—जिनमें दमनकारी कार्रवाइयाँ भी शामिल हैं—तक का समर्थन मिलता है। सामाजिक चेतना के क्षेत्र पर राज्य इजारेदार पूँजीवाद के निर्णायक प्रभाव को कम करके आँकना; जन-माध्यमों को केंद्रीकृत

---

1 [illegible], पृष्ठ 232

2 वही, पृष्ठ 16-17

करके तथा उन पर सारा ज़ोर लगाकर तथा पूंजीवादी विचारों के बाज़ार में अधिक कड़ाई के साथ चयन के माध्यम से, किसी राष्ट्र के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक जीवन के ऊपर राज्य तथा पूंजीवादी निगमों द्वारा कारगर नियंत्रण क़ायम कर पाने की संभावनाओं को कम करके आंकना गलत होगा।

प्रचार के प्रति छलयोजना पर आधारित दृष्टिकोण के चौखटे के भीतर, जैसाकि अब तक का इतिहास बताता है, जन-समूहों की पूरी दिमाग़-सफ़ाई की, तथा उनकी रोजमर्रा की ज़िंदगी में मानव-व्यवहार का वांछित प्रतिरूप घुसेड़ने के अच्छे अवसर उपलब्ध होते हैं। यहां हमें जन-मनोविज्ञान की चंद विशिष्टताओं को दिमाग में रखना चाहिए, ख़ासकर उस सापेक्ष सहजता को, जिससे कि लोग गलत राजनीतिक मूल्यांकनों के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि अततः वे उनको निर्विवाद तथा अकाट्य तथ्य लगने लगते हैं तथा इस प्रकार उनकी चेतना के अन्य पक्षों को भी प्रभावित करते हैं। जब दिमाग-सफ़ाई अग्रिम रूप से कर दी जाये तो लोग फूहड़ मूर्खतापूर्ण वैचारिक कार्रवाइयों को भी स्वीकार कर सकते हैं तथा तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किये गये तथ्यों के आधार पर ऐसे निष्कर्ष निकाल सकते हैं जोकि चिंतन की पारंपरिक रीति के साथ मेल खाएँ। वस्तुतः संबंधित प्रचार अनुष्ठान का लक्ष्य यही सफलता प्राप्त करना होता है।

छल-योजना के स्तर पर प्रचार की क्रियात्मक कारगरता का एक महत्वपूर्ण स्रोत अविकसित चेतना की निष्क्रियता है। "समस्त मृत पीढ़ियों की परंपरा जीवित लोगों के मस्तिष्क पर दुःस्वप्न की तरह असर करती है।"[1] पूंजीवादी समाज के आध्यात्मिक जीवन के बारे में मार्क्स द्वारा पिछली शताब्दी में प्रस्तुत यह विवरण आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। पूंजीवादी प्रचार ने, पूंजीवादी जीवन पद्धति द्वारा स्वतःस्फूर्त ढंग से पैदा किये जाने वाले भ्रमों तथा पूर्वाग्रहों को बनाये रखने के उद्देश्य से, सदा ही हर उस चीज़ का दोहन किया है जो मृत अथवा मरणासन्न है। आज पूंजीवादी प्रचार जो अब स्वतःस्फूर्त ढंग से उत्पन्न पूर्वाग्रहों को बनाये रखने से संतुष्ट नहीं है, जन-माध्यमों का उपयोग करके जन-मानस में जान-बूझकर पहले वाले पूर्वाग्रहों से मिलती-जुलती रुझानों तथा व्यवहार की रूढ़ियाँ ठूँस रहा है ताकि ये स्वतःस्फूर्त रूप से उत्पन्न होने वाले पूर्वाग्रहों के भण्डागार के अनुपूरक हो सकें।

अंत में, छल-योजना पर आधारित प्रचार की संभावनाओं के संदर्भ में हमें एक अन्य कारक की ओर संकेत करना चाहिए। पूंजीवादी विचारधारा के असर के विशिष्ट लक्षणों की समुचित व्याख्या न तो जन-माध्यमों के साधनों के परिमाण

---

1. कार्ल मार्क्स, 'लुई बोनापार्ट की अठारहवीं ब्रूमेर', संकलित रचनाएं तीन खंडों में, खंड 1, पृष्ठ 398

से हो सकती है, न छल-योजना की उन्नत प्रौद्योगिकी से, और न कतिपय परंपराओं तथा पूर्वाग्रहों के अस्तित्व में बने रहने से। अंतिम विश्लेषण में जो कारक निर्णायक महत्व का है वह है पूंजीवादी समाज में सामाजिक संबंधों के रहस्यात्मक चरित्र का विश्लेषण, पूंजी की सत्ता—जोकि स्वामी-सेवक के वास्तविक संबंधों को छिपा लेती है, वर्गों के विरोध को छिपा लेती है तथा चेतना के समक्ष समानता तथा सादृश्य का आभास प्रस्तुत करती है और पूंजीवाद के अंतर्गत मानव-संबंधों को स्थापित करने के सार्वत्रिक नियम के रूप में प्रस्तुत करती है—का विश्लेषण करता है।

पूंजीवादी प्रचार द्वारा इसके कार्यकलाप के छल-योजनामूलक प्रभाव पर जो जोर दिया जाता है उसके कारण गहन सामाजिक कारणों में ढूंढे जा सकते हैं। यह जोर आधुनिक पूंजीवादी विचारधारा के अनुदारवादी सुरक्षात्मक कार्यों से उत्पन्न होता है जिसकी वर्गीय भूमिका तथा कार्य उस सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना तथा सुदृढ़ीकृत करना है जोकि ऐतिहासिक रूप से अपना डंका पीट चुकी है। ये ही वे परिस्थितियां हैं जिनमें सामाजिक प्रगति के वाहक जन-समूहों की चेतना के विकास की वस्तुगत आवश्यकताओं तथा उस व्यवस्था के भीतर सक्रिय मस्तिष्क-प्रबंधन के उद्देश्यों के बीच एक वास्तविक अंतराल उत्पन्न हो जाता है। शासक वर्ग भ्रामक वैचारिक प्रस्थापनाओं के पक्ष में सामाजिक प्रगति की वैज्ञानिक पड़ताल को त्याग कर ही इस अंतराल को पाट सकता (दूर कर सकता) है, पर ऐसा करने के लिए गलत सूचना के पक्ष में वस्तुगत सूचना की क़ीमत चुकानी पड़ती है तथा सामाजिक यथार्थ के प्रति जन-समूहों के चेतन सक्रिय दृष्टिकोण के निर्माण की नीति को अस्वीकार करके लोगों के मस्तिष्कों तथा व्यवहार को छल-योजना द्वारा संचालित करना नीति का दर्जा पा लेता है। विज्ञान एवं विचारधारा, सूचना एवं प्रचार, स्व-शासन तथा चेतना का छलपूर्वक संचालन के बीच विद्यमान विरोध यह संकेत देता है कि सामाजिक संरचना संकटग्रस्त है—यह ऐसा संकट है जो आगे की प्रगति को अवरुद्ध करता है। यह विरोध समाज के आध्यात्मिक जीवन का शाश्वत, स्वाभाविक गुण नहीं है। इस पर विजय प्राप्त की जा सकती है; तथा एक भिन्न सामाजिक-आर्थिक प्रणाली में, भिन्न वैचारिक प्रणाली में एवं मनुष्य की आध्यात्मिक संभावनापूर्ण क्षमताओं के विकास के प्रति भिन्न प्रत्ययात्मक दृष्टिकोण के अंतर्गत—यानी दुनिया के समाजवादी हिस्से में—इस पर पहले से ही विजय प्राप्त की जा रही है।

प्रचार की मार्क्सवादी अवधारणा ने, समाज के वैचारिक जीवन को रूप और ...र देने वाले समाजवादी व्यवहार ने मानव चेतना को छल-योजनामूलक ढंग ... करने के तरीक़ों से परे जाने का रास्ता दिखा दिया है। जन-मानस को सुनिश्चित करने वाली परिस्थितियों का प्रश्न उठाकर प्रचार की

छलमूलक अवधारणा, अंतिम विश्लेषण मे, इसे राजनीतिक सिद्धातो व दृष्टिकोणों, वैचारिक बिंबों, प्रचार के नारों तथा व्यवहारमूलक अनिवार्यताओ के स्थानातरण के औपचारिक तत्वो के विश्लेषण मे घटाकर प्रस्तुत कर देती है तथा प्रचार के कर्त्ता के स्थान पर उसके कर्म को बिठा देती है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी प्रचार की अवधारणा के मूलभूत लक्षण, जो इसके बुनियादी सामाजिक-राजनीतिक तथा दार्शनिक-सैद्धातिक आधारो से उत्पन्न होता है, यह तथ्य है कि वह प्रौद्योगिकी तथा उक्त स्थानांतरण को पूजा की वस्तु नहीं बनाती तथा प्रचार सरणियों के माध्यम से प्रसारित विचारों की वस्तुपरक सत्यता को अग्रिम पंक्ति मे ले आती है। दरअसल, वैचारिक प्रणाली की सत्यतामूलक प्रकृति ही जन-मानस पर उसके प्रभावो की शक्ति तथा दीर्घजीविता को सुनिश्चित करती है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी प्रचार की अवधारणा के मूलभूत नियम समाजवादी समाज के वास्तविक हितो, उसके आगे विकास की संभावनाओ, तथा भविष्य के प्रति उसके खुलेपन से निर्धारित होती हैं। जैसे-जैसे कम्युनिस्ट समाज के निर्माण की जटिलता तथा कार्य-भारो के मापक्रम मे वृद्धि हो रही है तथा समाजवादी समाज की परिपक्वता बढ़ रही है वैसे-वैसे मानव चेतना को विकसित करने तथा सामाजिक यथार्थ के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करने के उपकरण के रूप मे प्रचार की सार्थकता घटने के स्थान पर और अधिक बढ रही है। सोवियत संघ के समाजवादी समाज के विकास की मौजूदा अवस्था के संदर्भ मे यह वास्तविकता और भी उजागर हो रही है जबकि चेतना व वैज्ञानिक ज्ञान का स्तर, उत्पादन तथा सामाजिक जीवन मे कुशलता के ऊपर उठते मानदंड देश की उत्पादक-शक्तियों की प्रगति, सामाजिक संबधो का प्रगतिशील विकास व सामंजस्यता को अधिकाधिक प्रभावित कर रहे हैं।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी पूंजीवादी प्रचार की छलमूलक सार-वस्तु की काट जन-समूहों की राजनीतिक शिक्षा से करती है जिसका उद्देश्य उन्हें इतिहास के चेतन तथा सक्रिय निर्माता के रूप मे बदलना है। समाजवादी प्रचार का यह प्रमुख लक्ष्य है। लेनिन के शब्दो मे: "मजदूरों की पार्टी अपनी सारी आशाएँ जन-समूहों मे केंद्रित करती है···जोकि राजनीतिक दृष्टि से चेतन, अपने अधिकारों तथा अपेक्षाओ के बारे मे स्पष्ट तथा लड़ाकू है।"[1]

जन-समूहो की चेतना ऐतिहासिक प्रगति का अनिवार्य कारक है। इतिहास कौन-सा रास्ता अपनाएगा, समाजवादी समाज के निर्माण की गति तथा सटीक रूप क्या होगा, यह सब उक्त चेतना की सीमा तथा स्तर पर काफी हद तक

1 वी० आई० लेनिन, 'दूमा के चुनावों के बारे में पूंजीवादी पार्टियों तथा मजदूर पार्टी का दृष्टिकोण', संकलित रचनाएँ, खंड 11, पृष्ठ 416

निर्भर करता है। यही कारण है कि जन-समूहों—जिन्हें सब कुछ जानना चाहिए तथा सचेतन रूप से काम करना चाहिए—की राजनीतिक शिक्षा के उपकरण के रूप में तथा जन-समूहों को एकजुट करने, वर्गीय पहचान तथा संगठन के उनके बोध को जाग्रत करने के हथियार के रूप में प्रचार का महत्त्व असंदिग्ध है।

समाजवादी प्रचार सत्य के माध्यम से प्रचार है। लेनिन ने लिखा: "प्रचार तथा आंदोलन में शुद्धता (स्पष्टता) मूलभूत शर्त है। जब हमारे शत्रुओं ने यह कहा तथा स्वीकार किया कि हमने आंदोलन तथा प्रचार विकसित करने में चमत्कार कर दिखाये थे, तो इसे सतही अर्थ में ही नहीं लिया जाता था कि हमारे पास बड़ी संख्या में आंदोलनकारी थे और हमने बड़ी मात्रा में कागज़ का इस्तेमाल किया था, बल्कि इसके वास्तविक अर्थ में लिया जाता था कि उस प्रचार में निहित सत्य सभी के मस्तिष्कों में व्याप्त हो गया था; यह ऐसा सत्य है जिससे बच कर नहीं निकला जा सकता।"[1]

इस तरह, प्रचार को उसके सतही अर्थ में तथा वास्तविक अर्थ में देखा-समझा जा सकता है। प्रचार की मार्क्सवादी अवधारणा वास्तविक अर्थ में एक तर्कसंगत दृष्टिकोण इस मायने में है कि यह वस्तु के स्वायत्त पक्ष की प्रधानता को रेखांकित करती है क्योंकि प्रचार का उद्देश्य जन-समूहों की चेतना को विकसित करना है।

अंतर्वस्तु (वैज्ञानिक विचारधारा का प्रसार) तथा कार्य-भारों (जन-समूहों की राजनीतिक शिक्षा) व विधियों (समझाकर विश्वास जगाना) दोनों ही की दृष्टि से एक तर्कसंगत अवधारणा के रूप में प्रचार की मार्क्सवादी अवधारणा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पहलू को, वस्तुओं की लोक-कल्पना व उन्हें देखने-समझने में अनुभूतियों व भावनाओं को, क़तई नज़रंदाज़ नहीं करती। साथ ही, मनोवैज्ञानिक क्रिया-विधियों की पड़ताल तभी की जा सकती है जबकि यह वर्गीय अर्थ में विशिष्ट सामाजिक अंतर्वस्तु तथा प्रचार की क़िस्म की स्पष्ट समझ पर आधारित हो।

समाजवादी वैचारिक व्यवहार की आवश्यकताओं तथा माँगों की आधार-भूमि से किया जाने वाला सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन किसी भी तरह से उस शास्त्रीय विश्लेषण तक सीमित नहीं होता जोकि चेतना के विभिन्न स्तरों को मात्र व्यक्त तथा वर्णित करता है। इसके विपरीत, चेतना एवं मनोविज्ञान के मार्क्सवादी विश्लेषण के लेनिन द्वारा प्रस्तुत श्रेष्ठ (क्लासिकीय) उदाहरण उन तीव्र समस्याओं के समाधान से पृथक नहीं किये जा सकते जिनका समाधान क्रांति के भविष्य के लिए बहुधा, तथा बाद में युवा सोवियत गणराज्य के

1. वी० आई० लेनिन, 'रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की नौवीं कांग्रेस', संकलित रचनाएँ, खंड 30, पृष्ठ 437

बने रहने (जीवित रहने) व समाजवादी निर्माण की संभावनाओं के लिए निर्णायक महत्त्व का था।

भावनात्मक कारकों के बारे में मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण का उल्लेखनीय तत्त्व उसका सटीक राजनीतिक यथार्थ रहा है। कृत्रिम रूप से भावनाओं को उभारना, संवेगों व वृत्तियों को भड़काने की तो बात ही दूर, वैज्ञानिक अंतर्वस्तु तथा तर्कसंगत अर्थ से मुक्त इस विचारधारा की प्रकृति के प्रतिकूल है। लेनिन ने इस बात को रेखांकित किया कि हमें किसी खास वर्ग, सामाजिक स्तर अथवा समूह द्वारा प्रदर्शित चेतना की अवस्था, तथा खास नारों को स्वीकार करने की उनकी तत्परता की मात्रा की, बिना किसी अवास्तविक महिमा गान के, पहचान करने की सामर्थ्य विकसित करनी चाहिए; उनके पूर्वाग्रहों, भ्रमों तथा गलत धारणाओं की पहचान करने की सामर्थ्य विकसित करनी चाहिए। राजनीति के यथार्थवाद को विचारधारा के यथार्थवाद तथा प्रचार की ईमानदारी से पृथक् नहीं किया जा सकता।

रूस में समाजवादी क्रांति की तैयारियों का संचालन करते हुए लेनिन ने मजदूर वर्ग के विभिन्न दस्तों द्वारा प्रदर्शित चेतना के स्तर के सुनिश्चित सटीक विश्लेषण के शानदार उदाहरण प्रस्तुत किये हैं; नयी आर्थिक नीति लागू किये जाने की पूर्व सध्या को किसानों के मस्तिष्कों में निहित अंतर्विरोधों के, तथा बुद्धिजीवी वर्ग के सामाजिक मनोविज्ञान के विशिष्ट लक्षणों के विश्लेषण के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। लेनिन ने इन प्रश्नों को निरंतर अपनी दृष्टि-परिधि में रखा, निरंतर इनकी समीक्षा की तथा जब-जब स्थिति में अकस्मात् व विषम मोड़ आये, जब-जब नये नारे तथा लड़ाई के नारे प्रस्तुत करने की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने इन प्रश्नों पर और अधिक गंभीरता से गौर किया। नारे प्रस्तुत करने की पृष्ठभूमि के रूप में इन उदाहरणों का उल्लेख करना ही काफी होगा : सारी सत्ता सोवियतों को दो!, समाजवादी जन्मभूमि (पितृभूमि) खतरे में है!, हमें व्यापार करना सीखना होगा!, कम्युनिज्म के विज्ञान में महारत हासिल करो!

जब पार्टी ने लेनिन के ये नारे—हमारा पहला कार्यभार अध्ययन करना है, हमारा दूसरा कार्यभार अध्ययन करना है, हमारा तीसरा कार्यभार अध्ययन करना है, हमें व्यापार करना सीखना होगा!—आगे बढ़ाये तो उस समय कम्युनिस्ट तथा युवक संघों की सदस्यता का छोटा-सा हिस्सा भी इन्हें स्वीकार करने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं था क्योंकि पूँजी पर रेड गार्ड हमला, तथा गृहयुद्ध के मोर्चों पर खुले वर्ग-संघर्ष से मनोवैज्ञानिक रूप से हटकर इन नारों तक आ पाना कोई आसान काम नहीं था। लेनिन तथा उनके नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी को लोगों के मस्तिष्कों में घटित हो रही सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पुनर्सामंजस्य की जटिलता का पूरा बोध था। यह जटिलता शांतिपूर्ण निर्माण के काल में देश के

प्रवेश, इससे उत्पन्न होने वाले नये कार्यभारों तथा उनके अनुरूप नयी विधियाँ तथा नये दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता से पैदा हुई थी। उन्होंने बेहद सघन तथा सुसंगत तरीके से नये नारों की अंतर्वस्तु तथा अर्थ की व्याख्या की तथा उनकी आवश्यकता सिद्ध की तथा उनके क्रियान्वयन की आवश्यकता भी सिद्ध की।

जब लेनिन बिना किसी लाग-लपेट के जन समूहों की मनोदशा को निर्धारित करने की मांग को आगे बढ़ा रहे थे उन्हें बखूबी यह बोध था कि सर्वहारा की तानाशाही के दौर में मजदूर वर्ग का छोटे-से हिस्से का भी सामाजिक प्रश्नों के प्रति निष्क्रियता तथा उदासीनता, और मनोदशा के तीव्र बदलाव की स्थिति में सुरक्षा का कोई बंदोबस्त (बीमा) नहीं था; इसके अलावा एक खतरा यह था ही कि निम्न-पूंजीवादी परिवेश में पूर्वाग्रह का भारी बोझ अभी भी क़ायम था। किंतु लेनिन ने बार-बार रेखांकित किया कि काल्पनिक समाजवाद से मार्क्सवाद इस मायने में भिन्न था कि यह उन लोगों के सक्रिय समर्थन से नये समाज के निर्माण का इरादा रखता है जो गुणवान हैं तथा जो विशेष मानव-तापगृहों में तपकर कुंदन हुए हैं तथा जो दूकानदार की रक्तरंजित, गंदी, लूट-मार से अर्जित पूंजी से उत्पन्न अशुद्ध मानवीय कच्चे माल से नहीं बने हैं।

समाजवादी प्रचार को न केवल चेतना के उजले, खुशनुमा पक्षों का बल्कि उसके कम आकर्षक तथा वीभत्स पक्षों—पूर्वाग्रहों समेत—का भी विवेचन करना होता है। पूंजीवादी प्रचार का कार्यभार इन पूर्वाग्रहों को बनाये रखना होता है, जबकि समाजवादी प्रचार को कहीं ज्यादा दुष्कर कार्यभार से जूझना पड़ता है, और वह है पूर्वाग्रहों पर विजय प्राप्त करना। सोवियत रूस में जन-मानस में से पूर्वाग्रहों को निकालने की प्रक्रिया न केवल मार्क्सवादी राजनीतिक शिक्षा तथा आम शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ी तथा इसने जनसमूहों के सांस्कृतिक व शैक्षणिक स्तर को ऊँचा उठाया, बल्कि प्रमुखतया सक्रिय सामाजिक एवं राजनीतिक कार्य-कलाप में व शहरों तथा गाँवों में नयी जीवन-शैली निर्मित करने के कार्य में जन-समूहों को सम्मिलित व सलग्न करने की दिशा में भी आगे बढ़ी।

प्रचार की मार्क्सवादी अवधारणा—जिसका ध्येय जनसमूहों का राजनीतिक प्रबोधन तथा संगठन और उनके राजनीतिक बोध को विकसित करना होता है—तरीके से अपनी वैचारिक अंतर्वस्तु व संदेश की स्पष्टता को, अपने नारों व आह्वानों की वैज्ञानिक प्रकृति को अत्यंत तर्कपूर्ण तरीके से रेखांकित करती है। प्रचार की मार्क्सवादी अवधारणा में मनोवैज्ञानिक-तकनीकी प्रश्नों को दूसरे स्थान पर खिसका दिया गया है, प्रचार कार्यकलाप के संगठन में इनका चाहे जो भी महत्व हो। प्रचार की मनोवैज्ञानिक व तकनीकी समस्याओं के दायरे में शोध, तथा इस से प्राप्त सुनिश्चित निष्कर्षों तथा सिफ़ारिशों के व्यावहारिक प्रयोग का ध्येय

प्रचार के लक्ष्य पाठकों-श्रोताओं की चेतना मे अपने स्वायत्त पक्षों के समावेश को आसान बनाना, तथा अपने संदेश को निर्दोष व बेलाग बनाना, व अपनी वैचारिक अंतर्वस्तु को अधिक वैज्ञानिक बनाना होता है।

प्रचारकों द्वारा सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक चेतना के अंत.संबंध के रूप मे सूत्रित, मनुष्यों के दैनंदिन हितों के लिए उच्च आदर्शों की प्रासंगिकता की समस्या दरअसल एक बड़ी समस्या का अंग है, जोकि विचारधारा तथा समूचे सामाजिक मनोविज्ञान के संबंधो से संबंधित है।

सामाजिक मनोविज्ञान—विचारधारा, जो सामाजिक चेतना का रूप है, के विपरीत—का चरित्रांकन उसके भारी पंचमेल तथा संरचनात्मक विविधता मे होता है जिसमे तर्कसंगत तथा भावनात्मक और चेतन तथा अचेतन सम्मिलित हैं। चिंतन का एक ऐसा भी संप्रदाय है जिसकी मान्यता है कि शासक वर्ग भावनाओं तथा मनोदशाओं के प्रवाह का सोद्देश्य प्रबंधन नहीं कर सकता क्योंकि यह प्रवाह कड़े नियंत्रण तथा अनुशासन से मुक्त है। हमारा विश्वास है कि यह एक विवादास्पद प्रस्थापना है।

विचारधारा के विपरीत, सामाजिक मनोविज्ञान अधिक चलनशील तथा प्रतिसंवेदी होने के कारण बाहरी प्रभावों की दृष्टि से अधिक लचकदार तथा लाभप्रद निशाना है, क्योंकि इसमे व्याप्त भावनाओं, परिवर्तनशील मनोदशाओं—तीव्र गति से एक मनोदशा से दूसरी मे तथा वापस—की दुनिया काफी अस्थिर है तथा यह ऐसी घटना-क्रिया है जो निम्न पूंजीवादी परिवेश मे अकसर देखने को मिलती है। पूंजीपति वर्ग ने जन-चेतना को वैचारिक रूप से प्रभावित करने के लिए सदा ही मनोदशाओं के उतार-चढ़ावों, उनकी अस्थिरता तथा चंचल प्रकृति का दोहन किया है। शोषक समाज मे पूर्वाग्रहों, गलत धारणाओं, सामाजिक उदासीनता को सदा ही बढ़ावा दिया गया है तथा शासक वर्ग ने प्रतिक्रियावादी राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इनका निरंतर उपयोग किया है।

प्रचार की मार्क्सवादी अवधारणा, जो अपने स्वायत्त पक्षों को सर्वाधिक महत्व देती है, प्रचार कार्यकलाप के बुनियादी उपकरण के रूप मे समझाकर विश्वास उत्पन्न करने (प्रतिपादन) के महत्व की मान्यता से निकलती है, क्योंकि इन कार्यकलापों का मर्म यह है कि इनके लक्ष्य पाठक-श्रोता समर्थित तथा प्रचारित विचारों, ज्ञान तथा आदर्शों की वैज्ञानिक अंतर्वस्तु को आत्मसात कर लें। अतः प्रचार की मार्क्सवादी अवधारणा के लिए केन्द्रीय महत्व की बात यह है समझाकर विश्वास उत्पन्न करने की क्रियाविधि—जो विचारधारा, सामाजिक मनोविज्ञान तथा शिक्षा शास्त्र के संधि-स्थल पर विकसित होती है—की साफ़ समझ ग्रहण की जाये।

राजनीतिक शिक्षा को सांस्कृतिक तथा प्रबोधनकारी कार्यकलाप और जन-

समूहों के सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक स्तर को ऊपर उठाने के काम से पृथक नहीं किया जा सकता तथा इस मायने में शिक्षाशास्त्र भी इसमें सम्मिलित है। लेनिन की यह दृढ़ मान्यता थी कि पार्टी की राजनीतिक गतिविधियों में शिक्षाशास्त्र का तत्व सदा निहित रहेगा। किन्तु साथ ही यह रेखांकित करने में वह सतर्क थे कि राजनीति तथा शिक्षाशास्त्र का घालमेल नहीं किया जाये, ठीक वैसे ही जैसे कि उच्चतर तथा प्राथमिक ज्ञान का घालमेल नहीं किया जा सकता। राजनीति में शिक्षा शास्त्रीय भूमिका सदा सहायक की होती है। समाजवादी समाज में शैक्षणिक कार्यकलाप के लिए निर्णायक महत्व सामाजिक-राजनीतिक तथा वैचारिक कारकों का होता है जिनको निम्नलिखित बुनियादी समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

—स्पष्ट, सुपरिभाषित वर्गीय नजरिये तथा परिणामस्वरूप ऐतिहासिक घटनाओं तथा समकालीन सामाजिक नतीजों के किसी भी मूल्यांकन में संगति तथा सिद्धांतो के प्रति निष्ठा;

—प्रचार के अनुरूप व्यवहार। लेनिन ने इसे राजनीति में निष्कपटता की संज्ञा दी;

—विद्यमान आर्थिक परिस्थितियों, मनुष्यो की जीवन व काम की स्थितियों के लिए प्रस्तुत नारों व नियमो की प्रासंगिकता। दैनंदिन जीवन की वास्तविकताओं से प्रचार का संबंध-विच्छेद, तथा यह संबंध-विच्छेद वैचारिक कार्यकलाप में आत्मपरकता की लाक्षणिक विशिष्टता—चाहे यह थोड़े समय के लिए जनसमूहों को प्रेरित कर दे पर अंततः इसका परिणाम होगा प्रतिकाष्ठा तथा कई वर्षों के लिए मोहभंग;

—जो किया जा चुका है तथा जो अभी भी किया जाना है के बीच की स्पष्ट विभाजन रेखा प्रचार में व्यक्त हो, जो है तथा जो होना चाहिए के सादृश्य की अव्यावहारिकता तथा अस्वीकार्यता। लेनिन ने इसे मार्क्सवादी यथार्थ की क्रांतिकारी द्वंद्वात्मकता की संज्ञा दी;

—चेतना, संस्कृति तथा आत्मानुशासन के वास्तविक स्तर का, तथा आबादी के विभिन्न हिस्सों पर ग्राम पूर्वाग्रहों तथा समाज विरोधी घटनाक्रियाओं के वास्तविक यथार्थवादी मूल्यांकन;

—विद्यमान समस्याओं व दिक्कतों का बयान ही नहीं बल्कि उनके आत्मगत तथा वस्तुगत कारणों का उद्घाटन। यह प्रदर्शित करना महत्त्वपूर्ण है कि वास्तविक जीवन में इन समस्याओं तथा कमियों पर कैसे विजय प्राप्त की जा रही है तथा नकारात्मक घटनाक्रियाओं को दूर करने के लिए क्या किया जा रहा है। सकारात्मक उदाहरण के माध्यम से जनसमूहों को शिक्षित करना।

प्रचार का यथार्थवाद न तो अनुभववाद में और न उसके जमीन से जुड़े हुए

अध्याय ३

उन्नत समाजवादी समाज में वैज्ञानिक विचारधारा

1. वैचारिक कार्यकलाप की नई परिस्थितियां

सामाजिक विकास का हर बड़ा परिवर्तन नये सामाजिक-आर्थिक कार्यभारों तथा अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को उजागर करने के कारण समाजवादी विचारधारा तथा शिक्षा, आंदोलन तथा प्रचार के क्षेत्र में नये कार्यभार लेकर प्रकट होता है। यह एक पूर्णतया तर्कसंगत नतीजा है। वैचारिक कार्य सारतः सृजनात्मक लक्ष्योन्मुख कार्यकलाप होने के कारण देश की अर्थव्यवस्था, विज्ञान, अभियान्त्रिकी, शिक्षा, संस्कृति तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में घटित होने वाले हर परिवर्तन पर ग़ौर करता है। जहां तक आध्यात्मिक कारकों का सवाल है वे सामाजिक प्रगति की गति तेज करने में उत्तरोत्तर सहायक हो रहे हैं जबकि चेतना तथा संघटन की जनसमूहों के बीच भूमिका कम्युनिस्ट निर्माण की बनावट (निर्माण) को विकसित करने की दृष्टि से प्राकृतिक नियम का स्थान ले रही है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम के अनुसार : "कम्युनिज्म की विजय के संघर्ष में, वैचारिक काम उत्तरोत्तर शक्तिशाली कारक बन जाता है। समाज के सदस्यों की चेतना जितनी ऊंची होगी, कम्युनिज्म का भौतिक एवं तकनीकी आधार निर्मित करने में उनके सृजनात्मक कार्यकलाप का उतना ही अधिक योगदान होगा; श्रम के कम्युनिस्ट रूपों तथा जनता के बीच नये संबंधों को विकसित करने में जितनी भूमिका निभायेंगे, कम्युनिज्म का निर्माण उतनी ही तेजी व सफलता के साथ आगे बढ़ेगा।"[1]

---

1. कम्युनिज्म का रास्ता, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 22वीं कांग्रेस, 17-31 अक्तूबर, 1961 के दस्तावेज, मास्को, 1962, पृ० 561

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने कार्यक्रम के इस सिद्धांत से सुसंगत मार्गदर्शन प्राप्त किया है। शिक्षा, विचारधारा तथा वैचारिक काम की समस्याओं की ओर सावधानी पूर्वक ध्यान देना सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की बुनियादी लेनिनवादी परंपरा है। यह ध्यान समाजवादी समाज के जीवन के उस मूलभूत नियम से उत्पन्न होता है जो यह बताता है कि समाजवादी समाज की शक्ति जनसमूहों की चेतना तथा कर्तव्यनिष्ठा में निहित होती है। मनुष्य के पूर्ण तथा संतुलित विकास के बगैर कम्युनिज्म निर्माण का महान लक्ष्य अधूरा ही रहेगा।[1] सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के इस वक्तव्य में वैचारिक काम का पूरा महत्व रेखांकित हुआ है। पार्टी चाहे किन्हीं भी समस्याओं में जूझ रही हो—वैदेशिक नीति, आर्थिक कार्यकलाप, सामाजिक विकास, जातियों (राष्ट्रीयताओं) का प्रश्न, संस्कृति अथवा शिक्षा से संबंधित—अपनी विचारधारा, रीति-रिवाज, नैतिकता तथा जीवन-शैली में उसने हमेशा ही समाजवादी समाज-व्यवस्था में निहित विपुल आध्यात्मिक क्षमताओं से प्रभाव ग्रहण किया है।

वैचारिक कार्य की अंतर्वस्तु तथा उसका विशेष चरित्र एक ओर तो समाज के विकास की खास ऐतिहासिक अवस्था के बेमिसाल प्राचलों से निर्धारित होता है तथा दूसरी ओर दीर्घकालिक लक्ष्यों से होता है।

मार्क्सवादियों ने समाजवाद को ऐसी बनी-बनायी व्यवस्था के रूप में नहीं देखा है जिसे रातों-रात लागू किया जा सके, बल्कि विकास की क्रमिक अवस्थाओं में से गुजर कर विकसित होने वाले एक गतिशील समाज के रूप में देखा है। अपने लेख सोवियत सरकार के तात्कालिक कार्यभार के मूल पाठांतर में लेनिन ने रेखांकित किया था कि उन्नत समाजवादी समाज में[2] विशिष्ट आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक समस्याओं के प्रति नजरिया उससे भिन्न होगा जोकि लेख लिखे जाने के समय था। अतः वह सामाजिक विकास की प्रत्येक अवस्था के गुणात्मक लक्षणों तथा विशिष्टताओं की वैज्ञानिक सटीकता से की जानेवाली पहचान को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते थे। लेनिन ने इस बात को बार-बार दुहराया कि इस प्रकार का सैद्धांतिक विश्लेषण सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यावहारिक कार्यकलाप के वैज्ञानिक आधार को निर्मित करता है तथा कम्युनिस्ट पार्टी को अपनी नीतियों में इस तरह कतर-ब्योंत करनी चाहिए कि वे समाजवाद की आर्थिक परिपक्वता की प्रत्येक क्रमिक अवस्था की अपेक्षाओं के अनुरूप सिद्ध हो सकें।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने वर्तमान अवस्था में एक मूलभूत सैद्धांतिक तथा राजनीतिक निष्कर्ष निकाला है कि सोवियत जनता के आत्म-स्याग के प्रयासों

1. देखें सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज व प्रस्ताव, पृ॰ 87
2. वी॰ आई॰ लेनिन, 'सोवियत सरकार के तात्कालिक कार्य-भार संबंधी लेख का मूल पाठांतर', संकलित रचनाएं, खंड 42, पृ॰ 78

के परिणामस्वरूप पूर्णतया उन्नत समाजवादी समाज का निर्माण हो गया है। उन्नत समाजवाद के ऐतिहासिक स्थान, इसके विशिष्ट लक्षणों तथा कम्युनिज्म में फलीभूत होने की विधियों को नये सोवियत संविधान में लिखा एवं परिभाषित किया गया है। उन्नत समाजवाद को कम्युनिस्ट निर्माण के विकास की गुणात्मक रूप से नयी अवस्था का प्रतीक मानकर ही सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी आर्थिक सामाजिक तथा वैचारिक समस्याओं को मौजूदा तथा दीर्घकालिक कार्यभारों के समाधान से जोड़कर सृजनात्मक तथा सोद्देश्य रूप से विकसित कर रही है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 24वीं तथा 25वीं कांग्रेसों के मसविदों, केंद्रीय समिति के निर्णयों, लियोनिद ब्रेझनेव तथा अन्य सोवियत नेताओं की रपटों, लेखों तथा सार्वजनिक वक्तव्यों में व्यापक वैचारिक अवधारणा निहित है जोकि पूरी तरह उन्नत समाजवादी समाज की सामाजिक परिस्थितियों के उपयुक्त है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी विचारधारा, राजनीतिक तथा शैक्षणिक कार्य से जुड़े प्रश्नों को उन्नत समाजवाद के अंतर्गत सोवियत जनता की सामाजिक चेतना तथा जीवन में घटित दूरगामी परिवर्तनों के आलोक में परीक्षित कर रही है। साथ ही पार्टी के आज के तथा आने वाले कल के कार्यभारों के आलोक में भी। देश की सामाजिक-आर्थिक प्रगति की वर्तमान अवस्था के चरित्र के बारे में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के मूल्यांकन तथा निष्कर्ष वैचारिक कार्य के प्रति बहुआयामी दृष्टिकोण तक ले जाने वाले लाभकारी तथा सार्थक मार्ग की ओर संकेत करते हैं।

नये सोवियत संविधान में वर्णित पूर्णतया उन्नत समाजवादी समाज "ऐसा समाज है जिसकी सगठनात्मक सामर्थ्य, वैचारिक प्रतिबद्धता तथा मेहनतकश जनता—जोकि देशभक्त तथा अंतरराष्ट्रीयतावादी है—की चेतना उच्च होती है।" सोवियत संघ के जीवन के हर क्षेत्र में वैचारिक कारकों की रचनात्मक भूमिका है।

जैसे-जैसे कम्युनिस्ट निर्माण व्यापक और विस्तृत हो रहा है वैसे ही तीव्रगति से विकसित सामाजिक प्रक्रियाओं के वैचारिक पक्ष और भी अधिक महत्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। विज्ञान एवं अभियांत्रिकी की विस्मयकारी प्रगति, सामाजिक-आर्थिक संबंधों के क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन, जीवन व काम की परिस्थितियों तथा भौतिक कल्याण की परिस्थितियों में क्रमिक सुधार, ऊपर उठते हुए सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक स्तर, घर-बाहर (स्वदेश तथा अन्य देशों की) की घटनाओं की बेहतर जानकारी पर आधारित जनता के बोध तथा चेतना के स्तर का विकास, नयी पीढ़ियों का आगमन—ये सब विचारधारा के क्षेत्र को प्रभावित कर रहे हैं इसका सामना ऐसे कार्यभारों तथा समस्याओं से करा रहे हैं जिनके समाधान के लिए [illegible] ध्यान आवश्यक है।

राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र तथा हिस्से में वैचारिक कार्यक्षमता की कार-[illegible] के लिए यह बेहद महत्वपूर्ण है कि इन तीव्र परिवर्तनों पर पूरी तरह और

किया जाय। प्राप्त परिणामों का गभीरतापूर्वक तथा वस्तुपरक ढंग से मूल्यांकन करना, सकारात्मक अनुभव को प्रसारित करने व उसका साधारणीकरण करने में समर्थ होना, समकालीन सरोकारों को ही नही बल्कि भविष्य की संभावनाओं को समझ पाने की सामर्थ्य, बिना समझौता किये कमियों तथा सीमाओं से संघर्ष करना, आत्मालोचना करना—ये सब वे प्रमुख कार्यभार हैं जोकि वैचारिक कार्य के प्रत्येक क्षेत्र मे सोवियत कम्युनिस्टों ने स्वयं के लिए निर्धारित किये हैं।

पूर्णतया उन्नत समाजवादी समाज वैचारिक कार्यकलाप के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करता है। देश के भौतिक एव तकनीकी आधार के विकास की उन्नत अवस्था के अलावा, समाजवादी सामाजिक संबंधों की ऊँचे दर्जे की परिपक्वता, समाज की सामाजिक एकरूपता, जनता का बढ़ा हुआ सामाजिक-राजनीतिक अनुभव—जिसमे समाजवादी जनवाद, तथा समाज के संचालन, राज्य के काम-काज तथा सामूहिक कार्यशालाओं के संचालन मे भागीदारी के परिणाम-स्वरूप क्रमिक वृद्धि हुई है—आदि भी इसमे (परिस्थितियो मे) सन्निहित हैं।

नये सोवियत संविधान पर देशव्यापी चर्चा, जिसमे सोवियत संघ की समूची वयस्क आबादी ने भाग लिया, ने जनसमूहों की शिक्षा के लिए एक अच्छे विद्यालय की भूमिका निभायी। सोवियत संघ के संविधान के मसविदे पर मुक्त, व्यापक तथा गंभीर चर्चा ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति—मजदूर, किसान, बुद्धि-जीवी—स्वयं को देश का मालिक समझता है; यह वह भावना थी जोकि पहली बार अक्तूबर क्रांति के समय पैदा हुई थी तथा जिसे सोवियत संघ में समाजवाद की विजय ने पुख्ता किया था।

जनसमूहों के सामाजिक अनुभव को गहरा तथा व्यापक बनाने के हर नये क़दम का अर्थ होता है उनकी राजनीतिक तथा वैचारिक शिक्षा की दिशा मे नया अग्रगामी क़दम। अतः अक्तूबर क्रांति की 60वी वर्षगाँठ मनाने की तैयारियों तथा आयोजन के दौरान व सोवियत संविधान के मसविदे पर चर्चा के दौरान लाखों-लाख सोवियत जनता द्वारा अर्जित अनुभव-संपदा को वैचारिक अर्थ मे अनावश्यक महत्व देना असंभव है। सोवियत जीवन के सभी पक्ष, सोवियत जनता के दैनंदिन जीवन को प्रभावित करने वाले सभी छोटे-बड़े प्रश्न इस प्रक्रिया के अंग थे। सोवियत समाजवादी जनतंत्र के इतिहास में भी यह इस मायने मे अभूतपूर्व घटना थी कि चर्चा की गहराई तथा व्यापकता, व इसमे शरीक होकर अपना योगदान करने वालों की संख्या स्तंभित करने वाली थी।

अक्तूबर समाजवादी क्रांति की शानदार उपलब्धियों की विस्तृत समीक्षा, सोवियत सरकार के साठ से अधिक वर्ष के शासन के दौरान अर्जित गौरवशाली उपलब्धियों के इतिहास का सार, तथा सोवियत संघ मे समाजवाद की सफलताओं तथा विजयों के संवैधानिक निरूपण की व्यापक वैचारिक तथा शैक्षणिक सार्थकता

है क्योंकि ये सभी तथ्य सोवियत जनता के मन में अपनी मातृभूमि के प्रति गर्व का भाव पैदा करते हैं, सोवियत राष्ट्रभक्ति तथा सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद के भाव उत्पन्न करते हैं तथा प्रत्येक सोवियत नागरिक को कम्युनिस्ट निर्माण के साझे लक्ष्य के प्रति अधिक दायित्व-बोध से संपन्न बनाते हैं।

शैक्षणिक कार्य की अधिकाधिक सफलता के लिए यह आवश्यक है कि एक शैक्षिक प्रयास में वैचारिक प्रभाव के सभी रूपों—मेहनतकश जनता का निरंतर विकसित होता हुआ सामाजिक एवं राजनीतिक अनुभव—को एकीकृत कर दिया जाय। इस अनुभव पर समूचे वैचारिक तथा शैक्षणिक कार्य की निर्भरता जितनी अधिक होगी, यह आयोजन उतना ही अधिक सफल होगा।

नये सोवियत संविधान—जिसका उद्देश्य समाजवादी जनवाद को नये आयाम देना है—को अंगीकार किए जाने से इस काम के संदर्भ में बड़ी संभावनाओं के द्वार खुले हैं। यहाँ समाजवादी समाज की राजनीतिक व्यवस्था के भीतर क्रियाशील सामूहिक की भूमिका तथा सार्थकता के संवैधानिक निरूपण तथा अधिकारों, दायित्वों तथा कार्यभारों—जिनमें शैक्षणिक कार्य-भारों का प्रमुख उल्लेख है—की संवैधानिक परिभाषा के मूलभूत महत्व की ओर इशारा करना ही काफी होगा।

सोवियत जनवाद जितना व्यापक और गहरा होगा, जनसमूहों का सामाजिक, राजनीतिक तथा उत्पादन अनुभव भी उतना ही अधिक विविधतापूर्ण तथा समृद्ध होगा, तथा उसी अनुपात में सोवियत समाज में सक्रिय सामाजिक प्रक्रियाओं पर वैचारिक प्रभाव को सघन करने के अनुकूल परिस्थितियाँ भी उतनी ही अधिक होंगी।

सोवियत जनता के सामाजिक अनुभव में बढ़ोतरी के साथ ही, उनकी चेतना, संगठन व संस्कृति के स्तर में भी बेहद बढ़ोतरी हुई है। ये कारक जनसमूहों को मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा को आत्मसात करने में सहायता देने के बेहतर मौके प्रदान करते हैं क्योंकि ये उसकी तात्विक रूप से वैज्ञानिक प्रकृति पर आश्रित हैं। वैचारिक कार्य-प्रसार के अनुकूल सामाजिक-राजनीतिक वातावरण निर्मित करने का अर्थ यह नहीं है कि इसकी अंतर्वस्तु अथवा चरित्र को सरलीकृत किया जाय, चूँकि इसके लक्ष्य तथा कार्यभार अधिक विविधतापूर्ण तथा महत्वाकांक्षी बनते जा रहे हैं, इसके रूपों तथा पद्धतियों से की जाने वाली अपेक्षाएँ (माँगें) भी परिवर्तित हो रही हैं, अर्थात इसकी कारगरता की कसौटियाँ तथा मानदंड अधिक सटीक होते जा रहे हैं।

व्यवहारिक समस्याओं—वे चाहे अर्थशास्त्र, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक प्रगति के क्षेत्र की हों अथवा सामाजिक मुद्दों से जुड़ी हुई हों—के समाधान के लिए, समस्यामूलक दृष्टिकोण (सिस्टम एप्रोच) का उपयोग उन्नत समाजवादी

समाज की लाक्षणिक विशिष्टता है। सोवियत संघ के वैचारिक तथा आध्यात्मि
क्षेत्रों में यह दृष्टिकोण मानक बन गया है। विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के विक
की प्रचलित प्रवृत्तियाँ, सामाजिक संबंधों के विकास की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—ये
ऐसे लोगों की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं जिनका पूर्ण, संतुलित सामा
वैचारिक, राजनीतिक, नैतिक तथा व्यवसाय संबंधी विकास हो चुका है। उ
समाजवादी समाज में ये दार्शनिक सच्चाइयाँ बेहद महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ
गयी हैं तथा समाज की इससे आगे की सघन प्रगति तब तक असंभव है जब तक
ये पूर्णतया पूरी नहीं हो जाती।

लियोनिद ब्रेझनेव ने 1976 में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 2
कांग्रेस में अपनी रपट में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के बारे में एक व्या
प्रणालीमूलक दृष्टिकोण विकसित तथा क्रियान्वित किया। इस रपट में कम्युनि
के भौतिक तथा तकनीकी आधार को विकसित करने, सामाजिक संबंधों
सुधारने तथा समाजवादी जीवन-शैली विकसित करने तथा नये मनुष्य
निर्माण करने से संबंधित मुद्दे कम्युनिस्ट निर्माण की एकल प्रक्रिया के एकता
तथा संपूर्ण कारक हैं।

25वीं कांग्रेस में प्रस्तुत सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय स
के प्रतिवेदन में वैचारिक कार्यकलाप की प्रमुख समस्याओं—जैसे, वैचा
शैक्षणिक एवं संगठनात्मक काम की एकता, शिक्षा के ठोस कार्यभारों तथा दी
कालिक लक्ष्यों की एकता—का सैद्धांतिक विवेचन सन्निहित है। इसमें देशभ
पूर्ण तथा अंतर्राष्ट्रीयतावादी शिक्षा की अविसर्जनीय तथा चिरस्थायी सहयोज
को, राजनीतिक, नैतिक तथा श्रमिक शिक्षा को एकाकार करने के लिए सम
वादी स्पर्धा को, समाजवादी जीवन पद्धति में भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य
अन्योन्याश्रय को तथा कम्युनिस्ट नैतिकता के सामान्य मानदंडों की एकता
रेखांकित किया गया है।

विचारधारा कर्मियों के सामने जो नये कार्यभार हैं उनमें सामाजिक-आ
व शैक्षणिक समस्याओं के समाधान में वैचारिक कारकों को कुशलतापूर्वक समा
करना, सभी दिशाओं तथा क्षेत्रों में सूचना सेवाओं में सुधार करना, वैचा
कार्यकलाप के सभी रूपों को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के लिए प्रास
बनाना, वैचारिक कार्य के संदेश को सुस्पष्ट बनाना तथा कारगर तर्कों से उसे
करना, लोगों की वास्तविक शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यक
पर और अधिक व्यापक विचार करना, जनसमूहों को राजनीतिक दृष्टि से शि
करने की कला में महारत हासिल करना तथा इस विषय में लेनिन की कुश
को अपना मॉडल मानकर आगे बढ़ना, आदि प्रमुख हैं।

इन समस्याओं के कथन तथा विवेचन में देश के सार्वजनिक जीवन में वि

धारा की सामाजिक भूमिका का तीव्रीकरण निहित है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने वैचारिक काम की कारगरता को इसकी सैद्धांतिक अंतर्वस्तु को गहनता प्रदान करने, इसके तथा देश के आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन के बीच की कड़ी को सुदृढ़ बनाने, समस्त उपलब्ध संसाधनों तथा पद्धतियों का सोद्देश्य व लक्ष्योन्मुखी उपयोग करने, वैचारिक तथा प्रचारात्मक कार्रवाइयों (जब इन्हें नतीजों की दृष्टि से देखा जाये न कि किये गये उपायों की गणितीय गणना की दृष्टि से) के मूल्यांकन में स्वायत्त दृष्टिकोण अपनाने पर प्रत्यक्षतया निर्भर बना दिया।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने वैचारिक काम की मौजूदा आवश्यकताओं के आलोक में शैक्षणिक कार्यकलाप के संघटन के प्रति समग्र दृष्टिकोण की समस्या की पूर्ण परीक्षा की। आज मानव-व्यक्तित्व के सामने रखी जाने वाली माँगें न केवल अधिक सटीकता प्राप्त कर रही हैं बल्कि ये अधिक विविधरूपा तथा परिवर्तनशील भी हो रही हैं तथा शिक्षा के एक पक्ष की भी बलि देना स्वीकार्य नहीं है। इसलिए समस्त वैचारिक प्रयत्नों का अधिकाधिक संकेंद्रण प्राप्त करना, जन-समुदायों की शिक्षा को व्यापक दायरे में चलाना—ताकि यह मानव चरित्र एवं व्यक्तित्व को प्रभावित करने/ढालने वाले सभी क्षेत्रों (काम करने के स्थान, परिवार, विश्राम, मनोरंजन—व्यापक अर्थ में दैनंदिन जीवन) को छू सके—अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वाभाविक ही है कि आज कम्युनिस्ट शिक्षा के समस्त बुनियादी पहलुओं—वैचारिक, राजनीतिक, श्रम संबंधी, तथा नैतिक—की एकता के प्रश्न ने अतिरिक्त तात्कालिकता धारण कर ली है।

सोवियत संघ ने आज 1917 के बाद कभी की भी तुलना में शिक्षा के उपकरणों की सबसे बड़ी आयुधशाला तैयार कर ली है। नये वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक अवसर उपलब्ध हो गये हैं तथा यह तथ्य समस्त वैचारिक साधनों के बेहतर समन्वयन की तथा उनके अधिक तर्कसंगत तथा कारगर उपयोग की मांग करता है। किन्तु कारगर रूप से उसी को समन्वित किया जा सकता है जोकि सही मायने में विभेदीकृत है तथा अपने सुनिश्चित कार्यभारों को बखूबी अंजाम देता है। इसलिए टेलीविजन, रेडियो, प्रेस, व्याख्यानों के माध्यम से प्रचार, तथा जनसमूहों की राजनीतिक शिक्षा द्वारा प्रस्तुत साधनों तथा अवसरों का पूरा उपयोग करना आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा के क्षेत्र में समान एकीकृत कार्यभारों को शिक्षा-सुविधाओं की प्रत्येक उपलब्ध किस्म के सुनिश्चित साधनों तथा कार्यों के इष्टतम उपयोग के माध्यम से ही सफलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है। इस अपेक्षा पर जोर देना इसलिए जरूरी है कि शिक्षा की समस्या के व्यापक समाधान का यह अर्थ कतई नहीं है कि प्रत्येक तथा सभी व्यक्ति सभी तथा प्रत्येक कार्यक्रम को हाथ में ले लें तथा सुलझाने लगें, बल्कि यह है कि

प्रत्येक प्रचारक तथा विचारधाराशास्त्री अपने विशिष्ट काम के प्रति स्वयं आर्थि
बोध प्रदर्शित करे तथा अपना काम अच्छी तरह करने पर ध्यान केंद्रित वै
शिक्षा के प्रति व्यापक प्रणालीमूलक दृष्टिकोण की यह एक अन्य बुनियादी अ
है।

वैचारिक कार्यकलाप के प्रति व्यापक दृष्टिकोण विभिन्न आर्थिक, वैज्ञा
एवं प्रौद्योगिक, सामाजिक व आध्यात्मिक कारकों के साथ अपने घनिष्ठ संबंध
तथा इनके पारस्परिक संबंध पर विचार करने को आवश्यक मानता है।
कारकों में से प्रत्येक के अपने खुद के वैचारिक परिणाम होते हैं तथा इनमें प्र
चेतना के क्षेत्र को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करता है।

2. आर्थिक विकास के वैचारिक पक्ष

उन्नत समाजवादी समाज सामाजिक-आर्थिक तथा वैचारिक कारकों, ि
तथा आर्थिक प्रबंधन के बीच के अंतर्भूत अंतःसंबंध को अधिक पूर्णता एवं स्प
के साथ प्रदर्शित करता है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति ने वैचारिक का
क्षेत्र में नयी संभावनाएँ, नये परिदृश्य खोल दिये हैं।

विज्ञान, अभियांत्रिकी तथा वैचारिक कार्यकलाप के पारस्परिक के संबं
उन मांगों के प्रिज्म के माध्यम से तर्कसंगत रूप से समझा जा सकता है व
महत्व को पहचाना जा सकता है जिन्हें वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति म
व्यक्तित्व से, मजदूर से करती है। विज्ञान एवं अभियांत्रिकी की विस्फोटक प्र
तथा विज्ञान पर अपनी तरह से उत्पादक शक्ति के रूप में परिवर्तन मानवीय
पर आधुनिक ज्ञान के उत्पादन, व्यावसायिक निपुणता तथा सांस्कृतिक मानद
उच्चस्तर, संचालनों की सटीकता तथा तेज गति की मांग करते हैं तथा वि
सब मिलकर काम करने वाले मनुष्य से नैतिक विश्वसनीयता, उच्च संघटन
उत्तरदायित्व तथा निष्ठा की, तथा कर्मियों के दलों द्वारा किये जाने वाले सच
के घनिष्ठ समन्वय की शर्त रखते हैं। इस प्रकार हमारा सामना उत्पा
सामाजिक-आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक तथा मानवीय कारकों के
प्रतिरूप से होता है, ये सभी कारक वैचारिक दृष्टि से मनुष्य-उत्पादन की स
को नया आयाम देते हैं।

1960 के दशक के मध्य के सोवियत दार्शनिक साहित्य में इस भ्रांत ध
की बहुधा आलोचना की गयी कि वैचारिक काम के परिणामों को उसी तरा
तौला जा सकता है जिसका उपयोग आर्थिक कार्यकलाप के नतीजों के मूल्
के लिए भी किया जाता है। यह त्रुटिपूर्ण दोमिस विचारधारा तथा आर्थिक
कलाप के जटिल अंतःसंबंधों को अतिसरलीकृत करके वैचारिक काम की कार
का एकांगी मूल्यांकन प्रस्तुत करने में ही समर्थ थी। दार्शनिक साहित्य

घटनाओं की सोवियत कम्युनिस्टों ने सिद्धातनिष्ठ आलोचना की है तथा भविष्य
लिए आवश्यक व्यावहारिक निष्कर्ष निकाले हैं। जैसाकि लियोनिद ब्रेझनेव
सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस मे दिये गये अपने भाषण
रेखांकित किया : "इस संदर्भ मे 20वीं कांग्रेस—जिसकी 20वीं वर्षगांठ आने
वाली है—के निर्णय बेहद महत्वपूर्ण थे। अक्तूबर 1964 मे सपन्न केंद्रीय समि
के पूर्ण अधिवेशन तथा पार्टी की 23वीं तथा 24वीं कांग्रेसों के निर्णयों ने पा
जीवन के लेनिनवादी नियमों तथा सिद्धांतों को विकसित तथा सुदृढ़ करने में प्रमु
भूमिका का निर्वाह किया था। आंतर-पार्टी जनवाद का सुसगत विकास तथा पा
के प्रत्येक सदस्य से बढ़ती हुई अपेक्षा—ये लेनिनवादी सिद्धात अतीत की वस्तु मा
हैं। हमारे समय की पार्टी के विकास का भी यही आधार है।"[1] जाहिर ही है
पार्टी के भीतर जो स्थिति निर्मित हुई है, आंतर-पार्टी जीवन के विकास का
स्तर बना है, वह समूचे सोवियत समाज के वातावरण को निर्धारित करती है
हमें यह विश्वास है कि यह वातावरण समग्र वैचारिक कार्यकलाप की कारगरता
विश्वसनीय सामान्य सूचक बन सकता है। साथ ही समाज में व्याप्त स्वास्थ
कर सामाजिक, राजनीतिक एवं नैतिक वातावरण प्रचार व राजनीतिक शिक्षा
जन-विश्वास तथा आस्था की गारंटी करता है।

पिछले कुछ वर्षों मे वैचारिक कार्यकलाप की कारगरता के अध्ययन की दि
मे काफी सफल काम किया गया है, किन्हीं रचनाओं में प्रस्तावित एकांगी विचा
पर विजय प्राप्त की जा चुकी है तथा इस क्षेत्र में और अधिक शोध की न
संभावनाओं की रूप-रेखा तैयार कर ली गयी है। साथ ही हमारा यह भी विश्वा
है कि वह दृष्टि, जोकि वैचारिक तथा शैक्षणिक काम की कारगरता तथा सफल
को तथाकथित सामान्य चेतना एवं व्यवहार तथा वैज्ञानिक चेतना के सादृश्य
मात्रा के आधार पर ही मूल्यांकन करती है, विवादास्पद है तथा और अधिक च
की मांग करती है।

इस आम प्रस्तावना के आधार पर कभी-कभी यह निष्कर्ष निकाल लि
जाता है कि वैचारिक शिक्षा की सभी किस्मों तथा साधनों की कारगरता
सर्वाधिक सार्वत्रिक कसौटी ज्ञान है; यानी बात यदि सौंदर्यशास्त्रीय शिक्षा की
तो यह कसौटी सौंदर्यशास्त्रीय ज्ञान से निर्मित होगी; तथा अनीश्वरवादी शिक्षा
क्षेत्र में वैज्ञानिक अनीश्वरवाद के मूलभूत तत्वों का ज्ञान इस कसौटी को निर्मि
करेगा; श्रमिक शिक्षा की बात चलेगी तो मानव समाज में श्रम की भूमिका संब
मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत के सहोपन में वैचारिक आस्था वह कसौ
होगी।

---

1. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज तथा प्रस्ताव, पृ० 78

ऐसा लगता है कि यह दृष्टिकोण—जोकि वैचारिक कार्यकलाप के परिणामे को ज्ञान में, चेतना के कारकों मे घटाकर रख देता है—व्यावहारिक चेतना को का करके आँकने से उत्पन्न होता है तथा इस प्रकार समस्या के सार-तत्व को सामान्य चेतना को खींचतान कर वैज्ञानिक चेतना के स्तर तक ले जाने की क्रिया मे घट देता है।

वैज्ञानिक ज्ञान का महत्व जो भी हो, शिक्षा का सार-तत्व तथा उसके परिणाम व्यावहारिक कार्य-व्यापार में ही सन्निहित होते हैं।

प्रसिद्ध सोवियत विद्वान ए० एन० लियंत्येव ने लिखा : "शब्दों को याद क लेना, उनके अर्थ को समझ लेना तथा उनमें व्यक्त विचारों व भावनाओं को समझ लेना काफ़ी नहीं है। जो महत्वपूर्ण है वह यह कि ये विचार तथा भावना संबंधित व्यक्ति के व्यक्तित्व को निर्मित करने में योगदान करती हैं। यह सीधा सादा विचार उस अत्यंत महत्वपूर्ण निष्कर्ष को व्यक्त करता है जोकि मनुष्यों को शिक्षित करने के जीवंत अनुभव से प्रेरित व प्रोत्साहित है। इसलिए इस विचार को अंगीकार करने व समझने में उन लोगों को कोई कठिनाई नहीं होती जो विद्यालय, शिक्षा तथा लालन-पालन को दोब्रोल्युबोव, उशिंस्की तथा तॉल्सतॉय की भाँति ही देखते हैं यानी जिस दृष्टि में आग्रह इस बात पर है कि हम किस प्रकार का व्यक्ति पाना चाहते हैं न कि इस पर कि हम व्यक्ति में क्या ज्ञान, विचार अथवा भावनाएँ देखना चाहेंगे।

"इन दोनों दृष्टियों का अंतर शब्दों की बाज़ीगरी क़तई नहीं है, इसके निर्णायक महत्व को पूरी तरह समझना आवश्यक है।"

विचारधारा की मार्क्सवादी-लेनिनवादी अवधारणा ने इस दृष्टि को विरासत में प्राप्त किया व विकसित किया है। यह शिक्षा को जीवंत व्यवहार-प्रक्रिया, कर्मनिष्ठ शिक्षा शास्त्रीय चिंतन की जनवादी परम्पराओं पर निर्भर करती है तथा इसने शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र मे इस दृष्टि को लागू किया है। ठोस कार्यकलाप, जीवन के प्रति व्यक्ति का सकारात्मक रुख तथा दैनंदिन व्यवहार के मानदंड के रूप में कथनी और करनी की एकता आदि कम्युनिस्ट शिक्षा की सफलता के सुनि-श्चित पैमाने का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उन्नत समाजवाद के अंतर्गत सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के समाधान के प्रसंग में समाज के अधिकाधिक वैचारिक साधनों को काम में लगाने में आर्थिक निर्माण की वास्तविकताओं के क्रम में आंदोलन एवं प्रचार की प्रासंगिकता संबंधी लेनिन के विचारों को विशेष महत्व तथा सार्थकता मिली है। वैचारिक कार्यकलाप तथा आर्थिक परिणामों के बीच की कड़ी की अति सामान्यीकृत समझ की अस्वीकार को [illegible] यह मानना उचित होगा कि आर्थिक क्षेत्र, आर्थिक प्रबंधन और उत्पादन प्रचार एवं आंदोलन संबंधी कार्यकलाप के सहायक अंग हैं,

प्रमुख नहीं। जो कोई भी इस तरह का निष्कर्ष निकालता है वह दूसरी अति का शिकार होकर विचारधारा एवं अर्थशास्त्र, शिक्षा एवं आर्थिक प्रबंधन के अंतः-संबंध के लेनिनवादी सिद्धांत का हनन ही करता है।

अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के पश्चात् लेनिन ने प्रचार एवं राजनीतिक शिक्षा के कार्यभारों के प्रश्न को नये ढंग से रखा ताकि शांतिकालीन आर्थिक निर्माण में देश के संक्रमण के संबंध में उनकी अंतर्वस्तु में परिवर्तन किया जा सके। अपने प्रसिद्ध लेख **एक शानदार शुरुआत** में लेनिन ने रेखांकित किया : "जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता है एक अन्य कार्यभार अपरिहार्य रूप से तथा कहीं अधिक आदेशात्मकता के साथ आगे निकल कर आ जाता है, यानी सकारात्मक कम्युनिस्ट निर्माण, नये आर्थिक संबंधों के सृजन, नये समाज के निर्माण से जुड़ा अधिक महत्वपूर्ण कार्यभार।"[1] इस विचार को विकसित करते हुए लेनिन ने लिखा कि पूंजीवादी प्रचार "सर्वहारा की तानाशाही के और भी अधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य---इसके शैक्षणिक लक्ष्य---को कम महत्व देने का हरसंभव प्रयास करता है, जबकि यह लक्ष्य खासकर रूस में बेहद अर्थवान है जहाँ सर्वहारा कुल आबादी का एक छोटा-सा हिस्सा ही है। तो भी रूस में इस लक्ष्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि हमें जनसमूह को समाजवाद के निर्माण के लिए तैयार करना है।"[2]

लेनिन ने ऐसी कई मूलभूत प्रस्तावनाएँ प्रस्तुत की जिन्होंने समाजवादी निर्माण की परिस्थितियों में प्रचार तथा शिक्षा के कार्यभारों के प्रति पार्टी की नयी दृष्टि को सूचित किया। इन प्रस्तावनाओं में **रीतिबद्ध प्रचार से नये क़िस्म के प्रचार में पार्टी के संक्रमण को देखा जा सकता है, यह नये क़िस्म का प्रचार नये ऐतिहासिक काल की अपेक्षाओं तथा कार्यभारों के अनुरूप था।**

समाजवाद के अंतर्गत जितने भर में मुख्य नीति आर्थिक निर्माण तथा आर्थिक रणनीति होती है, "···आंदोलन एवं प्रचार ऐसी भूमिका निभायेंगे जोकि विस्मयकारी तथा निरंतर बढ़ते हुए महत्व से भरी होगी।"[3] नये समाज के जीवन में आंदोलन एवं प्रचार के स्थान एवं भूमिका की लेनिन द्वारा प्रस्तुत परिभाषा केवल किसी खास स्थिति अथवा छोटी कालावधि भर ही लागू नहीं होती, बल्कि अपने चरम लक्ष्य---कम्युनिस्ट समाज का निर्माण---के क्रियान्वयन से संबंधित मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी के वैचारिक कार्यकलाप की अंतर्वस्तु की समझ के लिए भी यह बेहद महत्वपूर्ण सिद्ध होती है।

समस्या के इस कथन में समाजवादी प्रचार तथा राजनीतिक शिक्षा की मार्क्स-

1. व्ला॰ इ॰ लेनिन, 'एक शानदार शुरुआत', संकलित रचनाएं, खंड 29, पृ॰ 419
2. व्ला॰ इ॰ लेनिन, 'गुबेर्निया के राजनीतिक शिक्षाकर्मियों के अखिल रूसी अधिवेशन, 3 नवंबर 1920, में दिया गया भाषण, संकलित रचनाएं', खंड 31, पृ॰ 364
3. वही, पृ॰ 372

वादी व्याख्या को एक नया योगदान निहित था। समस्या के बारे में इस दृष्टिकोण को परिस्थितियों के एक खास समुच्चय ने बढ़ावा दिया, जिनमें निम्नलिखित परिस्थितियाँ भी सम्मिलित थी :

—"लेनिन द्वारा बारंबार रेखांकित, मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धांतों में प्रमुख यह है कि "ऐतिहासिक घटनाओं का क्षेत्र तथा सीमा (व्यापकता) जितना अधिक बड़ा होगा, उनमें भाग लेने वाले लोगों की संख्या भी उतनी ही अधिक होगी, तथा इसके विपरीत, जितना गहरा परिवर्तन हम लाना चाहते हैं, इसके प्रति उतनी ही अधिक रुचि तथा समझदारीपूर्ण रुख हमें जगाना होगा तथा लाखों लाख लोगों को समझाकर यह विश्वास दिलाना होगा कि यह आवश्यक है;"[1]

—पूंजीवादी विश्व-दृष्टि मे राजनीति एवं विचारधारा को अर्थशास्त्र से पृथक कर दिया गया था; समाजवादी समाज मे दोनों ही मजदूर वर्ग की रुचि (सलग्नता) का विषय बन जाते हैं, संपूर्ण जनता का साझा लक्ष्य बन जाते हैं :

—"कम्युनिज्म के पक्ष में सारा प्रचार इस प्रकार किया जाये कि वह राज्य के विकास के व्यावहारिक मार्ग-दर्शन का रूप ले ले। कम्युनिज्म को जन-समूहों के लिए बोधगम्य बनाया जाना चाहिए ताकि वे इसे अपने खुद के लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लें।"[2]

मूलभूत रूप से एक नयी ऐतिहासिक स्थिति का लाक्षणिक चित्रण करनेवाली इन मूलभूत सामाजिक-राजनीतिक तथा आर्थिक प्रस्थापनाओं के आधार पर, लेनिन ने जन-आंदोलन तथा प्रचार कार्यकलाप की अंतर्वस्तु को क्रांतिकारी रूप से बदलने की आवश्यकता के संबंध मे निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला :

"रीतिबद्ध प्रचार यह वर्णित व चित्रित कर देता है कि कम्युनिज्म है क्या। इस क़िस्म का प्रचार अब निरर्थक है क्योंकि हमें व्यवहार में यह दिखाना है कि समाजवाद का निर्माण कैसे किया जाना है। हमारा सारा प्रचार आर्थिक विकास के राजनीतिक अनुभव पर आधारित होना चाहिए।"[3] इस प्रकार पार्टी—नए समाज के निर्माण को सचालित करने व दिशा देनेवाला शासक दल बनते ही—के वैचारिक कार्यकलाप मे एक मूलभूत रूप से नया कार्य उभरा जो रीतिबद्ध प्रचार के दास

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'सोवियतों का आठवीं अखिल रूसी अधिवेशन, दिसंबर 22-29, 1920', सकलित रचनाएं', खड 31, पृ॰ 408
2. वी॰ आई॰ लेनिन, 'गुबेर्निया के राजनीतिक शिक्षाकर्मियों के अखिल रूसी अधिवेशन, 3 नवबर 1920, में दिया गया भाषण', सकलित रचनाएं', खड 31, पृ॰ 372
3. वही, पृ॰ 371

नही था—सामूहिक आर्थिक शिक्षा का कार्य जिसका महत्व आर्थिक विकास के आयामो मे वृद्धि के साथ और अधिक बढ़ता है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने लेनिन की इन मूलभूत प्रस्थापनाओं से सदा मार्ग-दर्शन प्राप्त किया है तथा वह आर्थिक विकास की वास्तविक अपेक्षाओ को आधार मानकर ही आगे बढ़ी है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 1971 मे संपन्न 24वी कांग्रेस के बाद आर्थिक शैक्षणिक केन्द्रों का दूर-दराज तक फैला हुआ जाल गठित किया गया जिनमे लाखों-लाख लोग अब तक अध्ययन कर चुके हैं तथा लाखो लोग अभी भी अध्ययन कर रहे हैं। 25वी पार्टी कांग्रेस ने मेहनतकश लोगो की आर्थिक शिक्षा को पार्टी के समूचे वैचारिक कार्यकलाप का अभिन्न अगभूत पहलू माना—समूचे देश के मजदूर सगठन मे उन्नत अनुभव को प्रसारित करने का, विज्ञान एव अभियान्त्रिकी की ताजा-तरीन उपलब्धियो को उत्पादन पर लागू करने का, ठोस तथा कामकाजी गभीर आधार पर समाजवादी स्पर्द्धा सगठित करने का प्रमुख उपकरण माना।

लेनिन ने इस बात पर जोर दिया कि प्रचार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के जीवत सटीक उदाहरणों पर आधारित होना चाहिए। लेनिन का आग्रह था कि जीवन के व्यावहारिक पक्ष पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि यही वह क्षेत्र है जहाँ अधिकाश नई चीजो का जन्म होता है तथा जहाँ उनका निर्माण होता है। यही वह क्षेत्र है जहाँ अधिकतम ध्यान दिया जाना चाहिए, फ़ालतू व बुरे तत्वो का सार्वजनिक प्रचार व खुली आलोचना की जानी चाहिए तथा सफल व अच्छे तत्वों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। जीवन के दैनदिन पक्ष के मूलभूत महत्व सबधी लेनिन के विचार को सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वी कांग्रेस ने रेखांकित किया था।

प्रचार की कारगरता को हालात के व्यावहारिक सुधार के परिप्रेक्ष्य मे ही मापा जा सकता है। लेनिन ने लिखा : "राजनीतिक शिक्षा प्रचार से कहीं अधिक (व्यापक) होती है—इसका अर्थ है व्यावहारिक परिणाम, इसका अर्थ है जनता को यह सिखाना कि ये परिणाम कैसे प्राप्त किए जा सकते है।"[1] जैसे राजनीति के बिना कोई अर्थशास्त्र नही हो सकता ठीक वैसे ही आर्थिक विकास तथा उत्पादन कार्यकलाप मे मेहनतकश जनता की सक्रिय भागीदारी के बिना उनकी कोई कम्युनिस्ट शिक्षा नही हो सकती। बदले मे चेतना, शिक्षा एवं सस्कृति का स्तर, मोटे तौर पर काम करने की सामर्थ्य, आर्थिक मामलो के प्रबध व उत्पादन के सचालन मे जनता की क्षमताएँ बहुत हद तक यह निर्धारित करती हैं कि उन्नत

1. वी० आई० लेनिन, 'नई आर्थिक नीति तथा राजनीतिक शिक्षा विभागो के कार्यभार', संकलित रचनाएं', खड 33, पृ० 77

समाज में निहित विशाल संभावनाएं कितनी जल्दी तथा किस सीमा तक वास्त
विकता में रूपांतरित हो जायेंगी।

लेनिन के अनुसार, "···आर्थिक सत्ता दैनंदिन मानव अस्तित्व के गहरे-से
गहरे आधारों को प्रभावित करती है।"[1] अतः आर्थिक प्रबंध के ठोस परिणामों
तथा उत्पादन पर वैचारिक तथा नैतिक कारकों के पुनर्निवेशन प्रभाव—दोनों के
ही वैचारिक तथा शैक्षणिक प्रभावों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करना एक मुश्किल
काम है। लियोनिद ब्रेझनेव ने 25वीं पार्टी कांग्रेस में अपने भाषण में रेखांकित
किया : "एक व्यापक सामाजिक कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में पार्टी इस विश्वास के
साथ काम करती है कि इसका संपादन (पूर्ति) मजदूरों, सामूहिक किसानों तथा
बुद्धिजीवियों के श्रम कार्यकलाप की वृद्धि में सहायक होगा, तथा प्रत्येक व्यक्ति
को बेहतर काम की प्रेरणा देगा। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि यह कितना
महत्वपूर्ण है। क्योंकि उत्पादन में बढ़ोतरी, पैदावार में वृद्धि तथा गुणवत्ता में
सुधार लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने की मुख्य तथा निर्णायक शर्तें हैं।"[2]

समाजवादी समाज का जीवन विचारधारा तथा अर्थशास्त्र, दोनों ही, के प्रति
इस दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को प्रमाणित करता है। यह आम जानकारी है कि
आर्थिक कार्यकारी अथवा प्रबंधक का एक भी ग़लत (बुरे) निर्णय अन्य चीज़ों के
अलावा नैतिक हानि को अपरिहार्य बना देता है, तथा आर्थिक आधार के वास्तविक
बोध से कटा होने पर प्रचारक द्वारा दिया गया एक भी आत्मपरक नारा अपनी
सुसंगति तथा आकर्षण को खोता ही है, आर्थिक विकास को भी क्षति पहुँचाता है।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (1976-1980) को कुशलता तथा उत्पाद गुणवत्ता
की योजना के रूप में घोषित किया गया है। निष्पादन की गुणवत्ता की योजना के
रूप में घोषित किया गया है। निष्पादन की गुणवत्ता न केवल प्रमुख उत्पादन
संबंधी तथा आर्थिक समस्या है बल्कि यह एक सामाजिक एवं शैक्षणिक मुद्दा भी
है। यह वैचारिक कार्यकलाप के पक्षों—जैसे लोगों को अपने काम के प्रति निष्ठा
तथा दायित्व की भावना रखना सिखाना, सामाजिक स्पर्द्धा की कारगरता में वृद्धि
करना—से अधिक कठोर तथा विविध माँगें करने के साथ-साथ उत्पादन से
संबंधित आर्थिक प्रचार के परिमाण तथा अंतर्वस्तु से भी कठोर माँगें करती है।

आर्थिक विकास की सफलता को आजकल निष्पादन की गुणवत्ता तथा उत्पाद
की गुणवत्ता के आधार पर मापा जाता है। इससे आज की श्रम-शिक्षा व आर्थिक
शिक्षा की अंतर्वस्तु निर्धारित होती है। जारी वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति

1 वी॰ आई॰ लेनिन, 'आर्थिक परिषदों की प्रथम कांग्रेस में भाषण, मई 26, 1918,'
संकलित रचनाएँ, खंड 27, पृ॰ 409

2 सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज़ तथा प्रस्ताव, पृ॰ 50

निष्पादन की गुणवत्ता तथा अभीष्ट उत्पाद की गुणवत्ता के सुधार को अपरिहार्य बनाती है।

जब देश समाजवाद के पथ पर अपने आरंभिक कदम बढ़ा रहा था उस समय लेनिन ने लिखा: "सोवियत सरकार की अपने संपूर्ण क्षेत्र मे जनता के लिए जो कार्यभार निर्धारित करना चाहिए वह है—काम करना सीखो।"[1] इसी मुद्दे पर पुनः लौटते हुए लेनिन ने लिखा: "काम करना सीखना सोवियत गणराज्य का आज का प्रमुख तथा सच्चा राष्ट्रीय कार्यभार है।"[2] लेनिन ने पूँजीवाद के अंतर्गत उपलब्ध श्रम संघटन की तुलना में एक बेहतर संघटन मे तथा काम के प्रति निष्ठापूर्ण रुख व नये तरीके से काम करने की सामर्थ्य व्यावहारिक रूप से अर्जित करने मे कम्युनिज्म की शक्ति का प्रमुख स्रोत खोजा तथा इसे कम्युनिज्म की अवश्यंभावीपूर्ण विजय की गारंटी माना।

सोवियत संघ मे काम के निष्पादन की गुणवत्ता के प्रति इन दिनों जो रवैया है वह लेनिन के मूलभूत विचार का ही विस्तृत एवं विकसित रूप है जिसे उन्नत समाजवादी समाज मे वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के कार्यभारों पर लागू किया जाने से निर्देशित है। प्रौद्योगिक प्रगति कितनी ही तेज क्यो न हो जाये, वैज्ञानिको की खोजें कितनी ही प्रभावशाली व युगांतरकारी क्यों न हो जायें, काम कभी भी मनोरंजन अथवा मनबहलाव का रूप नही ले पायेगा, बल्कि वही बना रहेगा जो यह हमेशा रहा है यानी यह एक गंभीर मामला बना रहेगा जिसे अच्छी तरह से कर पाने के लिए सीखना पड़ेगा। इस तथ्य की प्रामाणिकता समकालीन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के दौरान सिद्ध हो चुकी है।

आधुनिक उत्पादन तथा अद्यतन प्रौद्योगिक प्रणालियों की सतत अबाध क्रियाशीलता उत्पादन की प्रक्रिया में भाग लेने वालो के लिए इसे तात्कालिक रूप से आवश्यक बना देती है कि वे आधुनिक उत्पादन के उच्च संघटन स्तर के, तथा इन संभागियों के और अधिक दायित्व तथा संगठन बोध के उपयुक्त आचरण एवं नैतिकता की आंतरिक संहिता विकसित करें। इस तरह से पुनर्निवेशन संबंधों की जटिल तथा दूर तक फैली प्रणाली जन्म लेती है: मनुष्य तथा उत्पादन। श्रम की अंतर्वस्तु तथा चरित्र को प्रभावित करने वाले प्रगतिशील परिवर्तनों की दुहरी भूमिका होती है। एक ओर तो वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक प्रगति शारीरिक तथा मानसिक काम को आसान बनाकर मनुष्यों को श्रम साध्य, उबाऊ परिचालनो से मुक्त करती है तथा दूसरी ओर कार्यरत मनुष्यों से ऐसी नई माँगें भी करती है जो

1. वी० आई० लेनिन, 'सोवियत सरकार के तत्कान कार्यभार', संकलित रचनाएँ, खंड 27, पृ० 259

2. वी० आई० लेनिन, 'मरहम में मक्खी', संकलित रचनाएँ, खंड 33, पृ० 368

शुरू से खास तौर से उनकी बौद्धिक एवं भावनात्मक बनावट को प्रभावि
हैं।

अभियांत्रिकी मनोविज्ञान के निष्कर्ष यह संकेत देते हैं कि नये व्यवस
पेशों—यातायात नियंत्रक, परिचालक, कंप्यूटर प्रोग्राम आदि—का उद
प्रणालियों में मनुष्य की कार्यशीलता, तीव्र चिंतन, तुरत-स्मरण व तत्का
(अनुक्रिया) को, तथा आपात-स्थितियों में घटनाओं का पूर्वानुमान करने
संभाव्यता का आकलन करने, स्थिति का वस्तुगत मूल्यांकन करने, घटन
पूर्वाभास करके कार्यकलाप को नियोजित करने की सामर्थ्य को आवश्यक ब
है।

दुर्भाग्य से, समस्या के दूसरे पहलू पर उतनी गंभीरता से गौर नहीं किय
जितना कि पहले पर, और इस कारण वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति वे
तत्त्व तथा मौजूदा काम के चरित्र के बारे में भ्रामक धारणाएं पैदा हो सक
समाजवादी समाज की वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक प्रगति के समूचे दौर ने मा
भविष्यवाणी के सही होने के क्रम में अकाट्य प्रमाण उपलब्ध करा दिये
"सही मायने मे मुक्त श्रम एक अत्यधिक गंभीर मामला है।"[1] समाजवादी
मे श्रम के वे सामाजिक पहलू—व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा जीविका मार्गदर्श
अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं जोकि युवा पीढ़ी को अपनी वयस्कता की पहली सीढ़
ही यह समझने में सहायता करते हैं कि उन्हे, जीवन में क्या करना चाहिए
उन्हें किस तरह का मनुष्य बनना चाहिए।

समाजवाद के अंतर्गत वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक क्रांति उत्पादन तथा
रिवाज की समस्या पर बलाघात करती है। मेहनतकश लोगों की आर्थिक
में भी नैतिक पहलुओं का समावेश होता है क्योंकि आर्थिक प्रक्रियाओं के व्यवस्
की सामर्थ्य तथा कुशल कर्मी होने की समाजवादी नैतिक सिद्धांतों से, काम के
निष्ठावान रुख से पृथक नही किया जा सकता है। उत्पादन श्रम, काम तथा
कता ये सभी समाजवादी समाज में एक-दूसरे से जुड़े होते हैं।

नैतिक सिद्धांतों तथा मानदंडों की भूमिका परिवार में तथा समुदाय के
सदस्यों के साथ संबंधों मे ही महत्वपूर्ण नहीं होती बल्कि—और शायद उससे
ज्यादा—जीवन के सामाजिक तथा उत्पादन संबंधी क्षेत्रों—काम के स्थानों
आर्थिक क्षेत्र में—मे भी होती है। जटिल सामाजिक अवयव संस्थानों तथा त
नीकी प्रणालियों की अबाध *क्रियाशीलता, सामाजिक रूपातरण की प्रगति त
विशाल सामूहिक कार्यशालाओं की सामान्य क्रियाशीलता बहुत सीमा तक सं
लोगों के नैतिक गुणों पर निर्भर करती हैं।*

इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने श्रम तथा नैतिकता की व उत्पादन तथा नैतिकता की अभिन्न एकता पर बल दिया। यह आश्चर्यजनक नहीं माना जाना चाहिए कि कलाकारों तथा पत्रकारों की उत्पादन प्रसंग से संबंधित हाल की कुछ कृतियों ने जीवन सार्वजनिक पहलुओं को प्रदर्शित किया है। इसका कारण यह नहीं है कि सर्वाधिक उत्पादन प्रौद्योगिकी की बारीकियों में आम लोगों की दिलचस्पी है (हालांकि उसमें भी दिलचस्पी हो सकती है, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति से उत्पन्न होने के कारण) बल्कि इसका कारण पात्रों की नैतिक छटपटाहटें, उत्पादन के क्षेत्र में—जोकि मानवीय कार्यकलाप का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र है—विकसित होने वाली नाटकीय नैतिक स्थितियां हैं जिनमें व्यक्तित्व के कई गुणों की नैतिक अग्नि-परीक्षा हो जाती है।

किन्तु नैतिक कारक ही उत्पादन को प्रभावित नहीं करते, अक्सर उत्पादन का भी नैतिक मानदंडों पर ओट प्रभाव पड़ता है। कर्तव्यनिष्ठा के भाव में वृद्धि कार्यकलाप तथा पहलकदमी का उठता हुआ स्तर मात्र वैचारिक साधनों से प्राप्त नहीं होता। ये आर्थिक कार्यकलाप के सामाजिक-आर्थिक और शैक्षणिक परिणामों पर, व्यक्तियों के प्रत्येक समूह में विद्यमान नैतिक वातावरण पर, तथा इस बात पर कि यह वातावरण समूहों के मामलों से संबंधित पहलुओं में तथा प्रशासन में मेहनतकश लोगों की सम्पन्नता को किस सीमा तक बढ़ाने में और मेहनतकश आदमी के प्रति उसकी अपेक्षाओं के अनुरूप आदर-भाव कायम करने में कितना सहायक है, भी समान रूप से निर्भर करते हैं।

समाजवादी समुच्चय (समूह) समाजवादी समाज की वह कोशिका है जहां आर्थिक योजनाओं का भविष्य बड़ी सीमा तक निश्चित होता है, जहां लोग स्वशासन की क्षमताएँ अर्जित करते हैं तथा नैतिक एवं राजनीतिक गुण प्राप्त करते हैं। सोवियत संघ में कार्य-समुच्चय का शैक्षणिक असर सामाजिक नियोजन लागू किये जाने के बाद से बेहद बढ़ा है क्योंकि इसके अंतर्गत कारखाने, संयंत्र अथवा अन्य किसी उद्यम का भविष्य उसमें काम करने वालों के स्तर पर ही निर्धारित व निश्चित होता है।

कार्य-समुच्चय के बढ़े हुए महत्व को संवैधानिक रूप दे दिया गया है। संविधान की धारा 8 में कहा गया है: "कार्य-समुच्चय समाजवादी स्पर्द्धा, काम की प्रगतिशील पद्धतियों के प्रसार तथा उत्पादन अनुशासन के सुदृढ़ीकरण को प्रोत्साहित करते हैं, कम्युनिस्ट नैतिकता की दृष्टि से अपने सदस्यों को शिक्षित करते हैं, तथा उनकी राजनीतिक चेतना में वृद्धि करने, उनके सांस्कृतिक स्तर, क्षमताओं व योग्यताओं को ऊँचा उठाने के प्रयास करते हैं।"

उत्पादन सभी कुछ है—राजनीति, अर्थशास्त्र एवं शिक्षा। राजनीतिक एवं श्रम-शिक्षा का व्यावहारिक सम्मिलन समाजवादी स्पर्द्धा में अभिव्यक्ति पाता है

सकती है जबकि इसके तमाम तत्वों को एक अभिन्न रूप से एकीकृत इकाई में समाहित कर दिया जाये।

जहाँ तक स्पर्द्धा को वैचारिक समर्थन दिये जाने का प्रश्न है मज़दूरों की सृजनात्मकता तथा पहलकदमी की नब्ज़ पहचानने पर, समर्थक पहलकदमियों पर, स्पर्द्धा अभियानों का व्यापक प्रचार करने की ओर, स्पर्द्धा अभियान के सभागियों द्वारा प्राप्त परिणामों की तुलनीयता पर, स्पर्द्धा अभियान की अग्रिम पंक्ति के सदस्यों को सामाजिक मान्यता तथा पुरस्कार प्रदान करने और विकसित अनुभव को प्रचारित करने पर प्रमुख रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

स्पर्द्धा का वैचारिक तथा राजनीतिक पक्ष उसकी सृजनात्मक अंतर्वस्तु में निहित होता है, जब मज़दूर स्वयं यह निर्णय लेते हैं कि उन्हें क्या आयोजन हाथ में लेना है तथा वे ही उत्पादन संकल्पों का जायज़ा लेकर स्पर्द्धा के नतीजों की गणना करके पूरी प्रक्रिया का मूल्यांकन करते हैं। यह सब न केवल अंतर्निहित आर्थिक भंडारों के अधिक पूर्ण उपयोग को संभव बनाने में योगदान देता है बल्कि स्पर्द्धा के जनतंत्रीय सिद्धांतों—उत्पादन के प्रत्यक्ष संचालन में विशाल जनसमूहों को सम्मिलित करने—के विकास को भी सुनिश्चित करता है। वस्तुतः, आज की समाजवादी स्पर्द्धा लेनिन के विचार—निजी स्व-हित तथा समुदाय के प्रति उत्तर-दायित्व के सिद्धांत की एकता के रूप में विकसित स्पर्द्धा—का जीवित मूर्त रूप है।[1]

3. समाजवादी जीवन-पद्धति की वैचारिक तथा नैतिक समस्याएँ

वैचारिक कार्यकलाप, कार्यकलाप के लक्ष्योन्मुख स्वायत्त रूप में, अपने आपको नयी जीवन-पद्धति—जिसमें नैतिक मानदंडों का महत्व निरंतर बढ़ता है—के गठन के प्रति अपने रुझान में उद्घाटित करता है। लेनिन ने 1918 में अपनी कृति सोवियत सत्ता के तात्कालिक कार्यभार में नये समाज के निर्माण में तथा-कथित घिसी-पिटी तुच्छ सामान्य नैतिक सत्यों की व्यापक राजनीतिक सार्थकता को उजागर किया। समाजवादी जीवन-पद्धति के नैतिक मानदंडों का हिस्सा बन कर ऐसे आम-निर्देश भी—**कठोरतम श्रम अनुशासन का पालन करो, पैसे का नियमित तथा सही हिसाब रखो, प्रबंध में मितव्ययता लाओ, चोरी मत करो आलसी मत बनो** एक नया अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। लेनिन ने कम्युनिस्ट आदर्शों की सिद्धि को समाज के नैतिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने से पृथक व भिन्न नहीं माना।

लेनिन के आदेशों को मूर्त रूप देने के क्रम में कम्युनिस्ट पार्टी सोवियत जनता

1. वी० आई० लेनिन, 'नयी आर्थिक नीति तथा राजनीतिक शिक्षा विभागों के कार्यभार', संकलित रचनाएँ, खंड 33, पृ० 68-70

की नैतिक शिक्षा, समाजवादी समाज के मानदंडों तथा नियमों के सुदृढ़ीकरण तथा समाजवादी जीवन-पद्धति को सुधारने के महत्व को रेखांकित करती रही है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी नैतिक शिक्षा को अपने समूचे वैचारिक कार्यकलाप की प्रमुख समस्या के रूप में देखती है तथा इसे कम्युनिस्ट शिक्षा के अन्य पक्षों—जैसे वैचारिक, राजनीतिक व श्रम शिक्षा—से अभिन्न तथा पृथक न किया जा सकने वाला मानती है। 25वीं पार्टी कांग्रेस में दिये गये अपने भाषण में लियोनिद ब्रेझनेव ने इस बात पर जोर दिया कि : "व्यक्ति की गरिमा को कोई अन्य चीज इतना नहीं बढ़ाती जितना कि जीवन के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण तथा समाज के प्रति अपने दायित्व के बारे में सचेत रवैया, जब कथनी और करनी का सामंजस्य दैनंदिन व्यवहार का नियम बन जाता है।"

समाजवादी अर्थव्यवस्था की मानवीय प्रकृति जिसका लक्ष्य मेहनतकश जनता का कल्याण है, समाजवादी सामाजिक संबंधों का मानवीय चरित्र जिसके अंतर्गत मनुष्य मनुष्य का साथी है, समाजवादी जनवाद का वास्तविक चरित्र जहां प्रत्येक काम करने वाला व्यक्ति स्वयं को अपनी नियति का निर्माता तथा देश का स्वामी मानता है—ये सब मिलकर नैतिक मूल्यों के एक नये मापक्रम—सामूहिकतावादी तथा साहचर्यपूर्ण पारस्परिक सहायता—को जन्म देकर व्यक्ति की गरिमा तथा उसके सामाजिक दायित्व को रेखांकित करते हैं और इस तरह नैतिक मूल्यों की एक नयी प्रणाली निर्मित करते हैं। साथ ही, समाजवादी जीवन-पद्धति समाजवादी नैतिक आस्थाओं को स्वतः सृजित नहीं करती बल्कि ये पार्टी तथा सोवियत राज्य के सोद्देश्य वैचारिक कार्यकलाप के परिणामस्वरूप सृजित होती हैं, तथा निजी स्वामित्व की दुनिया से विरासत में प्राप्त पूर्वाग्रहों तथा गंदी आदतों से अपने बेलाग संघर्ष में अपना वर्चस्व क़ायम करती हैं।

समाजवादी समाज के जीवन में अभी भी व्याप्त नकारात्मक परिघटनाएं समाजवाद के अंतर्गत सामाजिक एवं नैतिक विसंगतियां हैं। ये कम्युनिस्ट नैतिकता की उलट हैं। जैसाकि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने रेखांकित किया : "हमारा समाज अपने विकास के स्तर में जितना ऊंचा होगा, समाजवादी नैतिकता के मानदंडों से विचलन उतना ही असह्य हो जायेगा। आपाधापी, संपत्ति के प्रति रुझान, गुंडागर्दी, नौकरशाही तथा अपने साथी मनुष्यों के प्रति उदासीनता हमारी व्यवस्था की प्रकृति के प्रतिकूल है।"[2] समाजवाद के विकास की मौजूदा अवस्था में, इसके सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास के परिप्रेक्ष्य में, सामाजिक मानदंडों के उल्लंघनों का

---

1 सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस का दस्तावेज तथा प्रस्ताव, पृष्ठ 94

2 वही

समाजवादी जीवन-पद्धति, नैतिक एवं विधिक चेतना के बढ़े हुए तथा ऊपर
हुए स्तर, सोवियत जनता की वैचारिक एवं नैतिक बनावट को निर्धारि
निर्मित करने वाली प्रत्येक चीज़ मे की जाने वाली कठोर माँगों से तीव्र विर
संघर्ष उजागर होता है।

नैतिक शिक्षा की समस्या एक अत्यंत जटिल तथा बहुआयामी मसल
सोवियत संघ के सार्वजनिक जीवन मे प्रमुख मसले ये हैं : समाजवादी ज
पद्धति मे सुधार, जनता की संपत्ति के प्रति देख-रेख व फलने-फूलने के भा
सोवियत जनता की शिक्षा के माध्यम से प्रसार, दैनंदिन जीवन में व्यवहार
श्रम की कुशलता के उच्च मानदंडों की स्थापना, कम्युनिस्ट नैतिकता के
मानदंडों का समावेश। कम्युनिज्म भौतिक एवं आत्मिक विपुलता के अ
मानव मनोविज्ञान मे दूरगामी गंभीर परिवर्तनों को आवश्यक मानता है जो
मेल खाने वाला आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक आधार बनता है। परेशानी
कि संपत्तिवादी रुझान, दृष्टियाँ तथा परंपराएँ शताब्दियों तक निर्माण की प्र
से गुज़र कर, लेनिन के शब्दों में, आदत के रूप में व्यापक मान्यता[1] अर्जि
लेती हैं। समाजवादी ढंग का नया समाज बनाने के संदर्भ मे सबसे मुश्कि
भार नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक क्षेत्र मे ऐतिहासिक जड़ता की दी जाने
मान्यता पर विजय प्राप्त करना है।

रूस मे क्रांतिकारी सर्वहारा आंदोलन का इतिहास मजदूर वर्ग तथा
पार्टी पर निम्न पूँजीवादी दबाव के खिलाफ लड़े संघर्ष का इतिहास रहा है
वैचारिक तथा राजनीतिक धारा के रूप मे बोल्शेविकवाद का उदय निम्न
वादी रुझानों के खिलाफ संघर्ष के दौर मे ही हुआ तथा इसी दौर मे उसने
अर्जित की और अपनी नीतियों तथा विचारधारा मे इस मुद्दे पर विशेष
दिया। निम्न पूँजीवादी रुझान के खिलाफ संघर्ष, जैसा लेनिन ने बार-बार
दित किया था, कभी भी मात्र ज़ोर और दबाव के सहारे सफल नहीं हो स
इसके लिए जन-समूहों की आर्थिक एवं नैतिक शिक्षा तथा पुनर्शिक्षा परम आ
है।

समाजवाद की उत्तरोत्तर अवस्थाओं में आर्थिक एवं सामाजिक परिप
की व्यापक परिवर्तनशील मात्रा, मानसिक तथा शारीरिक श्रम के बीच, तथा
और ग्रामीण जीवन के बीच समुचित विभेदीकरण का सभी ऐतिहासिक अव
दौरान बना रहना, साथ ही, समाजवादी क्षेत्र के आस-पास उत्पादक शक्ति
विकास की भिन्न अवस्थाओं मे निम्न-भिन्न क्षेत्रों का बना रहना, इसी
पुराने के अवशेष आदि ऐसे कारण हैं जो कम्युनिस्ट समाज की प्रथम अव

1. वी० आई० लेनिन, 'एक शानदार शुरुआत', संकलित रचनाएं', खंड 29, पृ० 42

अपरिहार्य है तथा जो ऐतिहासिक एवं आर्थिक कारकों के रूप में नकारात्मक परिघटनाओं की गतिशीलता को प्रभावित करते हैं।

ऐतिहासिक तथा भौतिक परिस्थितियों के व्यापक परिदृश्य से परिचित तथा उनके प्रति सजग, कम्युनिस्टों ने जन-समूहों की शिक्षा को सदा ही बेहद महत्वपूर्ण माना है। समाज-विरोधी घटनाक्रियाओं पर विजय प्राप्त करने के अभियान में *सामाजिक-आर्थिक, विधिक तथा अन्य उपायों के साथ-साथ वैचारिक पद्धतियों* तथा प्रविधियों की भी सक्रिय सामाजिक भूमिका होती है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने ध्यान दिलाया कि : "इस तरह की परिघटनाओं का सामना करने में यह आवश्यक है कि हमारे पास उपलब्ध सभी उपकरणों—कार्य-समूहों की राय, प्रेस के माध्यम से आलोचना, समझाने की *पद्धतियों तथा क़ानून के बल का पूरा उपयोग करें।*"[1]

जन-समूहों की नैतिक शिक्षा का कार्यभार एक सकारात्मक कार्यभार है, समाज के सदस्य के रूप में जीवन के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण तथा अपने कार्य के प्रति सचेत दृष्टिकोण विकसित करने का। अक्सर यह होता है कि लोग अपने आपको समुदाय के जीवन से अलग कर लेते हैं, अहम्मन्यता के ऐसे खोल में सीमित कर लेते हैं जो गुजरे जमाने के नैतिक सिद्धांतों, पूर्वाग्रहों तथा गंदी आदतों की कब्र का ही एक रूप होता है। इस संबंध में लेनिन ने लिखा : "इस मामले में *सिर्फ़ क़ानून काफ़ी नहीं होते। बड़ी मात्रा में शैक्षणिक, संगठनात्मक तथा सांस्कृतिक* काम आवश्यक हो जाता है; क़ानून न बनाकर इस काम को तेज़ी से नहीं किया जा सकता बल्कि यह लंबी अवधि तक बड़ी मात्रा में काम *की माँग करता है।*"[2]

भौतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के तुलनात्मक महत्व, पारंपरिक नैतिकता तथा कम्युनिस्ट नैतिकता के मानदंडों की अविसर्जनीय एकता, और समाज के सदस्यों के सामाजिक कार्यकलाप की समस्याएँ आज जन-समूहों की नैतिक शिक्षा का केंद्रीय मुद्दा बन गयी हैं।

मेहनतकश लोगों की बढ़ती हुई भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने पर समाजवादी अर्थव्यवस्था का निरंतर बढ़ता हुआ ज़ोर भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के *तुलनात्मक महत्व के प्रश्न को पहले कभी से अधिक महत्वपूर्ण बना देता* है। दक्षिणपंथी संशोधनवादी तथा वामपंथी प्रचारक यह दिखाने की कोशिश कर रहे हैं कि सोवियत संघ में ऊपर उठते हुए इस बात के प्रमाण हैं कि वहाँ *का समाज* पूँजीवादी उपभोक्तावाद में पतित हो रहा है।

1. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज़ तथा प्रस्ताव, पृष्ठ 94
2. वी॰ आई॰ लेनिन, 'रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की आठवीं कांग्रेस, संकलित रचनाएँ', खंड 29, पृ॰ 179

गरीबी तथा निम्न जीवन-स्तरो को जन-समूहों की क्रांतिकारी भावन बनाये रखने की गारंटी के रूप मे देखना तथा क्रमिक रूप से उन्नत होते हुए जी स्तरों को समाजवादी समाज के ऐसे समाज मे अवश्यंभावी पतन के रूप मे दे जहाँ पूँजीवादी रुझानों का वर्चस्व हो, एकदम गलत है। यह दृष्टि निम्न-पूँजी समाजवाद के विभिन्न रूपों से मेल खाती है जो मानव अस्तित्व की भौ परिस्थितियों को या तो पूरी तरह से नजरंदाज कर देता है या दूसरे छोर पहुँचकर भोगवादी नारे जब तक हम जिएँ ठाठ से जिएँ को समाजवाद का घोषित कर देता है।

कम्युनिस्ट विचारधारा तथा मनोविज्ञान जीवन की भौतिक वस्तुओं साध्य मानकर पूजने तथा मानव अस्तित्व की भौतिक परिस्थितियों के हिकारत का रवैया अपनाने दोनों का ही अस्वीकार करते हैं। एक संपूर्ण मनुष्य निर्माण समाजवादी तथा कम्युनिस्ट निर्माण के दौर में निर्धारित समुचित भौ एवं आध्यात्मिक पूर्वापेक्षाओं के सही सम्मिश्रण से होता है। जब मनुष्य अभावों छाया में जीवन बिताते हैं तो व्यक्ति के पूर्ण तथा संतुलित विकास का प्रश्न ही उठता है। दूसरी ओर, जीवन की भौतिक वस्तुओं का बाहुल्य कम्युनिस्ट स का साध्य नहीं होता बल्कि ऐसी आवश्यक शर्त होता है जिसके बिना व्यक्ति स्वतंत्र व संतुलित आध्यात्मिक विकास संभव ही नहीं है।

यह कल्पना करना एकदम गलत है कि भविष्य का कम्युनिस्ट समाज स .वादी गरीबी का साम्राज्य होगा। यह एक विशिष्ट निम्न-पूँजीवादी दृष्टिको जो वास्तविकता मे रूपांतरित होने पर नयी सामाजिक व्यवस्था के उपहास-चि बैरक कम्युनिज्म—का रूप धारण कर लेता है। लेनिन के शब्दों मे, "निम्न- वादी समाजवाद की यह अभिकल्पना है कि सभी के लिए बराबरी का स्वा प्राप्त कर पाना संभव है।"[1] तब से अब तक के रिकार्ड ने निम्न-पूँजीवादी स वाद के विचारों की आर्थिक निरर्थकता तथा प्रतिक्रियावादी सामाजिक-राजनी प्रकृति का बखूबी भंडाफोड़ किया है।

समानता की समस्या के वास्तविक समाजवादी समाधान का संबं व्यक्तियों का समाज विकसित करने अथवा, जैसाकि पूँजीवादी प्रकार दिखा कोशिश करते हैं—मानव सामर्थ्य तथा प्रतिभा को बराबर करने से कोई देना नहीं है। लेनिन ने इस बात पर बल दिया कि : "...समाजवादी जब सम की चर्चा करते हैं तो उनका आशय सामाजिक समानता—सामाजिक (प्रतिष्ठा) की समानता—से होता है न कि व्यक्तियों की शारीरिक तथा मा

1\. वी॰ आई॰ लेनिन, "भूमि का प्रश्न तथा स्वतंत्रता की लड़ाई", संकलित र खंड 10, पृ॰ 433

समाजवाद है।"[1]

इस संबंध में नये संविधान में यह उल्लेख किया गया है: "कम्युनिस्ट आदर्श—प्रत्येक का मुक्त विकास सबके मुक्त विकास की शर्त है—के अनुरूप ही राज्य सभी नागरिकों को अपनी सृजनात्मक क्षमताओं, योग्यताओं तथा प्रतिभा का उपयोग करने के तथा अपने व्यक्तित्व को हर दृष्टि से विकसित करने के वास्तविक अवसर प्रदान करने के लक्ष्य का अनुसरण करता है।" यह सब वास्तविकता बने इसके लिए जो चीज सर्वाधिक आवश्यक है वह यह कि इसके लिए उपयुक्त भौतिक आधार निर्मित हो। वैज्ञानिक समाजवाद के मार्ग-क्रम में अटूट आस्था में संलग्न सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी वह हर काम कर रही है जो जन-जन जीवन-स्तर को और अधिक ऊँचा बनाने को सुनिश्चित करने, अधिक तथा बेहतर आवासन सुविधाएँ उपलब्ध कराने, अधिक तथा बेहतर उपभोक्ता सामान के उत्पादन को सुनिश्चित करने, हर तरह के खाद्य उत्पादन में जुड़ी हुई आबादी की जरूरतों को पूरा करने तथा अधिक एवं बेहतर सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है, जैसाकि विद्यमान समाजवाद के पूँजीवादी तथा संशोधनवादी आलोचक सिद्ध करना चाह रहे हैं, कि सोवियत संघ का समाजवादी समाज पूँजीवादी किस्म के उपभोक्तावाद की ओर बढ़ रहा है।

दरअसल, उपभोग अपने आप में समाज को उपभोक्ता-उन्मुख नहीं बना देता है। मानवता के ऐतिहासिक विकास के अस्थायी पड़ाव के रूप में पूँजीवादी उत्पादन विधि से जुड़े हुए निश्चित सामाजिक रूपों के अन्तर्गत उपभोग एक उपयोगितावादी रूप धारण कर लेता है। समाजवाद के अंतर्गत एक भिन्न प्रकार की स्थिति होती है, फिर भी इसका अर्थ यह कतई नहीं होता कि समाजवाद के अंतर्गत निम्न-पूँजीवादी उपभोक्तावादी मनोविज्ञान के सभी अवशेष तथा परावर्तन स्वतः ही वर्जित तथा समाप्त हो जाते हैं।

समाजवाद में मानवीय आवश्यकताओं का उच्चतर स्तर निहित होता है। इस उत्थान की यह अपेक्षा होती है कि लोगों के भौतिक कल्याण में वृद्धि की प्रवृत्ति के साथ-साथ उनके वैचारिक तथा नैतिक मानदंड भी ऊपर उठेंगे तथा समाज का सांस्कृतिक तथा बौद्धिक जीवन भी विविधतापूर्ण, अर्थवान तथा दिलचस्प बनेगा। यहाँ समाज के नैतिक एवं बौद्धिक जीवन को समृद्ध बनाने के इस संदर्भ में हम साहित्य एवं कला की विपुल संभावनापूर्ण क्षमता को भी रेखांकित करना चाहेंगे क्योंकि ये मनुष्य के आंतरिक संसार को सीधे निर्मित करते हैं उसके नैतिक सिद्धांतों तथा वैचारिक और नैतिक बनावट को रूप देते हैं। सोवियत संघ की

1. वी० आई० लेनिन, 'समानता के बारे में एक उदारपंथी प्रोफ़ेसर के विचार', संकलित रचनाएँ, खंड 20, पृ० 140

कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस में अपने भाषण में लियोनिद ब्रेझनेव ने इस समस्या के नैतिक पक्ष के महत्व तथा इसकी तात्कालिकता को रेखांकित करते हुए कहा : "एक अन्य विषय जिस पर हमारे साहित्य और कला ने काफी ज़ोर दिया है'''उल्लेखनीय है। यह विषय नैतिकता तथा नैतिक अन्वेषण से जुड़ा हुआ है। हालांकि इस क्षेत्र में कतिपय असफलताएँ रही हैं फिर भी उपलब्धियाँ कहीं ज्यादा बड़ी रही हैं। इस बात का श्रेय हमारे लेखकों तथा कलाकारों को जाता है कि उन्होंने हमारी कम्युनिस्ट नैतिकता के ठोस तथा सही सिद्धांतों के अनुरूप श्रेष्ठतम मानवीय गुणों—सिद्धांत के प्रति निष्ठा, भावनाओं की सच्चाई तथा गहराई—को उकेरा है।"[1]

समस्या के प्रति यह नजरिया हमें मूलभूत महत्व के दो प्रश्नों को गहराई से समझने में सहायता करता है, जिनके सफल समाधान का नैतिक शिक्षा की कारगरता पर प्रत्यक्ष असर पड़ता है। ये प्रश्न नैतिक प्रतिबिंबन से, तथा कम्युनिस्ट भविष्य के मनुष्य की नैतिक बनावट को निर्मित करने में समस्त मानवता की नैतिकता के साझे सामान्य पारंपरिक मानदंडों की भूमिका से संबंधित हैं।

हमारी यह मान्यता है कि नैतिक प्रतिबिंबन के दो हिस्सों को—पहले को पूर्णतया शुभ तथा दूसरे को पूर्णतया अशुभ मानकर—अमूर्त ढंग से एक-दूसरे के आमने-सामने रखना ग़लत होगा। नैतिक प्रतिबिंबन के चौखटे के बाहर, सामाजिक दृष्टि से निर्णायक नैतिक सिद्धांतों से परे, किसी भी व्यक्ति का कार्य-व्यापार कार्य-व्यापार के बाहर प्रतिबिंबन से भी अधिक खतरनाक हो सकता है।

प्रतिबिंबन—अमूर्त ढंग से नैतिकता झाड़ने के अर्थ में नहीं बल्कि नैतिक आत्म-मूल्यांकन, अपने जीवन-अनुभव की नैतिक तर्क-संगति, नैतिक अन्वेषणों तथा नैतिकता के सामाजिक मानदंडों के समाहार के अर्थ में—समाजवादी समाज के सदस्य के व्यवहार की पूर्वापेक्षा है, मोटे तौर पर व्यक्ति की विश्वसनीयता का ठोस आधार है। साथ ही, नैतिक प्रतिबिंबन की आवश्यकता के अभाव, तथा इसके शून्यवादी अस्वीकार का उपयोग अकसर ही जीवन में अवसरवाद को तथा जटिल परिस्थितियों में नैतिक समर्पण को न्यायोचित ठहराने के लिए किया जाता है। जबकि कार्य-व्यापार से बाहर प्रतिबिंबन का परिणाम अमूर्त नैतिक उपदेशबाज़ी, जीवन की वास्तविक समस्याओं से पलायन हो जाता है, नैतिक प्रतिबिंबन के बाहर कार्य-व्यापार नैतिक सिद्धांतों से रहित दुस्साहसी सक्रियतावाद में, सक्रियतावादी अज्ञान के रूप में विकृत हो जाता है।

मानव व्यक्तित्व का अर्थ है विचार-शक्ति, चरित्र एवं विश्व-दृष्टि की एकता; गहन एवं समुचित ज्ञान, सर्वत्र मान्यता प्राप्त सांस्कृतिक मानदंडों में निष्ठा

1. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के प्रस्ताव तथा दस्तावेज़, पृ॰ 96

पारंपरिक मानव मूल्यों की गहरी समझ में प्रतिबिंबित चिंतन की स्वतंत्रता व मौलिकता, तथा ईमानदारीपूर्ण कर्म एवं सृजनात्मक कार्यकलाप की ओर अभिमुखीकरण के रूप में व्यावहारिक विचार-शक्ति को चरित्र से, ऊँचे नैतिक आदर्शों से, व्यक्ति की विश्वसनीयता से तथा उसकी विश्व-दृष्टि की दृढ़ता से पृथक नहीं किया जा सकता, ये अभिन्न हैं।

चरित्र तथा विश्व-दृष्टि एवं व्यक्ति की चिंतन शैली व मानसिकता को और रोजमर्रा के सांसारिक निर्देशांकों की जटिल प्रणाली के भीतर उसके सचेत वरण को निर्धारित करते हैं तथा इस बात की गारंटी करते हैं कि जो कुछ भी वह कहता व करता है वह पूरी तरह से सुविचारित है। कर्म तथा जीवन के प्रति मात्र रचनात्मक दृष्टिकोण ही चीजों के प्रति तर्कसंगत तथा सुविचारित दृष्टिकोण का संकेत हो सकता है। दार्शनिक के रूप में अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में मार्क्स ने लिखा था: "वह जो अपने स्वयं के ससाधनों से पूरा संसार निर्मित करना नहीं चाहेगा—निरंतर अपने ही बारे में परेशान होने के बजाय संसार का निर्माता बनना नहीं चाहेगा—उसे जीवात्मा ने पहले ही शापग्रस्त कर दिया है, उस पर निषेधादेश लागू है, पर विपरीत अर्थ में; वह मंदिर से निष्कासित है तथा जीवात्मा के शाश्वत आनंद से वंचित है तथा जिसे अपने निजी आनंद के बारे में लोरियाँ गाने व रात में अपने ही बारे में सपने देखने की ही छूट है।"[1]

समाजशास्त्रीय सापेक्षतावाद जिसे मार्क्सवाद के वैचारिक विरोधी उसके मत्थे मढ़ना चाहते हैं वस्तुतः मार्क्सवाद की प्रकृति के प्रतिकूल है, नैतिक मूल्यों के प्रति उसके दृष्टिकोण के संदर्भ में। मार्क्सवाद-लेनिनवाद जिस सामाजिक निर्धारणवाद का प्रतिपादन करता है वह अंतःचेतना अथवा नैतिक मूल्यांकन को कतई निष्कासित नहीं करता बल्कि उसके विपरीत इन दोनों को एकमात्र ठोस तथा वैज्ञानिक आधार पर स्थित करता है। कम्युनिस्ट नैतिकता दो बुनियादी तत्वों से मिलकर बनती है:

—मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी नैतिकता जोकि समाज के नैतिक विकास के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है;

—नैतिकता एवं न्याय के सामान्य पारंपरिक मानदंड जोकि शोषण, उत्पीड़न तथा शासक-वर्गों की अधिकृत नैतिकता के विरुद्ध संघर्ष के परिणामस्वरूप मेहनतकश जनसमूहों के शताब्दियों पुराने नैतिक अनुभव में निश्चित रूप धारण कर चुके हैं। मार्क्स ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने "दो साधारण व्यक्तियों के संबंधों को संचालित करने वाले नैतिकता एवं

1. कार्ल मार्क्स, 'भोगवादी दर्शन (ऐपीक्यूरियन फिलॉसफ़ी) पर टिप्पणियाँ', संकलित रचनाएँ, खंड 1, पृ० 468-69

, न्याय के सामान्य नियमों को दो राष्ट्रों के आपसी सबंधों के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करने"[1] का कार्यभार प्रस्तुत किया।

मार्क्सवादी मानवता द्वारा अर्जित नैतिक सपदा को अस्वीकार करने की तो बात ही दूर, वस्तुत: उसके सामाजिक अर्थ तथा सार्थकता को उजागर करते हैं।

ईमानदारी, साफ्चर्य, व्यक्तिगत गरिमा, अंत:चेतना तथा शालीनता बोध जैसे सामान्य, पारंपरिक नैतिकता के मानदंडों का नैतिकता के अधिक जटिल सामाजिक मानदंडों के गठन पर सीधा प्रभाव पड़ता है तथा ये ही इसके आधार को निर्मित करते हैं। स्थिर व ठोस नैतिक सिद्धांतों के बिना व्यक्ति के वैचारिक पक्केपन का प्रश्न ही नहीं उठता। लेनिन ने बिना किसी लाग-लपेट के कहा. "स्वार्थजीवियों के न तो विचार होते हैं और न ईमानदारी।"[2]

नैतिकता के किसी भी तत्व का पृथक अस्तित्व नहीं होता, सभी मिलकर एक घनिष्ठ रूप से एकीकृत प्रणाली को निर्मित करते हैं। समुदाय में व्यवहार के सामान्य मानदंड तथा नैतिकता के सार्वत्रिक मानदंड प्रचलित वर्ग-संबंधों से, नैतिकता की किसी खास प्रणाली के वर्गीय-केंद्रक से, कटकर अलग रहकर अस्तित्व में नहीं रहते हैं। इस निर्भरता को रेखांकित करते हुए मार्क्स ने कहा कि एक गणराज्यवादी की अंतरात्मा राजतंत्रवादी की अंतरात्मा से भिन्न होती है, कि संपत्ति-स्वामी की अंतरात्मा उसकी अंतरात्मा से भिन्न होती है जिसके पास कोई संपत्ति नहीं है, कि एक चिंतनशील मनुष्य की अंतरात्मा उसकी अंतरात्मा से भिन्न होती है जो चिंतन में असमर्थ है।[3] लेनिन ने वर्गीय तथा सार्वत्रिक की द्वंद्वात्मकता को यह कहते हुए रेखांकित किया कि नैतिकता कम्युनिज्म के सुदृढ़ीकरण व समापन के संघर्ष में सहायक होती है, यह मानव समाज को एक उच्चतर स्तर तक उठाती है।[4]

सार्वत्रिक तथा वर्गीय के बीच के संबंध नैतिकता की किसी खास प्रणाली के भीतर जड़ नहीं होते हैं। पूंजीवादी नैतिकता के विपरीत, कम्युनिस्ट नैतिकता न केवल नैतिकता के सर्वत्र मान्यता प्राप्त मानदंडों को आवेष्टित करती है—जिन्हें कि यह विकसित व समृद्ध करती है—बल्कि उन्हें समाज के सभी सदस्यों के लिए व्यवहार के स्थायी नियम बनाने को भी अपना लक्ष्य बनाती है। सोवियत

---

1. कार्ल मार्क्स, 'वर्किंग मैन एसोसिएशन का उद्घाटन भाषण', संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, खंड 2, पृ० 18
2. वी० आई० लेनिन, 'रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की आठवीं कांग्रेस,' संकलित रचनाएं, खंड 29, पृ० 209
3. कार्ल मार्क्स-फेडरिक एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खंड 8, पृ० 189
4. वी० आई० लेनिन, 'युवक संघों के कार्यभार', संकलित रचनाएं, खंड 31, पृ० 294-95

कोम्सोमोल (युवक संघ) को 17वीं कांग्रेस में अपने भाषण में लियोनिद ब्रेझनेव ने इस पर बल देते हुए कहा : "हमारी कम्युनिस्ट नैतिकता मानवता द्वारा विकसित नीतिशास्त्र के मानवतावादी प्रतिमानों को विरासत में प्राप्त करके विकसित करती है। अध्यवसाय, ईमानदारी, विनम्रता, व्यक्तिगत गरिमा, साहचर्य तथा पारस्परिक आदरभाव ये सभी सोवियत मनुष्य की नैतिक छवि (बिंब) के अभिन्न लक्षण हैं।"[1]

सार्वत्रिक तथा वर्गीय की यह द्वंद्वात्मकता इन दिनों खासकर मानवता के समक्ष उपस्थित सही मायने में सार्वभौम समस्याओं के संबंध में अतिरिक्त आयाम ग्रहण कर रही है। विश्व नाभिकीय युद्ध की रोकथाम, पर्यावरण की सुरक्षा, प्रकृति का संवर्द्धन, बाह्य अंतरिक्ष की खोज जैसी समस्याओं तथा जनसंख्या संबंधी समस्याओं की प्रकृति ऐसी है कि इनके सफलतापूर्वक समाधान के लिए सभी देशों तथा जनगण का सहयोग अत्यावश्यक है; उन सबका जिनके व्यापक हित इन समस्याओं के कारगर समाधान से जुड़े हुए हैं। यह स्वयंसिद्ध है कि विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं तथा सामाजिक शक्तियों के प्रतिनिधि एकजुट होकर इन समस्याओं को परास्त करने के प्रयास करें, दुनिया भर में अधिकाधिक लोग यह अनुभव करने भी लगे हैं जो इस बात से जाहिर है कि वे अपनी सरकारों पर दबाव डालने लगे हैं कि इन समस्याओं के समाधान के लिए विश्वव्यापी सहकारी प्रयास की पहलकदमी में कोई विलंब न किया जाये। इन क्षेत्रों में विभिन्न वर्ग-*हितों का संघर्ष न केवल संयुक्त प्रयास की आवश्यकता की मान्यता के* सीधे विकल्प का रूप तेजी से धारण कर रहा है (उस विचार की लोकप्रियता ऐसी है कि अत्यंत उग्रवादी समूह भी जन-समूहों पर अपना प्रभाव कायम रखने के लिए इसे मान्यता देने को विवश हो रहे हैं) बल्कि सहकारी प्रयास के *साथ तरीके,* पद्धति अथवा रूप के चयन के विकल्प को खोजने में लगे हैं ताकि इन सार्वभौम समस्याओं का समाधान तलाशा जा सके। इस स्थिति में समाजवाद की वैचारिक अवस्थितियों में अपने अभिन्न घटकों के रूप में सार्वत्रिक तत्वों को समाविष्ट करने का प्रयास विशेष रूप से व्यक्त हो रहा है, तथा दुनिया के जनगण के दिमाग में इन सार्वभौम समस्याओं के इर्द-गिर्द चल रहे वैचारिक संघर्ष को तीव्रता प्रदान करने में प्रमुख कारक की भूमिका निभा रहा है। यह प्रतिक्रियावादी शक्तियों को अलग-थलग करने का, विश्व क्रान्तिकारी मजदूर आंदोलन के पक्ष में *नये मित्र प्राप्त* करने का, साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के आधार को विस्तृत करने का, तथा विद्यमान समाजवाद की शक्ति तथा प्रतिष्ठा बढ़ाने का प्रमुख उदाहरण है।

आर्थिक परिवर्तनों की विशिष्टता, समाजवादी जनवाद का विकास तथा सारी

---

1 लियोनिद ब्रेझनेव, "लेनिन के पथ का अनुसरण करते हुए," मास्को, 19[illegible], पृ० 43/3।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति ये सब मिलकर लोगों के चेतना, संघटन तथा दायित्व के स्तर के समक्ष बेहद कठोर मांगें उपस्थित करते हैं। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने इसे इन शब्दों में प्रस्तुत किया : "अनुशासन तथा ठोस सार्वजनिक व्यवस्था के बिना जनवाद की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रत्येक नागरिक का अपने दायित्वों तथा लोगों के हितों के प्रति उत्तर-दायित्वपूर्ण दृष्टिकोण ही समाजवादी जनवाद के सिद्धांतों को तथा व्यक्ति की सच्ची स्वतंत्रता को पूरी तरह मूर्त्त रूप देने का विश्वसनीय आधार निर्मित करता है।"[1]

सामाजिक अनुशासन की ओर प्रवृत्त जन-समूहों की शिक्षा तथा सभी नागरिकों द्वारा समाज के प्रति अपने दायित्वों का पालन समाजवादी जनवाद के और आगे के विकास से पृथक नहीं किये जा सकते। लेनिन ने लिखा : "एक राज्य तभी मज़बूत होता है जब कि जनता राजनीतिक दृष्टि से चेतन होती है। वह तभी मज़बूत होता है जब जनता सब कुछ जानती है तथा हर चीज़ के बारे में राय कायम कर सकती है तथा हर काम चेतन ढंग से कर सकती है।"[2] यह सूत्र राज्य की शक्ति तथा सत्ता के स्रोतों के बारे में नये दृष्टिकोण का सार प्रस्तुत करता है। राजनीतिक चिंतन के संपूर्ण इतिहास में किसी ने भी इस समस्या पर वैसे विचार नहीं किया है, मज़दूरों तथा किसानों के दुनिया के प्रथम राज्य के जीवंत व्यवहार को आधार बनाकर जैसे लेनिन ने किया। एक राज्य तभी मज़बूत होता है जब उसकी जनता सब कुछ जानती हो तथा चेतन रूप से सब कुछ करने को प्रस्तुत हो—लेनिन के निष्कर्ष का यह सार-तत्व है जिसने समाजवादी राज्य तथा वास्तविक जनवाद की समस्या (व्यक्ति के अधिकार एवं दायित्व, जन-समूहों की कम्युनिस्ट शिक्षा तथा सामाजिक-राजनीतिक एवं श्रम-कार्यकलाप, राजकाज, सार्वजनिक जीवन तथा उत्पादन के कार्य-व्यापार को चलाने में इनकी प्रत्यक्ष भागीदारी) को एक-दूसरे से जोड़ दिया। इस लेनिनवादी सिद्धांत को अब सोवियत संघ नये संविधान में प्रतिष्ठापित कर दिया गया है जिसका कार्य सोवियत संघ में समाजवादी जनवाद को गहरा तथा विस्तृत बनाना है।

जैसे-जैसे सोवियत जनता की नयी पीढ़ियाँ—जिन्हें अतीत की सामाजिक परिस्थितियों से भिन्न परिस्थितियों में कम्युनिस्ट शैली का जीना सीखना है, जिन्हें पुरानी पीढ़ियों द्वारा अर्जित ज्ञान-संपदा को आत्मसात् करना है ताकि वे लेनिन के शब्दों में "समृद्ध वर्ग चेतना, चारित्रिक दृढ़ता, सज्ञान तथा व्यापक

1. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज तथा प्रस्ताव, पृष्ठ 103
2. व्ला॰ इ॰ लेनिन, 'सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस,' संकलित रचनाएं, खंड 26, पृष्ठ 256

विश्व-दृष्टि प्राप्त कर सकें"[1]—वयस्कता की अवस्था में पहुँच रही है, वैसे-वैसे नैतिक शिक्षा के कार्य-भार तथा इस क्षेत्र में किये जाने वाले कार्य की मात्रा में भी लगातार वृद्धि हो रही है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 23वीं, 24वीं व 25वीं कांग्रेसों की सामग्री में तथा युवक संघों, युवक कांग्रेसों तथा रैलियों में दिये गये लियोनिद ब्रेझनेव के भाषणों में, और पार्टी के अन्य दस्तावेजों में शिक्षा, युवा लोगों के लालन-पालन तथा उनके जीवन एवं श्रम कार्यकलाप की ज्वलन समस्याओं पर बहुत गंभीरता से ध्यान दिया गया है।

पार्टी दस्तावेजों में देश की युवा पीढ़ी को नया समाज निर्मित करने के राष्ट्रीय अनुष्ठान में संलग्न करने, उन्हें सोवियत समाज की श्रेष्ठ समाजवादी परंपराओं को आत्मसात करने में तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद के क्रांतिकारी सिद्धांत एवं व्यवहार का गहरा ज्ञान प्राप्त करने में मदद करने के सुनिश्चित रूपों तथा विधियों को रेखांकित किया गया है। हम देखते हैं कि एक प्रमुख वैचारिक एवं राजनीतिक कार्य-भार—जो इस तथ्य से जुड़ा हुआ है कि हर आगे आने वाली पीढ़ी एक बदले हुए सामाजिक पर्यावरण में अपने वयस्क जीवन की शुरुआत करती है—को सफलतापूर्वक पूरा कर लिया गया है। यह पर्यावरण जड़ न होकर, बेहद गतिशील है तथा उस पर्यावरण से भिन्न है जो तीस, बीस या केवल दस वर्ष पूर्व विद्यमान था।

लेनिन ने समाज में व्याप्त वास्तविक परिस्थितियों के अनुरूप, युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के रूपों तथा पद्धतियों के निर्धारण की प्रासंगिकता पर निरंतर विचार किया। उन्होंने लिखा : "हमारी पीढ़ी के समक्ष जो हालात हैं वे हमारे पिताओं की पीढ़ी की तुलना में काफी कष्टप्रद हैं। पर एक मायने में हम अपने पिताओं से अधिक भाग्यशाली हैं। हमने सीखना शुरू कर दिया है और तेजी से लड़ना सीख रहे हैं—व्यक्तियों के रूप में लड़ना नहीं, जैसाकि हमारे सर्वश्रेष्ठ पूर्ववर्तियों ने सोचा था, पूंजीवादी भाषणबाजों के नारों के लिए भी नहीं क्योंकि यह हमारी प्रकृति के प्रतिकूल है, बल्कि अपने नारों के लिए, अपने वर्ग के नारों के लिए। हम अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में बेहतर लड़ रहे हैं। हमारे बच्चे हमसे बेहतर लड़ेंगे, और वे विजयी होंगे।"[2]

लेनिन द्वारा निर्धारित कार्य-भार "पहला, सीखना; दूसरा, सीखना; और तीसरा, सीखना..."[3] सोवियत युवकों के लिए निश्चित कार्यक्रम का सार है, ऐसे

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'संविधान-सभा के चुनाव तथा सर्वहारा की तानाशाही', संकलित रचनाएं, खण्ड 30, पृष्ठ 266
2. वी॰ आई॰ लेनिन, 'मजदूर वर्ग और नव-माल्थसवाद', संकलित रचनाएं, खंड 19, पृष्ठ 236
3. वी॰ आई॰ लेनिन, 'चाहे कम हो, पर बेहतर हो,' संकलित रचनाएं, खंड 33, पृष्ठ 488 89

प्रतिकृति उपलब्ध कराता है।

पीढ़ियों का अंतर तथा नयी पीढ़ी व पुरानी पीढ़ी के बीच भयानक संघर्ष आज के पूँजीवादी समाज में अत्यन्त वास्तविक घटनाक्रम है। पूँजीवादी सिद्धान्तकार, जो इसके अस्तित्व को स्वीकार करने को विवश हैं, पूँजीवादी जीवन-पद्धति के खिलाफ कुछ युवा लोगों के विरोध के लज्जाजनक रूपों को रेखांकित करके गौण घटनाओं तथा घटनाक्रियाओं की ओर जनमत को आकर्षित करने के प्रयास कर रहे हैं। दूसरे, वे वर्तमान पूँजीवाद के अंतर्गत पीढ़ियों के अंतर के बुनियादी सामाजिक कारणों के बारे में सुविचारित ढंग से मौन साध लेते हैं और तमाम दोष जनसांख्यिकीय, मनोवैज्ञानिक एवं जैविक कारणों के मत्थे मढ़ने का प्रयास करते हैं, तथा इनका विश्लेषण भी वे व्यापक सामाजिक परिस्थितियों से अलग-अलग करके करते हैं।

युवा-वर्ग का एक खास हिस्सा समाज के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाता है, यह बड़ी सीमा तक उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति से ही निर्धारित होता है। कहना न होगा कि यह अपने आप ही नहीं हो जाता। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि अपनी स्थिति के बारे में युवा लोगों के बोध का स्तर क्या है तथा खास वर्ग उन पर किस सीमा तक वैचारिक प्रभाव डाल रहे हैं। यहाँ हमें युवा लोगों की राजनीतिक एवं वैचारिक अपरिपक्वता, अनुभवहीनता तथा उनमें वर्गाभिमुख दृष्टि के अभाव पर भी विचार करना होगा।

जहाँ तक व्यवहार के लज्जाजनक रूपों का प्रश्न है, वे पूँजीवादी जीवन-पद्धति के क्षय की ही अभिव्यक्ति हैं, विघटन की उपज हैं। सही तौर पर देखें तो यह घटनाक्रम नया नहीं है। अपने समय में मार्क्स ने यह टिप्पणी की थी कि किसी सामाजिक व्यवस्था की असफलता की आलोचना पथभ्रष्ट छिछोरेपन का रूप धारण कर सकती है, जो मौजूदा व्यवस्था की विचारशून्यता (खोखलापन) को अनुभव तो करे ही उसकी खिल्ली भी उड़ाए, किंतु सिर्फ इस उद्देश्य से कि (सभी तर्कसम्मत तथा नैतिक बंधनों से मुक्त होकर वह) क्षयशील अवशेषों का उपहास उड़ाये तथा फिर स्वयं उनके उपहास का विषय बनकर विलुप्त कर दिया जाये।[1]

मार्क्स ने उस सामाजिक अवस्थिति को इस प्रकार परिभाषित किया जोकि पिछले दिनों पश्चिम में मिलती-जुलती घटनाक्रियाओं के प्रति दृष्टिकोण तथा उनके मूल्यांकन के रूप में खूब फली-फूली है। यहाँ सर्वप्रथम इस बात को रेखांकित करने की जरूरत है कि विरोध के ये रूप—जिनका व्यापक क्रांतिकारी भाव से कुछ लेना-देना नहीं होता—सार-तत्व तथा अभिव्यक्ति दोनों ही की दृष्टि से

---

1. कार्ल मार्क्स: "विधि के ऐतिहासिक सम्प्रदाय का दार्शनिक घोषणापत्र," संकलित रचनाएँ, खंड 1, पृष्ठ 205

निम्न-पूँजीवादी होते हैं। जहाँ तक आलोचना की सामाजिक प्रकृति का सवाल है यह एक ऐसी विशिष्ट निम्न-पूँजीवादी प्रतिक्रिया है जो पूँजीवादी जीवन-पद्धति को अस्वीकार न करके, मानव समाज में व्यवहार तथा नैतिकता के सामान्य सार्वत्रिक मानदंडों का अस्वीकार करती है। यह आकस्मिक नहीं है कि पूँजीवादी प्रचारक इसके सवर्द्धन-प्रोत्साहन में हरसंभव साधन का इस्तेमाल कर रहे हैं। यही नहीं, यह प्रवृत्ति कई पूँजीवादी कंपनियों के लिए आय का अतिरिक्त स्रोत बन गई है जोकि पथभ्रष्ट छिछोरपन को बढ़ावा देकर मनोरंजन उद्योग में मोटे मुनाफ़े कमाने के लिए इसका दोहन कर रही हैं।

लेकिन सवाल सिर्फ़ इसके व्यावसायिक पहलू का ही नहीं है। शासक वर्ग के और भी अधिक गंभीर सामाजिक तथा राजनीतिक इरादे हैं। इजारेदारी पूँजीपति वर्ग, जोकि वर्गीय अनुभवसंपदा तथा युक्तिचालन की सामर्थ्य से संपन्न है, को इस बात का पूरा अहसास होता है कि विरोध के ये रूप, उसके प्रभुत्व के किसी भी स्तंभ को प्रभावित करने की बात तो दूर, वस्तुतः उसके लिए लाभदायक हैं क्योंकि ये युवावर्ग तथा जनमत के बड़े भाग का ध्यान वास्तविक समस्याओं से हटाने में सहायक होते हैं। व्यवहार के कतिपय लज्जाजनक रूपों के ख़िलाफ़ जनमत का उपयोग करने के साथ ही पूँजीपति वर्ग का उद्देश्य वास्तविक क्रांतिकारी आचार तथा विचारों को भी बदनाम करना होता है।

आज तक का रिकार्ड विश्वसनीय ढंग से प्रदर्शित करता है कि सही सामाजिक अभिमुखता से वंचित होकर युवा समूह सभी किस्म की छद्म क्रांतिकारी तथा फ़ासिस्ट प्रवृत्तियों के सहज शिकार हो जाते हैं। ये प्रवृत्तियाँ उन युवा लोगों का इस्तेमाल अपने स्वार्थपरक लक्ष्यों के लिए करती हैं जो अपनी वैचारिक तथा नैतिक अस्मिता खो चुके हैं। हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि क़ानून-व्यवस्था बनाये रखने तथा आचार को सही करने के नाम पर इजारेदार पूँजीपति-वर्ग अपनी दडात्मक शक्तियाँ निर्मित कर रहा है ताकि उन्हें वास्तविक क्रांतिकारी तथा प्रगतिशील संगठनों के ख़िलाफ़ लगा सके और इस तरह सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में सक्रिय संलग्नता की ओर से युवा पीढ़ी का ध्यान हटा सके।

4. विचारधारा तथा सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परंपरा

उन्नत समाजवाद के अंतर्गत वैचारिक कार्यकलाप का परिचालन एवं शिक्षा के क्षेत्र में बढ़े हुए कार्यभारों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। सा[illegible] जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगतिशील प्रवृत्तियों के [illegible] तथा [illegible] तथा उन्हें सांस्कृतिक स्तरों द्वारा सृजित महा[illegible] ही असल महत्व की बात है।

लेनिन अनुभव तथा ज्ञान को उच्चतम मानवीय उपलब्धि मानते थे।[1] किंतु उन्होंने साधारण ज्ञान तथा विस्तृत सांस्कृतिक क्षितिजों मात्र के लिए लोगों का सीखने के लिए आह्वान नहीं किया। काम करना सीखना, प्रबंध करना सीखना, कम्युनिज्म के विज्ञान को जानना—लेनिन ने शिक्षा, ज्ञानार्जन तथा संस्कृति की समाजवादी निर्माण की सुनिश्चित समस्याओं के समाधान के साथ जोड़कर जनता से जो अपेक्षाएँ रखीं उसका सार ये सूक्तियाँ हैं। जब लोग कुशलता के ऊँचे स्तर पर सोचते व कार्य करते हैं, जब प्रबंधन की कला तथा मानव संबंध ऊँचे स्तर पर पहुँच जाते हैं तो सामाजिक कार्यकलाप भी अपने सर्वोच्च तथा कारगर रूप में पहुँच जाते हैं।

मार्क्सवादी अर्थ में संस्कृति मानव-चेतना की मात्र एक परिघटना नहीं होती बल्कि मानवीय कार्य-व्यापार की ऐसी सुनिश्चित क़िस्म होती है जिसका सुपरिभाषित सामाजिक चरित्र होता है। वास्तविक दुनिया की चेतना का एकरूप तथा ज्ञान का कुल योगफल होने के साथ-साथ यह सामाजिक कार्य-व्यापार का सुनिश्चित रूप तथा किस्म भी होती है जो काम के उच्च कुशलता के मानदंडों में तथा सामूहिक जीवन के नियमों द्वारा नियमित मानव-संबंधों के चरित्र में, और परंपराओं व आदतों में मूर्त्त रूप ग्रहण करती है। लेनिन ने जब इस बात पर ज़ोर दिया कि संस्कृति के मामलों में जीता हुआ क्षेत्र वही माना जा सकता है जो बहुतों के लिए आदत का रूप ग्रहण कर चुका है, तो वह संस्कृति की विशिष्ट प्रकृति की इस व्याख्या की ओर ही संकेत कर रहे थे। संस्कृति के विकास को उन्होंने नौकरशाही के मनबहलावों के लिए सबसे अधिक कारगर अवरोधक के रूप में देखा।

मानवीय कार्य-व्यापार के सुनिश्चित रूप, क़िस्म तथा स्वभाव के एकरूप के नाते संस्कृति की व्यावहारिक समझ की दृष्टि से देखें तो समाजवादी समाज के जीवन में इसका बढ़ता हुआ महत्व और अधिक उजागर हो जाता है। उत्पादन की कुशलता भी इस बात पर निर्भर है कि सांस्कृतिक समस्याओं का समाधान कितना सफलतापूर्वक कर लिया जाता है।

समाज की आध्यात्मिक संपदा तथा उसकी सांस्कृतिक संभावनामय क्षमता ही उक्त समाज के मुक्त विकास के सटीक मापदंड को बनाते हैं जो इस बात का सूचकांक है कि विचारधारा कितनी प्रगतिशील है। समाजवादी क्रांति की तैयारियों तथा उसके बाद समाजवादी निर्माण ने कम्युनिस्ट पार्टी के लिए यह परमावश्यक बना दिया कि वह सांस्कृतिक विकास का व्यापक कार्यक्रम तैयार करे, विचारधारा तथा संस्कृति के अंतःसंबंधों की विभिन्न प्रमुख समस्याओं के संदर्भ में अपने दृष्टिकोण को परिभाषित करे।

1. देखें वी० आई० लेनिन, 'मास्को के मजदूर संघों तथा फ़ैक्टरी समितियों की चौथी कांग्रेस,' संकलित रचनाएँ, खंड 27, पृष्ठ 475

वैज्ञानिक प्रणाली के रूप में विचारधारा की लेनिन द्वारा प्रस्तुत व्याख्या में परंपराओं तथा सांस्कृतिक प्रगति की निरंतरता का प्रश्न सम्मिलित है, क्योंकि वैज्ञानिक विचारों की कोई भी प्रणाली विश्व सभ्यता की मुख्य धारा तथा मानवता द्वारा अर्जित आध्यात्मिक मूल्यों की संपदा से कटकर, शून्य में से पैदा नहीं होती। मार्क्सवाद के उदय की कहानी एक अच्छा उदाहरण है। कोई भी क्रांति द्वंद्वात्मक होती है। एक ओर तो क्रांति परंपरा से पूर्ण संबंध-विच्छेद को ध्वनित करती है, तो दूसरी ओर नयी अंतर्वस्तु के साथ परंपराओं की निरंतरता, विकास एवं समृद्धि इसमें निहित होती है। इस प्रश्न के सुनिश्चित समाधान के लिए ऐतिहासिक परंपरा मात्र के प्रति स्वायत्त दृष्टिकोण की आवश्यकता है जोकि सामाजिक विकास में इसकी भूमिका तथा इसके चरित्र की पहचान कर सके।

जब मार्क्स ने परंपरा को जीवित मनुष्यों के मस्तिष्कों को आक्रांत करने वाले दु:स्वप्न के रूप में चित्रित किया था तो उस खास संदर्भ में परंपरा पुराणपंथी समझ की अभिव्यक्ति के रूप में उभरी थी जोकि मृतप्राय सामाजिक रूपों को बनाये रखने की पद्धति, तथा शासक वर्ग की आध्यात्मिक तानाशाही कायम रखने का साधन थी क्योंकि इस वर्ग के व्यापक हित इससे जुड़े हुए थे। मार्क्स ने 1948 और 1952 के बीच फ्रांस में हुए वर्ग-संघर्ष के रिकार्ड का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया तथा यह सिद्ध किया कि एक मिथक में रूपांतरित परंपरा की पुराणपंथी समझ ने लुई बोनापार्ट को सत्ता में बिठा दिया। फ्रांसीसी किसान वर्ग, जिसने अपनी कल्पना में दो बोनापार्टों को एक मान लिया, के पूर्वाग्रहों ने भी बोनापार्ट को सत्ता में पहुँचाने में कोई छोटी भूमिका नहीं निभाई। लेनिन ने इस तरह के पूर्वाग्रह के खतरे की ओर बार-बार ध्यान दिलाया तथा उन्होंने अत्यंत प्रतिक्रियावादी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इसका दोहन किये जाने के खतरे का भी उल्लेख किया। विजयी अक्तूबर समाजवादी क्रांति के तुरंत बाद लेनिन ने रेखांकित किया कि पूँजी की सत्ता को पुन: स्थापित करने के उद्देश्य से प्रतिक्रांति किसानों के पूर्वाग्रहों पर—उनके सामान्य विवेक पर नहीं—भरोसा करने की, उन पर आश्रित होने की चेष्टा करेगी।[1]

उथल-पुथल के काल में, जबकि पुराने की तुलना में नया अक्सर कमजोर होता है, पूर्वाग्रह विशेष रूप से खतरनाक होते हैं; जबकि नयी सामाजिक प्रवृत्तियाँ जन-चेतना में तब तक निश्चित रूप धारण नहीं कर पायी होती हैं। ऐसी स्थिति तब प्रकट होती है जबकि, लेनिन के शब्दों में, संपूर्ण पुरानी व्यवस्था उलट-पुलट हो चुकी होती है, तथा जब जन-समूह—जिनका लालन-पालन पुरानी

1. देखें वी० आई० लेनिन, 'प्रौढ़ शिक्षा की प्रथम अखिल रूसी कांग्रेस,' संकलित रचनाएँ, खंड 29, पृष्ठ 369

व्यवस्था मे हुआ है, जिन्होंने माँ के दूध के साथ ही उस व्यवस्था के सिद्धांतों, आदतों, परंपराओं तथा आस्थाओं को आत्मसात कर लिया था—यह नहीं देखते तथा नहीं देख सकते कि किस क़िस्म की नयी व्यवस्था आकार ग्रहण कर रही है···उथल-पुथल के कालों की जो विशिष्टता है गणनातीत तथा अतिशय तीव्र दुर्गति उससे मुक्ति दिलाने में कौन-सी सामाजिक शक्तियाँ समर्थ हैं।[1] इस सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन में लेनिन 1861 के पश्चात् के रूस के पिछड़े हुए पितृक किसान वर्ग की अवस्थिति का उल्लेख कर रहे थे जब दास-प्रथा का उन्मूलन हो चुका था तथा पूंजी का विकास अपनी आरंभिक अवस्था में था। लेकिन यह वर्णन निस्संदेह एक ख़ास ऐतिहासिक स्थिति के मूल्यांकन के चौखटे का अतिक्रमण करता है तथा किसी भी उथल-पुथल के युग की सामाजिक चेतना तथा मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए इसकी सामान्य पद्धतिमूलक सार्थकता है। सामाजिक उथल-पुथल के काल खंडों मे ही कुछ नया घटित होता है जोकि पुरानी व्यवस्था में अस्तित्व में आयी विश्वासों तथा सिद्धांतों के प्रणाली में ठीक नहीं बैठता है, तथा पूर्वाग्रह जनचेतना को आक्रांत किये रहते हैं और बहुधा मिथकों एवं रूमानी आदर्शीकरण का रूप धारण कर लेते हैं, अतीत की हर वस्तु से गौरव-गान (प्रशमंडन) का रूप धारण कर लेते हैं। सामाजिक-राजनीतिक अर्थों में यह बुनियादी महत्व की बात नहीं कि ये पूर्वाग्रह एवं मिथक पराश्रयी सोच-विचार के कारण स्वीकार किये जाते हैं अथवा संबंधित व्यक्तियों की अपरिपक्वता तथा अज्ञान के कारण ऐसा होता है, हालांकि एक पराश्रयी (चापलूस) व्यक्ति तथा अपने ही भ्रमों की गिरफ़्त में फँसे व्यक्ति के बीच ज़बर्दस्त फ़ासला होता है।

सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष तथा नये समाज के निर्माण की दृष्टि से इस प्रकार की रूढ़िवादी, तथा प्रतिक्रियावादी भी, परंपराओं पर विजय प्राप्त करना शिक्षा का प्रमुख कार्य-भार है, तथा जनचेतना द्वारा समाजवादी चेतना को अंगीकार किये जाने की अपरिहार्य शर्त भी। लेनिन ने यह लिखकर कि : "आदत (रिवाज) और रूढ़िवाद की विशाल शक्ति पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है···"[2] इस समस्या की अनिश्चय जटिलता तथा कठिनाई को ही रेखांकित किया था।

साथ ही, इस मुद्दे के बारे में मार्क्सवादी दृष्टि परंपरावाद-विरोधी भी नहीं है। परंपरा सामाजिक अनुभव की वाहक तथा खान भी है और इस रूप में यह वर्तमान के तथा भविष्य के कार्य-भारों की पूर्ति में सहायक हो सकती है। वह परंपरा जिसमें विकास, नवीनीकरण तथा समृद्धि की सामर्थ्य है जीवन परंपरा

1 वी० आई० लेनिन, '[illegible] और उनका युग,' संकलित रचनाएँ, खंड 17, पृष्ठ 51।

2 वी० आई० लेनिन, '[illegible],' संकलित रचनाएँ, खंड 29, पृष्ठ 41।

होती है जिसके बिना सामाजिक विकास की निरंतरता असंभव है; समाजवादी समाज समेत किसी भी समाज की सामाजिक प्रगति असंभव है। यह इस समस्या के प्रति मार्क्स के नज़रिये का सार है। लेनिन ने यह सिद्ध करके कि रूस के सामाजिक-जनवादी क्रांतिकारी-जनवादी परंपरा के प्रतिनिधि तथा उत्तराधिकारी थे मार्क्स के नज़रिये को विकसित ही किया।

रूसी सामाजिक-जनवादियों द्वारा परंपरा (धरोहर) के कथित अस्वीकार के बारे में, रूसी समाज के श्रेष्ठतम तथा सबसे अधिक उन्नत हिस्से की परंपराओं से संबंध-विच्छेद कर लेने, तथा जनवादी निरंतरता (प्रवाह) को खंडित कर देने से संबंधित निराधार वक्तव्यों को लेनिन ने कपोल कल्पना, और तिस पर भी घटिया तथा निकृष्ट कल्पना के विशेषणों से सम्मानित किया। लेनिन ने यह साबित कर दिया कि रूसी मार्क्सवादियों ने पूर्ववर्ती पीढ़ियों की जनवादी परंपराओं को विरासत में प्राप्त किया। मार्क्सवादी दृष्टि के अनुसार सचेतन रूप से विरासत में ग्रहण की गयी परंपरा ही जीवंत परंपरा होती है जोकि मानवीय ज्ञान की नींव बनती है। सोवियत समाज, ऐसा समाज होने के नाते जहाँ कम्युनिस्ट पार्टी तथा मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी परंपराओं का वर्चस्व है, इस तरह की परंपराओं को विरासत में प्राप्त करके विकसित एवं समृद्ध करता है।

लेनिन द्वारा स्थापित कम्युनिस्ट पार्टी ने सदा ही क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादी कार्यक्रम (जिसे आंदोलन की निरंतरता को बनाये रखना है) के परचम के तले काम किया है···।"[1] पार्टी कार्यक्रमों में क्रांतिकारी आंदोलन की निरंतरता तथा समाजवादी और कम्युनिस्ट निर्माण की सुसंगत क्रमिकता व्यक्त तथा रूपायित होती है। अक्तूबर समाजवादी क्रांति की 50वीं वर्षगाँठ के अवसर पर सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति की प्रस्थापनाओं में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि : "समाजवाद के विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अवस्थाओं के अनुरूप, ये तीनों पार्टी कार्यक्रम पार्टी के क्रांतिकारी चिंतन तथा क्रांतिकारी व्यवहार की घनीभूत अभिव्यक्ति हैं।"[2]

लेनिन ने "बोल्शेविकवाद की समस्त परंपराओं"[3] को कायम रखने व समृद्ध करने को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना। परंपराओं को क़ायम रखना उपलब्ध क्रांतिकारी अनुभव को आत्मसात करने का एक रूप है, नयी ऐतिहासिक स्थिति—

---

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'इस्क्रा तथा ज़ार्या के संपादकमंडल की घोषणा का मसविदा,' संकलित रचनाएँ, खंड 4, पृष्ठ 322
2. महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की पचासवीं वर्षगाँठ, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति की थीसिस, मास्को, 1970, पृष्ठ 4।
3. वी॰ आई॰ लेनिन, 'जो हमें ध्वस्त करना चाहते हैं,' संकलित रचनाएँ, खंड 17, पृ॰ 81

परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियाँ जिसे विशिष्ट बनाती हैं—के संदर्भ में उसे व्यावहारिक रूप से लागू करने का एक रूप है। परंपराओं का संवर्द्धन तथा उनकी निरंतरता को बनाये रखना एक सृजनात्मक प्रयास है, *गुज़री हुई चीजों की नक़ल* प्रस्तुत करने से जिसका कोई लेना-देना नहीं है। परंपरा को सुरक्षित रखने तथा बनाये रखने का अर्थ है सृजनात्मक रूप से उसे विकसित करना। लेनिन के शब्दों में, ''क्रांति की परंपराओं को सुरक्षित रखना, यह जानना कि सतत प्रचार व आंदोलन में, तथा पुराने शासन के ख़िलाफ प्रत्यक्ष एवं आक्रामक संघर्ष की परिस्थितियों से जनसमूहों को परिचित कराने में इनका योगफल कैसे किया जाय एक बात है, किंतु परिस्थितियों के योगफल से किसी नारे को अलग-थलग करके—जिन्होंने उस नारे को बढ़ाया ही नहीं अपितु उसकी सफलता भी सुनिश्चित की—उसे दुहराना तथा तात्त्विक रूप से भिन्न परिस्थितियों पर उसे लागू करना एकदम दूसरी बात है।''[1] अतः परिवर्तित परिस्थितियों के प्रभाव की संभावनाओं को स्वीकार करने के लिए *यह ज़रूरी है कि नयी सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक* स्थिति पर विचार किया जाय, उसके सार को ग्रहण किया जाय।

परंपराओं व निरंतरता के प्रश्न को किसी भी तरह ऐतिहासिक अमूर्तीकरण नहीं माना जा सकता। इसकी प्रासंगिकता बरकरार है क्योंकि अतीत तथा वर्तमान की समझ तथा भविष्य में घटित होने वाली चीजों को झाँकी प्रस्तुत कर पाने में अन्तर्भूत अन्योन्याश्रय होता है। आज इस प्रश्न ने अतिरिक्त महत्व इसलिए धारण कर लिया है कि वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति तथा ऊपर उठते हुए जीवन-स्तरों ने मिलकर *लाखों लोगों के जीवन में भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के* सम्मिश्रण को व्यावहारिक सार्थकता प्रदान कर दी है। इस समस्या का सीधा असर बुद्धिजीवी वर्ग की प्रतिष्ठा पर पड़ता है जोकि आध्यात्मिक उत्पादन में प्रत्यक्ष रूप से संलग्न होता है। उक्त उत्पादन में यह संलग्नता ऐसी चीज है जो उन्हें जनता के आध्यात्मिक जीवन के इतिहास में और अधिक रुचि प्रदर्शन करने को प्रेरित करती है। इस क्षेत्र में जब भी और जहाँ भी, सुपरिभाषित मार्क्सवादी-लेनिनवादी निर्देशक सिद्धांतों तथा सुस्पष्ट सामाजिक कसौटियों के आधार पर अध्ययन तथा शोध किया जाता है तो इनके अच्छे परिणाम सामने आते हैं जोकि आज की समाजवादी संस्कृति को अतीत की श्रेष्ठतम संस्कृति के योगदान के प्रतीक बनते हैं।

अतीत के झाड़ बुहार परित्याग के शून्यवादी नारे की काट अतीत के प्रति सर्वाहारी दृष्टिकोण से नहीं की जा सकती (इस प्रकार की आत्यंतिक स्थितियाँ वस्तुतः सिक्के के दो पहलुओं से अधिक कुछ नहीं होतीं) *बल्कि मानवता द्वारा* अभिलिखित इतिहास के दौरान संचित ज्ञान-संपदा पर अधिकार प्राप्त करने, सर्वहारा की दृष्टि से परंपराओं के श्रेष्ठ उदाहरणों को विकसित करने से संबंधित

1. वी० आई० लेनिन, 'बहिष्कार के ख़िलाफ़,' संकलित रचनाएँ, खंड 13, पृष्ठ 39-40

लेनिनवादी सिद्धांत से ही की जा सकती है। अतीत की अपनी विरासत के प्रति नज़रिया, तथा उससे क्या लिया जाय व विकसित किया जाय दरअसल विश्वदृष्टि ही निर्धारित करती है।

इस समस्या की एक और विशिष्ट भंगिमा है। ऐतिहासिक अतीत, संस्कृति एवं भाषा का इतिहास अपनी तर्कसम्मत अंतर्वस्तु के अलावा भावनात्मक क्षेत्र को खासकर जनता के राष्ट्रीय उद्वेगों को भी प्रत्यक्षतया प्रभावित करते हैं। लेनिन ने इस बात पर ज़ोर दिया कि : "अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति ग़ैर-राष्ट्रीय नहीं होती।"[1] जन-चेतना में इन समस्याओं के संज्ञानात्मक ग्रहण की विधियों पर काफी असर डालने वाली इस परिस्थिति को नज़रंदाज़ करना ग़लत होगा। जब तक राष्ट्रों का अस्तित्व है, जनता की राष्ट्रीय भावनाएँ भी किसी-न-किसी रूप में बनी रहेंगी। जैसाकि लियोनिद ब्रेझनेव ने नये संविधान को स्वीकार किये जाने के समय कहा : "सोवियत जनगण की सामाजिक एवं राजनीतिक एकता का निहितार्थ यह नहीं है कि जातीय विशिष्टता विलुप्त हो जायेगी।"[2]

सोवियत संघ में जातीय समस्या का समाधान पूर्णतया व अटलनीय रूप में कर लिया गया है—ख़ासकर उस रूप में जिसमें कि ज़ारशाही के अधीन शोषक वर्गों द्वारा किया जाने वाला सामाजिक उत्पीड़न जातीय उत्पीड़न से और भी गहरा दिया जाता था। वर्तमान में जनगण के नये ऐतिहासिक समुदाय—सोवियत जनगण का—को सोवियत संविधान में रूपायित किया गया है। फिर भी इसका अर्थ यह नहीं है कि सोवियत समाज जातीय संबंधों के विकास की दृष्टि से अब पूरी तरह समस्या-मुक्त हो गया है। लियोनिद ब्रेझनेव ने कहा था : "हमारे संघीय राज्य में कुछ वस्तुगत समस्याएँ हैं—जैसे अलग-अलग जातियों तथा जातीयताओं (राष्ट्रीयताओं) को विकसित करने के सही तरीकों की तलाश, तथा प्रत्येक जाति एवं जातीयता के हितों तथा समूचे सोवियत जनगण के साझे हितों के बीच सही संतुलन कायम कर पाना।"[3] यही कारण है कि वैचारिक तथा राजनीतिक-शैक्षणिक दृष्टिकोण से, यह बेहद महत्वपूर्ण है कि जातीय संबंधों के विकास को प्रभावित करने वाली सभी समस्याओं के प्रति सुसंगत अंतर्राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण विकसित किया जाय।

इस विषय में अंतर्राष्ट्रीयतावादी अवस्थिति से किसी भी तरह के प्रस्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय संकीर्णता, अहंमन्यता तथा अद्वितीय होने के भ्रमों के रूप

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'जातीय समस्या के बारे में आलोचनात्मक टिप्पणी,' संकलित रचनाएँ, खंड 20, पृष्ठ 24
2. लियोनिद ब्रेझनेव, 'सोवियत संघ के संविधान के मसविदे पर राष्ट्रव्यापी बहस के परिणाम,' मास्को, 1977, पृष्ठ 15
3. लियोनिद ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण करते हुए,' मास्को, 1975, पृष्ठ 76

परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियाँ जिसे विशिष्ट बनाती हैं—के संदर्भ में उसे व्यावहारिक रूप से लागू करने का एक रूप है। परंपराओं का संवर्द्धन तथा उनकी निरंतरता को बनाये रखना एक सृजनात्मक प्रयास है, गुजरी हुई चीजों की नक़ल प्रस्तुत करने से जिसका कोई लेना-देना नहीं है। परंपरा को सुरक्षित रखने तथा बनाये रखने का अर्थ है सृजनात्मक रूप से उसे विकसित करना। लेनिन के शब्दों में, "क्रांति की परंपराओं को सुरक्षित रखना, यह जानना कि सतत प्रचार व आंदोलन में, तथा पुराने शासन के ख़िलाफ़ प्रत्यक्ष एवं आक्रामक संघर्ष की परिस्थितियों से जनसमूहों को परिचित कराने में इनका योगफल कैसे किया जाय एक बात है, किंतु परिस्थितियों के योगफल से किसी नारे को अलग-थलग करके—जिन्होंने उस नारे को बढ़ाया ही नहीं अपितु उसकी सफलता भी सुनिश्चित की—उसे दुहराना तथा तात्त्विक रूप से भिन्न परिस्थितियों पर उसे लागू करना एकदम दूसरी बात है।"[1] अतः परिवर्तित परिस्थितियों के प्रभाव की संभावनाओं को स्वीकार करने के लिए यह जरूरी है कि नयी सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति पर विचार किया जाय, उसके सार को ग्रहण किया जाय।

परंपराओं व निरंतरता के प्रश्न को किसी भी तरह ऐतिहासिक अमूर्तीकरण नहीं माना जा सकता। इसकी प्रासंगिकता बरकरार है क्योंकि अतीत तथा वर्तमान की समझ तथा भविष्य में घटित होने वाली चीजों की झाँकी प्रस्तुत कर पाने में अंतर्भूत अन्योन्याश्रय होता है। आज इस प्रश्न ने अतिरिक्त महत्व इसलिए धारण कर लिया है कि वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति तथा ऊपर उठते हुए जीवन-स्तरों ने मिलकर लाखों लोगों के जीवन में भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के सम्मिश्रण को व्यावहारिक सार्थकता प्रदान कर दी है। इस समस्या का सीधा असर बुद्धिजीवी वर्ग की प्रतिष्ठा पर पड़ता है जोकि आध्यात्मिक उत्पादन में प्रत्यक्ष रूप से संलग्न होता है। उक्त उत्पादन में यह संलग्नता ऐसी चीज है जो उन्हें जनता के आध्यात्मिक जीवन के इतिहास में और अधिक रुचि प्रदर्शन करने को प्रेरित करती है। इस क्षेत्र में जब भी और जहाँ भी, सुपरिभाषित मार्क्सवादी-लेनिनवादी निर्देशक सिद्धांतों तथा सुस्पष्ट सामाजिक कसौटियों के आधार पर अध्ययन तथा शोध किया जाता है तो इनके अच्छे परिणाम सामने आते हैं जोकि आज की समाजवादी संस्कृति को अतीत की श्रेष्ठतम संस्कृति के योगदान के प्रतीक बनते हैं।

अतीत के झाड़-बुहार परित्याग के शून्यवादी नारे की
सर्वहारी दृष्टिकोण से नहीं की जा सकती (इस प्रकार
वस्तुतः सिक्के के दो पहलुओं से अधिक कुछ
अभिलिखित इतिहास के दौरान संचित ज्ञा
सर्वहारा की दृष्टि से परंपराओं के श्रेष्ठ

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'बहिष्कार के ख़िलाफ़,'

संयुक्त मोर्चा बनाना चाहिए तथा अंतर्राष्ट्रीयतावाद की अवस्थितियों से उनके साथ संघर्ष करना चाहिए। राष्ट्रवाद की सफलतापूर्वक काट अंतर्राष्ट्रीयतावाद द्वारा ही की जा सकती है।

लेनिन ने बार-बार रेखांकित किया कि समस्या का मर्म "वास्तविक रूप से (कर्म में) अंतर्राष्ट्रीयतावादी बन पाने की सामर्थ्य है,"[1] लघु-राष्ट्र संकीर्णता, अलगाव तथा अलग-थलग पड़ने के खिलाफ संघर्ष करने की, संपूर्ण एवं व्यापक स्तर पर विचार करने की तथा खास हित को व्यापक हित का सहायक बना पाने की सामर्थ्य है।"[2]

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने जनसमूहों की देशभक्तिपूर्ण तथा अंतर्राष्ट्रीयतावादी शिक्षा के प्रश्नों की विस्तार के साथ पड़ताल की तथा देशव्यापी पार्टी संगठनों द्वारा हाल के वर्षों में वैचारिक एवं शैक्षणिक कार्य के महत्वपूर्ण क्षेत्र में अर्जित अनुभव संपदा का विश्लेषण करके निकट भविष्य के लिए पार्टी के कार्यभारों की रूपरेखा प्रस्तुत की। कांग्रेस में प्रस्तुत सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के प्रतिवेदन में जनसमूहों की देशभक्तिपूर्ण शिक्षा तथा उनकी अंतर्राष्ट्रीयतावादी शिक्षा की अविसर्जनीय एकता से संबंधित प्रस्थापना का जो खुलासा किया गया था उसका बुनियादी महत्व था। ये एक ही समस्या के दो पक्ष हैं जिन्हें अलगाया नहीं जा सकता तथा जिनका समाधान इस अविसर्जनीय एकता में ही संभव है।

उन्नत समाज के अंतर्गत मानव-जीवन के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक कारकों की भूमिका तथा सार्थकता का विकास होता है तथा समाज की रुचि संस्कृति की व्यापक विविधता व समृद्धि में तथा समाज के सदस्यों द्वारा इसके मूल्यों के गहरे आत्मसात्करण में निरंतर बढ़ती जाती है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति तथा भौतिक एवं तकनीकी सुविधाओं का तेज विस्तार मिलकर आध्यात्मिक उत्पादन के लिए नयी और बेहतर प्रौद्योगिक परिस्थिति का निर्माण करते हैं, ऐसी परिस्थितियों का जो कई मायनों में बेजोड़ तथा अभूतपूर्व होती हैं। जाहिर है कि आध्यात्मिक उत्पादन के क्षेत्र में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के सामाजिक प्रभावों में भी बुनियादी बदलाव आता है तथा विभिन्न सामाजिक-आर्थिक एवं सामाजिक संरचनाओं में वे उसी तरह संशोधित-परिवर्द्धित होते हैं जैसे कि आधुनिक समाज के जीवन के अन्य क्षेत्रों में।

विद्यमान समाजवाद के अनुभव ने सामाजिक कार्यकलाप के सर्वाधिक जटिल

---

1. वी० आई० लेनिन, 'हमारी क्रांति में सर्वहारा के कार्यभार,' संकलित रचनाएँ, खंड 24, पृष्ठ 82
2. वी० आई० लेनिन, 'आत्म निर्णय की बहस का सारांश,' संकलित रचनाएं', खंड 22, पृष्ठ 347

में विघटन पैदा हो सकता है। इन नकारात्मक घटनाक्रियाओं तथा विघटनों के कारणों की जड़ें निर्विवाद रूप से संकीर्ण मनोवृत्तियों तथा आत्मपरक भावनाओं व राष्ट्रवादी पूर्वाग्रहों में देखी जा सकती हैं जिन पर अभी तक पूरी तरह से विजय प्राप्त नहीं की जा सकी है तथा जिन्हें विदेशों से जारी सोवियत-विरोधी प्रचार द्वारा हवा दी जा रही है।

मार्क्सवादियों ने इस तथ्य को हमेशा ही स्वयंसिद्ध माना है कि राष्ट्रीय भावनाएँ बहु-आयामी तथा जटिल समस्या होती हैं जिसके तर्कसम्मत तथा भावनात्मक दोनों ही पहलू होते हैं। इन्हें नजरंदाज करना तो गलत है ही, इनके साथ खिलवाड़ करना भी गलत है क्योंकि इस तरह की खिलवाड़ का परिणाम यह होता है कि राष्ट्रीय भावनाएँ राष्ट्रवादी रंग में रँग जाती हैं। तब यह और भी अस्वीकार्य हो जाता है जब राष्ट्रीय भावनाओं को मनमाने ढंग से सकुचित कर दिया जाता है तथा उनकी सामाजिक अंतर्वस्तु का क्षय हो जाता है और जाने-अनजाने में इन्हें सोवियत देशभक्ति—मेहनतकश जनता के राष्ट्रीय गर्व—की समझ के लेनिनवादी सार-तत्त्व के विरुद्ध खड़ा कर दिया जाता है।

सोवियत मनुष्य के देशभक्तिपूर्ण गर्व का स्रोत सोवियत जनता की समाजवादी उपलब्धियाँ, उनकी क्रान्तिकारी, जनवादी एवं प्रगतिशील परम्पराएँ हैं। अतीत की सांस्कृतिक धरोहर में से मार्क्सवादी समाजवादी, जनवादी तथा प्रगतिशील तत्त्वों को एक तरफ निकालकर हम उस चीज की भर्त्सना करते हैं जो प्रतिक्रियावादी है अथवा जो मेहनतकश जनता को शोषक वर्गों के अधीन करने में सहायक है, जातीय तथा राष्ट्रवादी आधारों पर उन्हें विभाजित करती है। जो समाजवादी तथा अन्तर्राष्ट्रीयतावादी है वह सही मायने में देशभक्तिपूर्ण है तथा अतीत के संदर्भ में जो कुछ भी क्रान्तिकारी, जनवादी तथा प्रगतिशील है वह सब वर्तमान सोवियत संस्कृति को वास्तविक आध्यात्मिक मूल्यों से समृद्ध करता है।

मौजूदा समय में राष्ट्रीय समस्या समाजवादी दुनिया तथा पूँजीवादी दुनिया के बीच गहन वैचारिक तथा राजनीतिक संघर्ष का स्थल बनी हुई है। राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों के खिलाफ संघर्ष पूँजीवादी विचारधारा के खिलाफ अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष का प्रमुख पहलू है। पूँजीवादी राष्ट्रवाद तथा सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद न केवल विरोधी अवधारणाएँ हैं बल्कि ये दो ध्रुवीकृत विश्वदृष्टियाँ हैं। कम्युनिस्टों के पास किसी भी रूप में उभरने वाली किसी भी प्रकार की राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों के खिलाफ कारगर तथा परखा हुआ हथियार है। एक बड़े राष्ट्र के कम्युनिस्टों को सबसे पहले अपने किस्म की अंधराष्ट्रवादी अभिव्यक्तियों का विरोध करना चाहिए, जब कि छोटे राष्ट्रों के कम्युनिस्टों को राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों—राष्ट्रवादी पूर्वाग्रहों तथा अलगाववाद—से संघर्ष करना चाहिए। लेनिन ने यह सिखाया था कि कम्युनिस्टों को किसी भी किस्म की राष्ट्रवादी अभिव्यक्तियों के खिलाफ

एवं राजनीतिक शिक्षा को सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक कार्य से जोड़ना जरूरी बन जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि निरक्षरता दूर हो जाने पर राजनीतिक शिक्षा के साथ सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक कार्य को जोड़ने की प्रासंगिकता समाप्त हो जायेगी। इसके विपरीत, यह कार्य-भार क्षणिक अवस्था नहीं है बल्कि ऐसा सतत प्रयत्न है जोकि सामाजिक विकास की हर नयी व अगली अवस्था में एक नये रूप में व्यक्त होता है। चूँकि सोवियत संघ ने पूर्णतया विकसित समाजवादी समाज का निर्माण कर लिया है, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी अब वैचारिक एवं शैक्षणिक कार्य के प्रश्नों का हल जन-शिक्षा को और अधिक विकसित करने, सांस्कृतिक जीवन का उन्नयन करने, देश की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक संभावनापूर्ण क्षमताओं में व्यापक बढ़ोतरी करने के कार्य-भारों के साथ इनकी अभिन्न एकता के संदर्भ में करने के प्रयास कर रही है।

संस्कृति का स्तर जितना अधिक ऊँचा तथा व्यक्ति का विकास जितना अधिक समग्र व संतुलित होगा, समाजवादी समाज में राजनीतिक शिक्षा तथा लालन-पालन के कार्य-भारों के समाधान की परिस्थितियाँ उतनी ही अधिक अच्छी होंगी। यही नहीं, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक मानदंडों का ऊँचा स्तर जन-समूहों की राजनीतिक शिक्षा की अंतर्वस्तु, पद्धतियों तथा रूपों से अधिक कठोर अपेक्षाएँ भी करता है ताकि जन-समूहों की बढ़ी हुई आध्यात्मिक आवश्यकताओं के साथ इनका तादात्म्य व तदनुरूपता कायम हो सके। संस्कृति एवं राजनीतिक शिक्षा के संबंध जड़ नहीं होते बल्कि द्वंद्वात्मक एवं बहु-आयामी होते हैं।

जबकि आध्यात्मिक दरिद्रता की समाप्ति सांस्कृतिक क्रांति का अंकगणित है, इसका बीजगणित जनमानस में निम्न-पूँजीवादी रुझानों व परपराओं पर विजय प्राप्त करने, समाजवादी आधार पर समाज के समूचे सांस्कृतिक जीवन को संगठित करने में समाजवादी विचारधारा की सफलता में निहित है।

लेनिन ने सांस्कृतिक क्रांति को ऐसी प्रबल रचनात्मक शक्ति के रूप में देखा जोकि सामाजिक उत्पादन को बढ़ावा देने, नये सामजिक श्रम अनुशासन को निर्मित करने में समर्थ है, तथा लाखों लोग मेहनतकश लोगों को सामाजिक जीवन के नये रूपों से, राज्य व समाज के संचालन व्यावहारिक भागीदारी से परिचित कराने का और उन्हें नयी जीवन-पद्धति के सचेतन निर्माता के रूप में बदलने का कारगर उपकरण है। लेनिन ने सांस्कृतिक क्रांति की कल्पना ऐसे उपकरण के रूप में की जोकि मानवता द्वारा अर्जित अनुभव एवं ज्ञान को जन-समूहों के स्वतंत्र कार्यकलाप—उनकी ऊर्जा तथा प्रबल प्रेरणा के साथ जोड़ पाने (एकताबद्ध करने) के दुष्कर कार्य-भार के समाधान को संभव बना सकता है।

संस्कृति समाजवादी समाज के संपूर्ण सामाजिक संगठन का अहस्तांतरकरणीय अंग है: उत्पादन, दैनंदिन जीवन, मानव संबंध, नये मनुष्य का निर्माण तथा

तथा संवेदनशील क्षेत्र—संस्कृति के क्षेत्र—के संबंध में लेनिन के नज़रिये की समूची सार्थकता को प्रमाणित कर दिया है। लेनिन ने नये समाज के निर्माता के रूप में मेहनतकश वर्ग की भूमिका को इस तथ्य में देखा कि, "अब से विज्ञान के समस्त चमत्कार तथा संस्कृति की उपलब्धियाँ संपूर्ण राष्ट्र की संपत्ति हैं तथा अब कभी भी मनुष्य के मस्तिष्क तथा मानवीय प्रतिभा का इस्तेमाल शोषण व उत्पीड़न के उद्देश्य से नहीं किया जायेगा।"[1]

लेनिन ने इस ऐतिहासिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मेहनतकश वर्ग की व्यावहारिक तैयारियों पर विशेष ध्यान दिया। अपने क्या करें ? में लेनिन ने मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की ताकि मजदूर अपने समय के बारे में ठोस ज्ञान प्राप्त कर पाने में समर्थ हो सकें। उन्होंने लिखा : "आम तौर पर मजदूरों की चेतना के स्तर को ऊँचा करने के लिए हर प्रयत्न किया जाना चाहिए ताकि मजदूरों को इसमें अधिकाधिक सफलता मिल सके; यह आवश्यक है कि मजदूर मजदूरों के लिए साहित्य की कृत्रिम रूप से प्रतिबंधित सीमाओं तक अपने को सीमित न करें तथा सामान्य साहित्य में अधिकाधिक महारत हासिल करना सीखें।"[2]

मेहनतकश वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर लेने तथा उत्पादन के बुनियादी साधनों का राष्ट्रीयकरण हो जाने के बाद लेनिन ने इसे महत्वपूर्ण माना कि "अब सांस्कृतिक क्रान्ति ही हमारे देश को पूर्ण समाजवादी देश बनाने के लिए काफ़ी होगी।"[3]

लेनिन का सांस्कृतिक क्रान्ति का कार्यक्रम वैज्ञानिक कम्युनिज़म के सिद्धांत एवं व्यवहार को शानदार देन थी। कार्यक्रम की उल्लेखनीय विशिष्टताओं में निरक्षरता की समाप्ति तथा व्यापकतम मेहनतकश जन-समूहों को राजनीति एवं संस्कृति में दीक्षित कराने की अपरिहार्य शर्त के रूप में सार्वजनिक शिक्षा का विकास सम्मिलित था। लेनिन के शब्दों में, "जब तक हमारे देश में निरक्षरता जैसी चीज़ क़ायम है, राजनीतिक शिक्षा के बारे में बात करना तक बेमानी है। यह राजनीतिक समस्या नहीं है; यह ऐसी परिस्थिति है जिसके बिना राजनीति की चर्चा करना निरर्थक है। एक निरक्षर व्यक्ति राजनीति के बाहर होता है, उसे पहले अपने क ख ग सीखने चाहिए।"[4] यही वह परिप्रेक्ष्य है जिसमें वैज्ञानिक

1 वी० आई० लेनिन, 'मजदूरों, किसानों, सिपाहियों के प्रतिनिधियों की सोवियतों का तीसरा अखिल रूसी सम्मेलन,' संकलित रचनाएँ, खण्ड 26, पृष्ठ 481-82
2 वी० आई० लेनिन, 'क्या करें ?' संकलित रचनाएँ, खण्ड 5, पृष्ठ 384
3 वी० आई० लेनिन, 'सहकार के बारे में,' संकलित रचनाएँ, खण्ड 33, पृष्ठ 475
4 वी० आई० लेनिन, 'नई आर्थिक नीति तथा राजनीतिक शिक्षा विभागों के कर्तव्य,' संकलित रचनाएँ, खण्ड 33 पृष्ठ 78

मार्क्सवादी सामाजिक कसौटियों को विकृत एवं विरूपित करने का प्रयास खास-कर असहनीय होते हैं और इसीलिए पिछली शताब्दी के अंत में एंगेल्स ने जर्मनी में तथाकथित तरुण सामाजिक जनवादियों—पॉल अर्नेस्ट, पी० कैंपमेयर तथा बी० म्युलर—के साथ जो वाद-विवाद छेड़ा था वह आज के दिन तक प्रासंगिक है। एंगेल्स ने तीखे व्यंग्य के लहजे में उन्हें "अत्यंत बुद्धिमान आचार्यों व ठाकी जैसी नाक वाले साहित्यकारों" के रूप में वर्णित किया, किंतु वस्तुतः वे लोग साहित्य व साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में, अपनी मानसिकता व मनोविज्ञान की दृष्टि से दूकानदार किस्म के लोग ही थे। राजनीतिक दृष्टि से अवसरवादी तथा सैद्धांतिक दृष्टि से अर्द्ध-शिक्षित मार्क्सवादी, उन लोगों ने अपने विकृत-विरूपित विचारों को—जिनका मार्क्सवाद से कोई वास्ता न था—फेरी लगाकर बेचने की जी-जान से कोशिश की। एंगेल्स के सामने इस समय जो कार्य-भार था वह ऐसे पात्रों से अपने को दूर रखने का था जोकि पार्टी के झंडे का उपयोग स्वयं को छिपाने के लिए कर रहे थे तथा मार्क्सवादी शब्दावली का सहज व धाराप्रवाह प्रयोग कर रहे थे।

एंगेल्स में इस चुनौती का सामना करने की सामर्थ्य थी। उन्होंने लिखा : "इसके (विरोधियों के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक कार्यकलाप में) सैद्धांतिक पक्ष के रूप में मुझे जो मार्क्सवाद मिला वह इतना तोड़ा-मरोड़ा हुआ था जिसे पहचाना ही नहीं जा सकता था, ऐसा मार्क्सवाद जिसकी विशेषता उस विश्वदृष्टि को समझने की विफलता थी जिसके समर्थन में होने का वे दम भरते थे; इसकी दूसरी विशेषता इतिहास के हर मोड़ पर ऐतिहासिक तथ्यों की निर्णायक भूमिका के बारे में उनका पूर्ण अज्ञान था तथा तीसरी विशेषता अपनी असीमित श्रेष्ठता—जो जर्मन साहित्य का यूँ भी विशिष्ट लक्षण है—का स्पष्ट तथा घोषित बोध था।"[1]

उन्होंने समझने की इस प्रकट विफलता तथा पूर्ण अज्ञान को इब्सेन तथा स्ट्रिंडबर्ग संबंधी चर्चाओं में प्रदर्शित किया। मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आलो-चनात्मक पद्धति के स्थान पर मताग्रवादी स्वयंसिद्ध सूक्तियों को आधार बनाकर वे नार्वे के इन यशस्वी लेखकों के कृतित्व का ठोस सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत कर पाने में विफल हुए तथा संदिग्ध एवं अव्यावहारिक मूल्यांकनों की कुत्सित समाज-शास्त्रीय दलदल में फँसे रह गये।

पॉल अर्नेस्ट की नजर में इब्सेन का कृतित्व असंस्कृत व्यक्ति की द्वंद्वात्मकता है—अपनी ही पूँछ का पीछा करता हुआ बिलौटा। लेकिन हुआ यह कि स्वयं पॉल अर्नेस्ट ही बिलौटा साबित हुए क्योंकि, उस महान लेखक पर कायरता, अवसरवाद तथा अन्य मिलती-जुलती विशेषताएँ थोप कर, अर्नेस्ट ने वस्तुतः अपना

1. मार्क्स-एंगेल्स, रचनाएँ, खंड 22, पृ० 66 (जर्मन में) 'अपनी स्वयं की असीमित श्रेष्ठता के बोध में निम्न-पूँजीवादी चेतना की दम्भपूर्णता निहित है, मार्क्स एवं एंगेल्स ने बार-बार इसकी ओर संकेत किया था।

शिक्षा—इन सबमें संस्कृति निहित है। सांस्कृतिक उपलब्धियाँ समाज की न केवल आध्यात्मिक संपदा बल्कि व्यावहारिक संपदा को भी निर्मित करती हैं। लेनिन ने स्पष्ट किया कि देश के आर्थिक निष्पादन को सुधारने के लिए "हमें संस्कृति को बहुत ऊँचे स्तर तक उठाना होगा।"[1] ज्यों-ज्यों देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अधिक विविधतापूर्ण तथा जटिल होती जाती है, आर्थिक प्रगति की विशिष्टताओं तथा आकार का विस्तार होता जाता है, वैसे-वैसे ही सांस्कृतिक कार्यकलाप का विस्तार करने व उन्हें विविधतापूर्ण बनाने की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है क्योंकि देश के उत्पादन क्षेत्र पर, श्रम उत्पादकता पर तथा सभी स्तरों पर उत्पादन की गुणवत्ता व आर्थिक निष्पादन पर इनका पुनर्निवेशन प्रभाव भी बढ़ता जाता है।

लेनिन ने समाजवाद के अंतर्गत आध्यात्मिक जीवन में, सांस्कृतिक विकास में कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व के बुनियादी महत्व को स्वीकार व रेखांकित किया। उन्होंने साहित्य व कला के क्षेत्र में मार्क्सवादी वैचारिक सिद्धांतों के दृढ़तापूर्वक सुसंगत क्रियान्वयन में सामाजिक जीवन के इस अत्यंत विशिष्ट रूप में इन सिद्धांतों को निपुणता के साथ लागू करने में पार्टी की मार्गदर्शक भूमिका को अत्यंत महत्व दिया। आध्यात्मिक जीवन को मनमाने ढंग से, जिधर सींग समाएँ, चलने व विकसित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती। आध्यात्मिक उत्पादन के अंतिम परिणामों की अग्रिम कल्पना करना तथा योजनाबद्ध तरीक़े से मार्गदर्शन की सुनिश्चित पद्धतियों को विकसित करना आवश्यक है जोकि आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विकास को संचालित करने वाले अंतर्भूत नियमों के घनिष्ठ ज्ञान तथा बुद्धिजीवी वर्ग के विशिष्ट सामाजिक एवं व्यावसायिक लक्षणों की अच्छी जानकारी पर आधारित हो।

सामाजिक घटनाओं तथा घटनाक्रियाओं के विश्लेषण व मूल्यांकन के अपने वर्गाभिमुख दृष्टिकोण को पुष्ट एवं प्रमाणित करते हुए मार्क्स-एंगेल्स तथा लेनिन ने मार्क्सवाद को तरह-तरह से विकृत व विरूपित करने वालों—जिन्होंने ऊपरी तौर से इसमें दिलचस्पी लेकर इसे सिर्फ़ एकांगी रूप से ग्रहण किया था—के खिलाफ़ कड़ा संघर्ष करके इसके केंद्रीय पद्धतिमूलक सिद्धांतों को गढ़ा। वर्ग तथा उसके साहित्यकारों के तात्विक संबंध के बारे में प्रस्तुत प्रस्थापना को विविध घटनाक्रियाओं—जिनमें साहित्य व कला की कृतियाँ सम्मिलित थीं—के सुनिश्चित विश्लेषण पर लागू किया गया तथा इससे मूल्यवान परिणाम सामने आये जिन्होंने मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अर्थ को उसकी क्रियाशीलता—मानवीय उद्यम के विभिन्न क्षेत्रों में इसके व्यावहारिक प्रयोग—के संदर्भ में उजागर किया।

आध्यात्मिक जीवन के अत्यंत संवेदनशील पक्षों के विश्लेषण व मूल्यांकन में

---

1 वी० आई० लेनिन, 'नई आर्थिक नीति तथा राजनीतिक शिक्षा विभागों के कार्यभार,' संकलित रचनाएँ, खंड 33, पृष्ठ 78

सहानुभूतियों अथवा विद्वेषों से ही नही जुड़ा हुआ है। विश्व साहित्य एवं कला के इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण सामने आये हैं जहां महान कलाकारो की सहानुभूतियों तथा विद्वेषों का उनकी कृतियों की वस्तुगत अतर्वस्तु तथा सदेश के साथ टकराव हुआ। एंगेल्स ने लिखा : "कि बाल्ज़क···अपनी वर्गीय सहानुभूतियों तथा पूर्वाग्रहो के खिलाफ जाने को विवश हुए, कि उन्होंने अपने प्रीतिभाजन कुलीन वर्ग के पतन की आवश्यकता का अनुभव कर लिया तथा उन्हे ऐसे लोगों के रूप मे चित्रित किया जो बेहतर नियति के हकदार नहीं थे; तथा यह भी कि उन्होने भविष्य के वास्तविक मनुष्यों की कल्पना की जहाँ, थोड़े समय के लिए सिर्फ वे ही मिल सकते थे—इसे मैं यथार्थवाद की सबसे बडी विजयों मे से एक, तथा वृद्ध बाल्ज़क की भव्यतम विशिष्टताओं में से एक मानता हूँ।"[1]

बाल्ज़क की कृतियों का एंगेल्स द्वारा प्रस्तुत अनुपम विश्लेषण तथा तॉल्सतॉय की कृतियों का लेनिन द्वारा किया गया वैसा ही विश्लेषण समाज के आध्यात्मिक जीवन के मार्क्सवादी सामाजिक विश्लेषण के बेजोड़ उदाहरण तथा सबक हैं जिन्होने इसकी सपूर्ण सार्थकता, वैज्ञानिक युक्तियुक्तता (सटीकता) तथा सुसंगत पार्टी दृष्टिकोण को मानवीय उद्यम के ऐसे जटिल क्षेत्र में लागू करके दिखा दिया।

लेनिन ने युग के प्रमुख संघर्षों तथा अतर्विरोधो की प्रिज्म के माध्यम से व प्रथम रूसी क्रांति की अंतर्राष्ट्रीय सार्थकता के कोण से लेव तॉल्सतॉय के कृतित्व की पड़ताल लेखक, दार्शनिक तथा उपदेशक के रूप मे की। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि : "तॉल्सतॉय के विचारो के अंतर्विरोध उनके निजी विचारो में ही निहित नही हैं, बल्कि अतिशय जटिल, अंतर्विरोधी परिस्थितियो, सामाजिक प्रभावो तथा ऐतिहासिक परपराओं का प्रतिबिंब हैं जिन्होने कि सुधारोत्तर तथा प्राक-क्रांतिकारी युग के रूसी समाज के विभिन्न वर्गों तथा प्रखडो के मनोविज्ञान को निर्धारित किया था।"[2]

लेनिन ने प्रात्स्कीवादियों, दक्षिणपथी अवसरवादियो की मार्क्सवाद विरोधी निम्न पूँजीवादी अवधारणा, कम्युनिस्ट अहम्मन्यता तथा सस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में आदेश व फ़रमान जारी करके समस्याओ को हल करने के प्रयासों के खिलाफ अपने सिद्धातनिष्ठ एवं अटल सघर्ष के दौरान सास्कृतिक प्रश्नों के बारे मे अपने दृष्टिकोण को विकसित किया।

इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि सांस्कृतिक प्रश्नों पर प्रात्स्कीवादियों के पार्टी-विरोधी तथा समाजवाद-विरोधी विचार—जिन्हे उन्होने 1920 के दशक मे तथा 1930 के दशक के शुरू के वर्षों मे कम्युनिस्ट पार्टी पर थोपने

1. 'एंगेल्स का पत्र मार्गरेट हार्कनैस को, अप्रैल 1888,' चयनित पत्रावली, पृ० 381
2. वी० आई० लेनिन, 'एल० एन० तॉल्सतॉय,' सकलित रचनाएं, खड 16, पृ० 325

आत्म-चित्र ही प्रस्तुत किया—19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के जर्मनी के निम्न पूंजीपति वर्ग के विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में। एंगेल्स ने पी० अर्नेस्ट के तर्कों—जो वास्तविक सामाजिक कसौटियों, इतिहासवाद तथा उन विषयों के वास्तविक ज्ञान से विहीन थे जिनके बारे में उन्होंने दुर्लभ धोखेबाजी तथा दंभ के साथ लिखा—की पदनिमूलक निरर्थकता को उजागर किया। अर्नेस्ट पर एंगेल्स की आक्रमण नीति बेहद शिक्षाप्रद थी। सबसे तो एंगेल्स ने यह टिप्पणी की कि जर्मन तथा नार्वे के निम्न-पूंजीपति वर्ग के चारों ओर की सटीक ऐतिहासिक परिस्थितियों में सादृश्य कायम करना गलत है तथा नार्वे के संदर्भ में उसकी जनवादी प्रकृति को नजरंदाज करना गलत है। जर्मन असंस्कृतवाद मौकापरस्त-क्रांति का परिणाम था जबकि नार्वे का पूंजीवादी जनवादी "स्वतंत्र किसान का बेटा होने के कारण इन परिस्थितियों में पतित जर्मन कुसंस्कारी की तुलना में एक मनुष्य है।"[1] अभागे आलोचक का जवाब देते हुए एंगेल्स ने लिखा : "पहले से आप नार्वे में होने वाली हर चीज को असंस्कृतवाद की कोटि में रख देते हैं और फिर उस पर बिना झिझक के उन सभी विशेषताओं को आरोपित कर देते हैं जो आपकी नजर में जर्मन असंस्कृतवाद की विशेषताएँ हैं।"[2]

इब्सेन के कृतित्व की अंतर्विरोधपूर्ण प्रकृति—जोकि महान लेखक की विश्व-दृष्टि तथा विश्व के सज्ञान के सशक्त व दुर्बल पक्षों का संपिंडन था—को उजागर करने के बाद, एंगेल्स ने निष्कर्ष निकाला : "उदाहरण के लिए, इब्सेन के नाटकों की जो भी कमियाँ हों, वे निर्विवाद रूप से लघु तथा मध्यम पूंजीपति वर्ग की दुनिया को प्रतिबिंबित करते हैं तथा इसमें व जर्मनी की स्थिति में जबर्दस्त अंतर है, वे (इब्सेन के नाटक) ऐसी दुनिया को प्रतिबिंबित करते हैं। जिसमें लोगों के पास अभी भी चरित्र की शक्ति तथा पहलकदमी बची है तथा स्वतंत्र रूप से काम करते हैं हालांकि अन्य देशों में प्रचलित अवधारणाओं के अनुसार उनके कार्यकलाप अटपटे लग सकते हैं। मैं अंतिम निर्णय देने से पहले इस तरह की चीजों का पूर्ण अध्ययन करना पसंद करता हूँ।"[3]

साहित्य एवं कला के प्रति वर्गीय दृष्टिकोण की चर्चा करते हुए एंगेल्स ने यह सिद्ध कर दिया कि इस क्षेत्र में एकांगी दृष्टिकोण—अतिसरलीकरण तथा संबंधित विषय, जिसकी नजदीकी से तथा सावधानीपूर्वक पड़ताल की जानी चाहिए, की विशिष्ट प्रकृति को समझ पाने में विफलता—से अधिक क्षति अन्य कोई चीज नहीं पहुँचा सकती। यह सवाल लेखक के सामाजिक स्रोतों अथवा उसकी आत्मगत

1. 'एंगेल्स का लंदन से पॉल अर्नेस्ट (बर्लिन) को 5 जून 1890 को लिखा पत्र,' मार्क्स-एंगेल्स के चयनित पत्र व्यवहार में, मास्को, 1975, पृ० 391-92
2. वही, पृ० 391
3. वही, पृ० 392

सहानुभूतियों अथवा विद्वेषों से ही नहीं जुड़ा हुआ है। विश्व साहित्य एवं क
के इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण सामने आये हैं जहाँ महान कलाकारो
सहानुभूतियों तथा विद्वेषों का उनकी कृतियों की वस्तुगत अंतर्वस्तु तथा संदेश
साथ टकराव हुआ। एंगेल्स ने लिखा : "कि बाल्जाक…अपनी वर्गीय सहानुभूति
तथा पूर्वाग्रहों के खिलाफ जाने को विवश हुए, कि उन्होंने अपने प्रीतिभाजन कुल
वर्ग के पतन की आवश्यकता का अनुभव कर लिया तथा उन्हें ऐसे लोगों के रू
चित्रित किया जो बेहतर नियति के हकदार नहीं थे; तथा यह भी कि उन
भविष्य के वास्तविक मनुष्यों की कल्पना की जहाँ, थोड़े समय के लिए सिर्फ वे
मिल सकते थे—इसे मैं यथार्थवाद की सबसे बड़ी विजयों में से एक, तथा
बाल्जक की मध्यतम विशिष्टताओं में से एक मानता हूँ।"[1]

बाल्जक की कृतियों का एंगेल्स द्वारा प्रस्तुत अनुपम विश्लेषण तथा तॉल्स
की कृतियों का लेनिन द्वारा किया गया वैसा ही विश्लेषण समाज के आध्याति
जीवन के मार्क्सवादी सामाजिक विश्लेषण के बेजोड़ उदाहरण तथा सबक
जिन्होंने इसकी संपूर्ण सार्थकता, वैज्ञानिक युक्तियुक्तता (सटीकता) तथा सुस
पार्टी दृष्टिकोण को मानवीय उद्यम के ऐसे जटिल क्षेत्र में लागू करके दिखा दिय

लेनिन ने युग के प्रमुख संघर्षों तथा अंतर्विरोधों की प्रिज्म के माध्यम
प्रथम रूसी क्रांति की अंतर्राष्ट्रीय सार्थकता के कोण से लेव तॉल्सतॉय के कृतित्व
पड़ताल लेखक, दार्शनिक तथा उपदेशक के रूप में की। उन्होंने निष्कर्ष निक
कि : "तॉल्सतॉय के विचारों के अंतर्विरोध उनके निजी विचारों में ही निहित
हैं, बल्कि अतिशय जटिल, अंतर्विरोधी परिस्थितियों, सामाजिक प्रभावों
ऐतिहासिक परंपराओं का प्रतिबिंब हैं जिन्होंने कि सुधारोत्तर तथा प्राक्-क
कारी युग के रूसी समाज के विभिन्न वर्गों तथा प्रस्तरों के मनोविज्ञान को नि
रित किया था।"[2]

लेनिन ने मार्क्सवादियों, दक्षिणपंथी अवसरवादियों की मार्क्सवाद वि
निम्न पूँजीवादी अवधारणा, कम्युनिस्ट अहम्मन्यता तथा संस्कृति एवं साहित
क्षेत्र में आदेश व फ़रमान जारी करके समस्याओं को हल करने के प्रयास
खिलाफ अपने सिद्धांतनिष्ठ एवं अटल संघर्ष के दौरान सांस्कृतिक प्रश्नों के
में अपने दृष्टिकोण को विकसित किया।

इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि सांस्कृतिक प्रश्नों पर त्रात
वादियों के पार्टी-विरोधी तथा समाजवाद-विरोधी विचार—जिन्हें उन्होंने 19
के दशक में तथा 1930 के दशक के शुरू के वर्षों में कम्युनिस्ट पार्टी पर थ

1. 'एंगेल्स का पत्र मार्गरेट हार्कनेस को, अप्रैल 1888,' चयनित पत्रावली, पृ० 381
2. वी० आई० लेनिन, 'एल० एन० तॉल्सतॉय,' संकलित रचनाएं', खंड 16, पृ० 325

का प्रयास किया था—बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति उनका अपमानजनक अविश्वास तथा रुग्ण संदेह, मज़दूर वर्ग की सृजनात्मक शक्तियों तथा देश के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन को दिशा देने की उसकी सामर्थ्य में आस्था के घोर (पलायनवादी) अभाव से ही उत्पन्न हुए थे। वे सर्वहारा की तानाशाही के सारतत्व तथा कार्यभारों की कुत्सित तोड़-मरोड़ के परिणाम थे, एक ओर मज़दूर वर्ग तथा किसानों के बीच तथा दूसरी ओर किसानों व बुद्धिजीवी वर्ग के बीच झगड़े छिड़वाने के सतत प्रयत्नों के परिणाम थे। वामपंथी तथा दक्षिणपंथी आत्मसमर्पणवादियों ने पार्टी पर क्रांति तथा समाजवाद के संबंध में निम्न-पूँजीवादी विचारों को थोपने की कोशिश की। लेनिन ने लिखा : "निम्न-पूँजीवादी क्रांतिकारी की यह ख़ास विशेषता होती है कि वह यह नहीं देख पाता कि समाजवाद के लिए दबा देना, तितर-बितर कर देना व परास्त कर देना आदि काफ़ी नहीं है। एक बड़े मालिक से नाराज़ छोटे मालिक के लिए यह काफी हो सकता है। किंतु कोई भी सर्वहारा क्रांतिकारी इस तरह की ग़लती में नहीं फँसना चाहेगा।"[1]

लेनिन ने 1920 के दशक के शुरू के वर्षों में वास्कीवादियों—जिन्होंने मज़दूर वर्ग, किसान वर्ग तथा बुद्धिजीवी वर्ग को टकराव के रास्ते पर डालने के प्रयास किये—द्वारा सर्वहारा की तानाशाही के कार्यभारों को फूहड़ ढंग से तोड़-मरोड़ के प्रयासों का क़रारा जवाब दिया। लेनिन ने दिखाया कि "सही ढंग से तथा सही लोगों के ख़िलाफ़"[2] काम में लायी जाने पर ही क्रांतिकारी हिंसा तथा क्रांतिकारी तानाशाही सकारात्मक परिणामों को जन्म दे सकती है। लेनिन ने हिंसा-पूजा तथा सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक प्रश्नों को हिंसा द्वारा हल करने को लेनिन ने सही ही मूर्खतापूर्ण कहकर विशेषित किया।[3] "पहले की क्रांतियाँ इसलिए नष्ट हो गयी क्योंकि मज़दूर मज़बूत तानाशाही के माध्यम से सत्ता को बनाये रखने में असमर्थ रहे तथा यह अनुभव नहीं कर पाये कि वे मात्र तानाशाही, शक्ति तथा दबाव के सहारे सत्ता को बनाये नहीं रख सकते थे।"[4] सर्वहारा क्रांति को सुदृढ़ करने, समाजवादी समाज का निर्माण करने तथा उसके बाद कम्युनिज़्म की ओर आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करने के लिए यह परमावश्यक था कि मज़दूर-

---

1 वी० आई० लेनिन, 'वामपंथी बचकानापन तथा निम्न-पूँजीवादी मनोवृत्ति,' संकलित रचनाएं', खंड 27, पृ० 334

2 वी० आई० लेनिन, 'रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की आठवीं कांग्रेस,' संकलित रचनाएं', खंड 29, पृ० 162

3 वी० आई० लेनिन, 'सोवियत सरकार की उपलब्धियाँ तथा कठिनाइयाँ,' संकलित रचनाएं', खंड 29, पृ० 72

4 वी० आई० लेनिन, 'जल-यातायात मज़दूरों की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस में दिया गया भाषण,' संकलित रचनाएं', खंड 30, पृ० 429-30

वर्ग, तमाम मेहनतकश लोग, उस समय उपलब्ध भौतिक एवं आध्यात्मिक संस्कृति की समूची संपदा पर महारत हासिल करें तथा "इसके समस्त विज्ञान, प्रौद्योगिकी, ज्ञान एवं कला को ग्रहण करें।"[1]

लेनिन ने संस्कृति की समस्या को उसके सभी भीमकाय सैद्धांतिक पक्षों तथा इसके समाधान की जबर्दस्त व्यावहारिक कठिनाई के सभी रूपों में देखा-समझा। 1922 में पार्टी की 11वीं कांग्रेस के लिए राजनीतिक प्रतिवेदन तैयार करते हुए लेनिन ने उस समय व्याप्त स्थिति का इस प्रकार वर्णन किया: "इस क्षण की प्रमुख विशेषताएं (शृंखला की कड़ी)—लागू कार्य-भारों की भव्यता तथा हमारी दरिद्रता—न केवल भौतिक बल्कि सांस्कृतिक भी—के बीच फासला।"[2] इस फ़ासले को कम करना वह भयानक चुनौती थी जिसका सामना पार्टी उस समय कर रही थी। पार्टी इस चुनौती पर विजय प्राप्त करने में सफल रही।

लेनिन के सांस्कृतिक क्रांति के कार्यक्रम को कार्यरूप देने (वास्तविकता में रूपांतरित करने) में कम्युनिस्ट पार्टी का मार्गदर्शन निरंतर ही लेनिन के इस आशय के सिद्धांतों एवं निर्देशों ने किया कि समाजवादी समाज का आध्यात्मिक जीवन पार्टी तथा सर्वहारा के साझे लक्ष्य का अविभाज्य तथा अहस्तांतरणीय अंग है, कि "इस क्षेत्र में जल्दबाज़ी में, हमले के रूप में चीज़ों को आगे बढ़ाकर कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता", कि "संस्कृति के मामले में जल्दबाज़ी तथा झाड़ू-बुहार उपाय सर्वाधिक नुकसानदेह होते हैं।"[3] इस क्षेत्र में सक्षमता, व्यावसायिक निपुणता, नैतिक शक्ति, प्रतिभा तथा बहुविज्ञता का स्थान कोई अन्य गुण नहीं ले सकते। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संभवतया किसी भी अन्य क्षेत्र में सिद्धांतनिष्ठ तथा व्यवहार-कुशल दृष्टिकोण की, कठोर सटीकता तथा किसी की भी भावनाओं को कष्ट न पहुँचाने के सम्मिश्रण, सावधानीपूर्ण विश्लेषण, पक्ष-विपक्ष के सभी बिंदुओं के आकलन, सभी संभव परिणामों पर शांत भाव से विचार करने, गहरे वैज्ञानिक ज्ञान तथा अचूक राजनीतिक अंतःज्ञान की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी कि बौद्धिक एवं आध्यात्मिक जीवन के इस क्षेत्र में पड़ती है।

उन्नत समाजवादी समाज में आध्यात्मिक कारकों की निरंतर बढ़ती हुई भूमिका तथा सार्थकता के आलोक में, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी समाज

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'सोवियत सरकार की उपलब्धियाँ तथा कठिनाइयाँ,' संकलित रचनाएं, खंड 29, पृ॰ 70
2. वी॰ आई॰ लेनिन, '27 मार्च 1922 के एक भाषण के नोट्स,' संकलित रचनाएं, खंड 36, पृ॰ 574
3. वी॰ आई॰ लेनिन, 'चाहे कम हों, पर बेहतर हों,' संकलित रचनाएं, खंड 33, पृ॰ 487, पृ॰ 488-89 भी देखें।

वैचारिक क्षेत्र में समझौतों की, तथा ध्रुवीकृत अवस्थितियों, विचारों रझानों की अभिविदुता की असंभवता उसकी अंतर्भूत अंतर्वस्तु की प्रकृति उत्पन्न होती है। विचारधारा तथा राजनीति का प्रमुख भेद इस तथ्य में निर्ि कि पारस्परिक रियायतों व समझौतों के बिना किसी भी प्रकार का सार्थक नीतिक कार्य-व्यापार संभव नहीं है। विचारधारा में ऐसा नहीं होता जहाँ ह सी रियायत तथा किसी भी प्रकार का समझौता सिद्धांतों पर आधारित दृष्टि के क्षय को जन्म देते हैं, इसका सीधा कारण यह है कि विचारधारा में गौण जैसी कोई चीज नहीं होती। सार रूप में विचारधारा विचारों का घनिष्ठता एकताबद्ध पिंड होती है। और चूंकि विचारधारा एक वर्ग-विशेष के अत्याव राजनीतिक सिद्धांतों को अभिव्यक्त करती है या उस सीमा का भी निध करती है जिसके भीतर रहकर राजनीतिक क्षेत्र में रियायतें दी जा सक समझौते किये जा सकते हैं। यदि रियायतें तथा समझौते वैचारिक क्षेत्र को प्रभ करते हैं तो यह इस बात का पक्का लक्षण है कि संबंधित वर्ग के राजनीतिक तथा सिद्धांत संशोधित अथवा परिवर्तित हो रहे हैं।

राजनीति में, विचारधारा के विपरीत, समझौते तथा रियायतें (कह होगा कि गौण अथवा सहायक प्रश्नों पर) किसी खास राजनीतिक नीति के व चरित्र में बदलाव नहीं लाते। राजनीति में समझौतों का अस्वीकार हर त किस्म के चरम वामपंथियों की निशानी होती है। तथा व्यवहार में इसने मेहनत वर्ग की वास्तविक सिद्धांतनिष्ठ नीति से विपथगमन को ही जन्म दि क्योंकि कोई भी अर्थवान राजनीतिक कार्य-व्यापार सीधी रेखाओं पर नहीं सकता।

जबकि राजनीति सामाजिक घटनाओं तथा घटनाक्रियाओं के व्यापक क्षेत्र तय करती है तथा प्रमुख एवं गौण महत्व के मुद्दों और स्थायी एवं क्षणिक का के विभेदों को सम्मिलित करती है, विचारधारा कार्यक्रम के रूप में एक वर्ग चिंतन को अभिव्यक्ति देती है; यह विचारों की एक ऐसी सुव्यवस्थित प्रणाली है एक वर्ग के बुनियादी हितों, सामाजिक संबंधों की प्रणाली के भीतर उस अवस्थिति को व्यक्त करती है। इन सैद्धांतिक नियमों के दृष्टिकोण से ही घटना तथा घटनाक्रियाओं का मूल्यांकन किया जाता है तथा एक सुनिश्चित वर्गाभि राजनीतिक नीति विकसित की जाती है। लेनिन ने राजनीतिक तथा वैचा कार्यकलाप के सार्थक विभेदों को सुस्पष्ट रूप से परिभाषित करते हुए लि था कि :

1. बिना समझौतों के कोई भी नीति लागू नहीं की जा सकती किंतु "समझौ कई प्रकार के होते हैं। हमें स्थिति तथा हर समझौते की परिस्थि

—अथवा समझौते की हर किस्म की—का विश्लेषण करने में
होना चाहिए।"[1]

2. "किन्हीं भी व्यावहारिक गठबंधनों का परिणाम सिद्धांत, कार्यक्रम
झंडे के प्रश्नों के संबंध में समझौते तथा रियायतें नहीं होना चाहिए

अपने सैद्धांतिक नियमों के साथ पूरी तरह से संगति प्रदर्शित करते
कम्युनिस्टों ने शीतयुद्ध तथा वैचारिक संघर्ष के बीच कभी कोई घालमेल
किया है। शीतयुद्ध का जन्म सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी हल
कुचक्रों से हुआ तथा इसने एक खास ऐतिहासिक स्थिति—जो टिकाऊ नहीं
को व्यंजित किया। पूंजीवादी तथा समाजवादी विचारों के बीच संघर्ष आ
समाज के दो प्रमुख वर्गों—पूंजीपति वर्ग तथा मजदूर वर्ग—के हितों की भ्र
प्रकृति को प्रतिबिंबित करता है। जब दो विरोधी सामाजिक शक्तियां
व्यवस्थाएं राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर संघर्ष में उलझी हों तो विचा
लड़ाई इतिहास के वस्तुगत प्रवाह की स्वाभाविक सहवर्ती बन जाती है।

मजदूर आंदोलन के जन्म से ही वर्ग-संघर्ष को योजना के अनुसा
दिशाओं में चलाया गया है—सैद्धांतिक रूप से, राजनीतिक रूप से तथा
हारिक आर्थिक रूप में। लेनिन ने इस बात को रेखांकित किया था कि मा
"सामाजिक जनवाद के महान संघर्ष के दो रूपों (राजनीतिक व आर्थिक)
बल्कि सैद्धांतिक संघर्ष को पहले दो के समकक्ष रख कर, तीन रूपों को
देता है।"[3]

आज वैचारिक संघर्ष एक अत्यंत व्यापक मोर्चे पर, हमारे युग की सभी
समस्याओं के इर्द-गिर्द तथा तेजी से बदलती परिस्थितियों में, चल रहा है।
सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने अनुभव किया, "वै
संघर्ष की समस्याएं उत्तरोत्तर अधिक प्रमुखता प्राप्त करती जा रही
समाजवाद के बारे में सच्चाई इस संघर्ष का शक्तिशाली हथियार है।"[4]
वादी विचारधारा एक वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि है जो अपने समर्थकों को सो
से संघर्ष को चलाने में, तथा कल्पनाशीलता के साथ ठोस वैज्ञानिक त
अकाट्य तथ्यों के भरे-पूरे शस्त्रागार पर भरोसा करने में समर्थ बनाती है।

समाजवादी विचारधारा सोवियत जीवन-पद्धति, समाजवाद की

---

1 वी॰ आई॰ लेनिन, 'वामपंथी कम्युनिज्म, एक बचकाना मर्ज,' संकलित
खंड 31, पृ॰ 38

2 वी॰ आई॰ लेनिन, "रूसी सामाजिक-जनवादियों के कार्यभार,' संकलित रचना
पृ॰ 331

3 वी॰ आई॰ लेनिन, 'क्या करें ?,' संकलित रचनाएं, खंड 5, पृ॰ 370

4 'सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज तथा प्रस्ताव,'

के आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में पार्टी नेतृत्व संबंधी लेनिन के सिद्धांतों को सुसगत रूप से क्रियान्वित व विकसित करती रही है। इस क्षेत्र में, आध्यात्मिक जीवन की सुनिश्चितता की गहरी समझ पर आधारित सही मायनों में लेनिनवादी नेतृत्व शैली ही नेतृत्व की वह एकमात्र उपयुक्त शैली है जिसका संस्कृति की अतर्भूत अंतर्वस्तु से तादात्म्य होता है।

समाजवाद की संस्कृति पूर्ववर्ती पीढ़ियों द्वारा सृजित उन सब गुणों को—जो वास्तव में मूल्यवान तथा टिकाऊ हैं—योग्य उत्तराधिकारी है। यह वह संस्कृति है जो मानवीय मनीषा की महान उपलब्धियों को समाजवाद के जीवंत अनुभव तथा नये समाज के निर्माण-कार्य में जुटे हुए मेहनतकश लोगों की क्रांतिकारी सृजनात्मकता के साथ निर्वचित करती है; यह वह संस्कृति है जो अतीत तथा वर्तमान के अनुभव की सतत अंतःक्रिया को क़ायम रखती है। समाजवादी संस्कृति—जो चरित्र में गहरी जनवादी तथा सार-तत्व में समाजवादी, प्रवृत्ति में अंतर्राष्ट्रीयतावादी व रूप में राष्ट्रीय होती है—मानवता की आध्यात्मिक प्रगति की दिशा में एक प्रमुख अग्रगामी क़दम है।

5. विचारधाराओं का संघर्ष तथा अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य

सोवियत समाज में जीवन के वैचारिक पक्ष विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय कारकों से अंतर्राष्ट्रीय रंगमंच पर पिछले वर्षों के दौरान घटित महत्वपूर्ण परिवर्तनों—जो आज की दुनिया में जारी ध्रुवीकृत विचारों के संघर्ष की नयी स्थिति को चित्रित करते हैं—से घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं। विश्व-विकास की दृष्टि से उठाया गया एक प्रमुख कदम मुठभेड़ से तनाव-शैथिल्य की ओर ऐतिहासिक मोड़ के रूप में देखा जा सकता है। यह ऐसा मोड़ था जिसे सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने सावधानीपूर्वक विश्लेषित किया था।

कांग्रेस में लियोनिद ब्रेझनेव द्वारा प्रस्तुत मुख्य प्रतिवेदन में मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अंतर्राष्ट्रीयतावादी चरित्र, समाजवादी वैदेशिक नीति का वर्गीय तथा मानवतावादी चरित्र, तनाव-शैथिल्य के आर्थिक, राजनीतिक एवं वैचारिक पक्ष, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व तथा वर्ग-संघर्ष और आज की दुनिया में चल रहे वैचारिक संघर्ष के प्रमुख विशिष्ट लक्षण जैसी प्रमुख वैचारिक एवं राजनीतिक समस्याओं का व्यापक सैद्धांतिक विश्लेषण समाहित था। लियोनिद ब्रेझनेव ने यह रेखांकित किया कि : "विश्व मामलों में सकारात्मक परिवर्तन तथा तनाव-शैथिल्य समाजवादी विचारों के व्यापक प्रसार के लिए अनुकूल अवसर पैदा करते हैं। किंतु दूसरी ओर, दो व्यवस्थाओं के बीच की वैचारिक लड़ाई निरंतर तीव्र होती

जा रही है और साम्राज्यवादी प्रचार अधिक सूक्ष्म व धूर्ततापूर्ण बनता जा रहा है।"[1]

अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य एक जटिल तथा अंतर्विरोधपूर्ण प्रक्रिया है जोकि विश्व-स्तर पर सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रवृत्तियों एवं कारकों के संघर्ष के बीच विकसित होती है। अतः शांति के शत्रुओं के कुचक्रों के खिलाफ दृढ़ प्रतिज्ञ संघर्ष चलाना, साम्राज्यवाद की वैचारिक तोड़-फोड़ का करारा जवाब देना, जो लोग घड़ी को पीछे घुमाकर शीतयुद्ध के काल में ले जाना चाहते हैं उनके उकसावों का पर्दाफाश करना तथा राष्ट्रों के बीच दुश्मनी व संदेह के बीज बोने वालों को बेनकाब करना समाजवादी प्रचार का उग्रवादी, वर्गीय तथा मानवतावादी कार्य-भार है।

विचारधारा के क्षेत्र में शीतयुद्ध की लाक्षणिक सहगामी कुख्यात मनोवैज्ञानिक युद्ध होता है। अमरीकी पत्रकारों तथा समाजशास्त्रियों ने 1946-47 में राजनीतिक शब्द भंडार में शीतयुद्ध की धारणा को प्रवेश दिलाया था।

पूँजीवादी समाजशास्त्र तथा प्रचार की यह खास विशेषता है कि वे शीतयुद्ध तथा वैचारिक संघर्ष की धारणाओं को न केवल एक-दूसरे के पास रखने की चेष्टा करते हैं बल्कि इनमें सादृश्य भी दिखाने लगते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि ये भिन्न सामाजिक-राजनीतिक परिघटनाएँ हैं जिनकी भिन्न पृष्ठभूमियाँ हैं। जबकि वैचारिक संघर्ष समाज एवं विश्व के दो ध्रुवीकृत सामाजिक क्षेत्रों में विभाजित हो जाने का परिणाम है, शीतयुद्ध एक ऐसी विशिष्ट परिघटना है जोकि दुनिया भर में तनाव बढ़ाने तथा संघर्ष की स्थितियाँ पैदा करके दुनिया को युद्ध के कगार पर खड़ा कर देने की साम्राज्यवादी नीति का परिणाम है। समाजवादी देशों के खिलाफ शुरू किये गये मनोवैज्ञानिक युद्ध, वैचारिक तोड़-फोड़ तथा उकसावे भी इसी उद्देश्य की सिद्धि में सहायक होते हैं।

दुनिया भर में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांतों के प्रसार का अर्थ यह नहीं है कि समाजवाद तथा पूँजीवाद का विरोध विलुप्त हो जाता है, कि पूँजीवादी तथा कम्युनिस्ट विश्व-दृष्टियों के मतभेद समाप्त हो जाते हैं। साथ ही, कम्युनिस्ट अपनी आस्थाओं के आधार पर राष्ट्रों के मध्य शांति के समर्पित हिमायती होते हैं। जीवन-पद्धतियों की भिन्नताएँ एवं विशिष्टताएँ भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के राज्यों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के मार्ग में बाधक नहीं हो सकती हैं। विचारों की लड़ाई खुले संवाद तथा वैचारिक एवं दार्शनिक सिद्धांतों की तुलना के आधार पर चलाई जानी चाहिए न कि तोड़-फोड़ व उकसावों के आधार पर जैसाकि साम्राज्यवादी प्रचार करता रहा है।

1. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज तथा प्रस्ताव, पृ० 39

वैचारिक क्षेत्र में समझौतों की, तथा ध्रुवीकृत अवस्थितियों, विचारों तथा रुझानों की अभिबिदुता की असंभवता उसकी अंतर्भूत अंतर्वस्तु की प्रकृति से ही उत्पन्न होती है। विचारधारा तथा राजनीति का प्रमुख भेद इस तथ्य में निहित है कि पारस्परिक रियायतों व समझौतों के बिना किसी भी प्रकार का सार्थक राजनीतिक कार्य-व्यापार संभव नही है। विचारधारा में ऐसा नही होता जहां हल्की-सी रियायत तथा किसी भी प्रकार का समझौता सिद्धांतों पर आधारित दृष्टिकोणों के क्षय को जन्म देते हैं, इसका सीधा कारण यह है कि विचारधारा में गौण मुद्दों जैसी कोई चीज नहीं होती। सार रूप में विचारधारा विचारों का घनिष्ठतापूर्वक एकताबद्ध पिंड होती है। और चूंकि विचारधारा एक वर्ग-विशेष के अत्यावश्यक राजनीतिक सिद्धांतों को अभिव्यक्त करती है या उस सीमा का भी निर्धारण करती है जिसके भीतर रहकर राजनीतिक क्षेत्र में रियायतें दी जा सकती हैं, समझौते किये जा सकते हैं। यदि रियायतें तथा समझौते वैचारिक क्षेत्र को प्रभावित करते हैं तो यह इस बात का पक्का लक्षण है कि संबंधित वर्ग के राजनीतिक हित तथा सिद्धांत संशोधित अथवा परिवर्द्धित हो रहे हैं।

राजनीति में, विचारधारा के विपरीत, समझौते तथा रियायतें (कहना न होगा कि गौण अथवा सहायक प्रश्नों पर) किसी ख़ास राजनीतिक नीति के वर्गीय चरित्र मे बदलाव नहीं लाते। राजनीति में समझौतों का अस्वीकार हर रंग व क़िस्म के चरम वामपंथियों की निशानी होती है। तथा व्यवहार में इसने मेहनतकश वर्ग की वास्तविक सिद्धांतनिष्ठ नीति से विपथगमन को ही जन्म दिया है क्योंकि कोई भी अर्थवान राजनीतिक कार्य-व्यापार सीधी रेखाओं पर नहीं चल सकता।

जबकि राजनीति सामाजिक घटनाओं तथा घटनाक्रियाओं के व्यापक क्षेत्र को तय करती है तथा प्रमुख एवं गौण महत्व के मुद्दों और स्थायी एवं क्षणिक कारकों के विभेदों को सम्मिलित करती है, विचारधारा कार्यक्रम के रूप में एक वर्ग के चिंतन की अभिव्यक्ति देती है, यह विचारों की एक ऐसी सुव्यवस्थित प्रणाली है जो एक वर्ग के बुनियादी हितों, सामाजिक संबंधों की प्रणाली के भीतर उसकी अवस्थिति को व्यक्त करती है। इन सैद्धांतिक नियमों के दृष्टिकोण से ही घटनाओं तथा घटनाक्रियाओं का मूल्यांकन किया जाता है तथा एक सुनिश्चित वर्गाभिमुख राजनीतिक नीति विकसित की जाती है। लेनिन ने राजनीतिक तथा वैचारिक कार्यकलाप के सारभूत विभेदों को सुस्पष्ट रूप से परिभाषित करते हुए लिखा था कि '

1. बिना समझौतों के कोई भी नीति लागू नहीं की जा सकती किंतु "समझौते कई प्रकार के होते हैं। इन्हें विवेचित तथा हर समझौते की परिस्थितियों

—अथवा समझौते की हर क़िस्म की—का विश्लेषण करने में समर्थ होना चाहिए।"[1]

2. "किन्हीं भी व्यावहारिक गठबंधनों का परिणाम सिद्धांत, कार्यक्रम अथवा झंडे के प्रश्नों के संबंध में समझौते तथा रियायतें नहीं होना चाहिए।"[2]

अपने सैद्धांतिक नियमों के साथ पूरी तरह से संगति प्रदर्शित करते हुए, कम्युनिस्टों ने शीतयुद्ध तथा वैचारिक संघर्ष के बीच कभी कोई घालमेल नहीं किया है। शीतयुद्ध का जन्म सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी हलकों के कुचक्रों से हुआ तथा इसने एक खास ऐतिहासिक स्थिति—जो टिकाऊ नहीं थी—को व्यंजित किया। पूंजीवादी तथा समाजवादी विचारों के बीच संघर्ष आधुनिक समाज के दो प्रमुख वर्गों—पूंजीपति वर्ग तथा मज़दूर वर्ग—के हितों की ध्रुवीकृत प्रकृति को प्रतिबिंबित करता है। जब दो विरोधी सामाजिक शक्तियाँ तथा व्यवस्थाएँ राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर संघर्ष में उलझी हों तो विचारों की लड़ाई इतिहास के वस्तुगत प्रवाह की स्वाभाविक सहवर्ती बन जाती है।

मज़दूर आंदोलन के जन्म से ही वर्ग-संघर्ष को योजना के अनुसार तीन दिशाओं में चलाया गया है—सैद्धांतिक रूप से, राजनीतिक रूप से तथा व्यावहारिक आर्थिक रूप से। लेनिन ने इस बात को रेखांकित किया था कि मार्क्सवाद "सामाजिक जनवाद के महान संघर्ष के दो रूपों (राजनीतिक व आर्थिक) को नहीं बल्कि सैद्धांतिक संघर्ष को पहले दो के समकक्ष रख कर, तीन रूपों को मान्यता देता है।"[3]

आज वैचारिक संघर्ष एक अत्यंत व्यापक मोर्चे पर, हमारे युग की सभी प्रमुख समस्याओं के इर्द-गिर्द तथा तेज़ी से बदलती परिस्थितियों में, चल रहा है। जैसाकि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने अनुभव किया, "वैचारिक संघर्ष की समस्याएँ उत्तरोत्तर अधिक प्रमुखता प्राप्त करती जा रही हैं तथा समाजवाद के बारे में सच्चाई इस संघर्ष का शक्तिशाली हथियार है।"[4] समाजवादी विचारधारा एक वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि है जो अपने समर्थकों को सोद्देश्य ढंग से संघर्ष को चलाने में, तथा कल्पनाशीलता के साथ ठोस वैज्ञानिक तर्कों तथा अकाट्य तथ्यों के भरे-पूरे शस्त्रागार पर भरोसा करने में समर्थ बनाती है।

समाजवादी विचारधारा सोवियत जीवन-पद्धति, समाजवाद की महान

---

1 वी० आई० लेनिन, 'वामपंथी कम्युनिज़्म, एक बचकाना मर्ज़,' संकलित रचनाएं, खंड 31, पृ० 38

2 वी० आई० लेनिन, 'रूसी सामाजिक-जनवादियों के कार्यभार,' संकलित रचनाएं, खंड 2, पृ० 331

3. वी० आई० लेनिन, 'क्या करें ?,' संकलित रचनाएं, खंड 5, पृ० 370

4. 'सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज़ तथा प्रस्ताव,' पृ० 13

उपलब्धियों, सर्वाधिक मानवतावादी आदर्शों का उद्घोष करने वाले नये समाज द्वारा विकसित नैतिक मूल्यों की व्यापकता के रास्ते से समूची दुनिया को परिचित कराती है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विचारों, समाजवादी जीवन-पद्धति तथा इसकी आध्यात्मिक बनावट में दिलचस्पी में समूची दुनिया के पैमाने पर बढ़ोतरी हो रही है।

दुनिया के मामलों में हुए हाल ही के परिवर्तनों ने, तथा इनसे जुड़कर अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य ने, समाजवाद के विचारों के और अधिक प्रसार के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया है। यहाँ यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि शीत युद्ध तथा उन्मत्त सोवियत-विरोधी प्रचार के वर्षों ने पूँजीवादी देशों में आबादी के विभिन्न समूहों के मानस में समाजवाद, सोवियत जीवन-पद्धति तथा कम्युनिस्ट आदर्शों के बारे में पूर्वाग्रहों तथा गलत धारणाओं की शक्ल में अपनी गहरी छाप छोड़ी है।

अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य के विरोधी अक्सर यह दावा करते हैं कि एक प्रणाली के रूप में समाजवादी विचारधारा तथा समाजवाद अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक विनिमयों का निरोध करते हैं। यह सच नहीं है।

लेनिन ने इस तथ्य को बार-बार रेखांकित किया कि क्रांतिकारी सिद्धांत के रूप में मार्क्सवाद का उदय विश्व-सभ्यता की मुख्यधारा से हटकर या कटकर नहीं हुआ था। मार्क्सवाद-लेनिनवाद का संकीर्णतावाद से कोई वास्ता नहीं है। कम्युनिस्टों ने मानवता द्वारा सृजित आध्यात्मिक मूल्यों की संपदा को हमेशा आदर दिया है तथा उसे बनाये रखा है। उन्होंने वास्तविक सांस्कृतिक मूल्यों के विनिमयों—ऐसे किन्हीं भी विनिमयों का जो मनुष्यों के सांस्कृतिक विकास तथा राष्ट्रों के मध्य शांति एवं मैत्री के लक्ष्यों की प्राप्ति में अपना योगदान कर सकें—की हमेशा वकालत की है, उन्हें समर्थन दिया है। सांस्कृतिक सहयोग मानवतावादी उद्देश्य की पूर्ति में तभी सहायक होता है जबकि यह संभागी देशों में प्रचलित नियमों, प्रतिमानों तथा परंपराओं के अविचल अनुपालन पर आधारित हो। पश्चिम के कुछ हलकों में "विचारों, मनुष्यों व सूचना के स्वतंत्र विनिमय" के नारे का दोहन ऐसे उद्देश्यों के लिए किया जाता है जिनका वास्तविक सांस्कृतिक सहयोग से कोई वास्ता नहीं है, तथा जो शीत-योद्धाओं के जीर्ण-शीर्ण अस्त्रागार से उधार ली गयी मिथ्यापकारी कपोल कल्पनाओं को पुनरुज्जीवित करने को समर्पित हैं। स्वाभाविक ही है कि समाजवादी देशों के जीवन में कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार द्वारा वैचारिक हस्तक्षेप की किसी भी हरकत का, अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के शब्दों तथा आशय की निर्लज्ज तथा कपटपूर्ण व्याख्याओं का दोहन करके पूँजीवादी दृष्टि तथा नैतिकता को आरोपित करने की किसी भी हरकत का डटकर मुकाबला किया जाता रहा है तथा किया जाता रहेगा।

मौजूदा वैचारिक संघर्ष की परिस्थितियों में पूँजीवादी तथा संशोधनवादी सिद्धांतकारों ने अंतर्राष्ट्रीयतावादी सिद्धांत के रूप में मार्क्सवाद-लेनिनवाद पर, विद्यमान समाजवाद तथा कम्युनिस्ट पार्टियों की नेतृत्वकारी भूमिका पर अपने हमलों को बढ़ा दिया है। पूँजीवादी प्रचार ने किस्म-किस्म की दक्षिणपंथी संशोधनवादी तथा चरम वामपंथी अवधारणाएँ, प्रविधिज्ञ तंत्रीय सिद्धांत तथा समाजवादी एवं कम्युनिस्ट आंदोलन के संकट की बहु-प्रचारित भविष्यवाणियाँ प्रक्षेपित की हैं, तथा साथ ही वह व्यक्ति-पूजावाद, तथा उस दौर में की गयी आत्मपरक गलतियों की आलोचना का दोहन करके समाजवादी देशों के मुट्ठी भर बहिष्कृतों तथा अवसरवादियों—जो राजनीतिक रूप से किसी का भी, मूल्य अथवा व्यक्ति, प्रतिनिधित्व नहीं करते—को ज़ोर-शोर से विज्ञापित कर रहा है।

यहाँ इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि यथार्थपरक चिंतन वाले पश्चिमी समाजशास्त्रियों तथा राजनीतिज्ञों को इसका अहसास है। जैसाकि एल० फ्रायंड ने कहा, "दुर्भाग्य से कम्युनिस्ट सिद्धांत के विग्रह की अभिकल्पना को आगे बढ़ाने के लिए कोई प्रस्थान बिंदु नहीं है। इस तरह का बिंदु न तो घरेलू राजनीति में उपलब्ध है और न वैदेशिक नीति के क्षेत्र में···विग्रह की तो बात ही छोड़ें, कम्युनिस्ट सिद्धांत ऐसी स्थिति में भी नहीं है जिसे उसके पीछे हटने का संकेत माना जा सके।"[1]

वैज्ञानिक समाजवाद के पूँजीवादी तथा निम्न-पूँजीवादी आलोचक अपनी मार्क्सवाद-विरोधी, लेनिनवाद-विरोधी समाजवाद की अवधारणाओं को बेचने की, समाजवाद के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत—**अद्वैतात्मक सिद्धांत** को हटाकर उसके स्थान पर तथाकथित **अनेकवादी प्रतिरूप**[2] को स्वीकृति दिलाने की जी-तोड़ कोशिशें कर रहे हैं। इस सैद्धांतिक कसरत का अर्थ समाजवाद को विशिष्ट राष्ट्रवादी निम्न-पूँजीवादी तबकों व समूहों के हितों के अनुकूल बनाना, उनकी कमज़ोरियों तथा पूर्वाग्रहों का दोहन करके सरकार की संकीर्ण-नौकरशाही अथवा पूँजीवादी प्रणाली को थोपने का मार्ग प्रशस्त करना है।

वैज्ञानिक समाजवाद समाजवादी विचारधारा का पर्याय है। मात्र यह तथ्य समाजवादी समाज के सिद्धांत, उसके सार-तत्व तथा उसे निर्मित करने की पद्धतियों, उसके विकास को सचालित करने वाले उसके सिद्धांत तथा बुनियादी नियमों के व्यापक महत्व की ओर संकेत करता है। समाजवाद का प्रश्न, जो हमारे युग का केन्द्रीय प्रश्न है, मौजूदा दौर के वैचारिक संघर्ष के केन्द्र में है। देशों का एक बड़ा समूह अब समाजवाद के रास्ते पर चल पड़ा है। कई अन्य देशों ने विकास का ग़ैर-पूँजीवादी रास्ता अपनाया है; वे आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों को

1. एल० फ्रायड, 'कोएग्जिस्टेंज उंड एंत्स्पानुंग,' शार्नबर्ग, 1976, पृ० 16
2 देखें वैज्ञानिक कम्युनिज्म तथा इसके विश्वघाती आलोचक, मास्को, 1974, (रूसी में)

ाति हैं तथा व्यापक रूप से भिन्न ऐतिहासिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परि-
यतियों में नये समाजों का निर्माण कर रहे हैं। समाजवाद के लिए संघर्ष का
ामाजिक जनाधार बेहद विस्तृत हुआ है तथा इसमें मेहनतकश जनता के व्यापक
वर्गों व कई किस्म के ग़ैर-सर्वहारा स्तर भी शामिल हो गये हैं। वे सब समाजवाद
ो अपनी प्रमुख आकांक्षाओं तथा महत्वपूर्ण हितों का मूर्तिमान रूप मानते हैं।

साथ ही, नये समाज के निर्माण के प्रयत्न में निहित जटिलताएँ, समाजवादी र्माण में भाग लेने वाले लोगों के चेतना के वास्तविक स्तरों तथा जीवन की रिस्थितियों की व्यापक विविधता, शताब्दियों द्वारा निर्मित भ्रांत धारणाएँ, ादतें तथा पूर्वाग्रह, ख़ास स्तरों तथा समूहों के सामाजिक एवं राजनीतिक अनु-व की सीमाएँ, तथा सूक्ष्म पूँजीवादी प्रचार का असर—ये सब मिलकर कतिपय सी कठिनाइयों को जन्म देते हैं जो समाजवादी निर्माण के सकारात्मक कार्यभार े समाधान को अवरुद्ध करती हैं। वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धांत तथा व्यवहार ा वामपंथी तथा दक्षिणपंथी भटकाव एवं विचलन इन कठिनाइयों के संदर्भ में *ूँजीवादी प्रतिक्रिया के विशिष्ट रूप हैं।*

कम्युनिस्टों के लिए ये विकृतियाँ कोई नयी चीज़ नहीं हैं, चाहे ये विकृतियाँ ाज कितनी भी अजीबोग़रीब तथा बेतुकी क्यों न हो गयी हों। यह सर्वविदित है ि वैज्ञानिक समाजवाद ने सभी किस्म के पूँजीवादी तथा निम्न-पूँजीवादी और ूप समाजवादी अवधारणाओं के ख़िलाफ़ अटल संघर्ष के दौर से गुज़रकर ही वयं को स्थापित किया था। मार्क्स-एंगेल्स ने अपने काल में उनके ख़िलाफ़ संघर्ष िया था, तथा बाद में लेनिन ने किया और अब तमाम कम्युनिस्ट सच्ची लेनिन-ादी परंपरा में यह कर रहे हैं। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं ांग्रेस में लियोनिद ब्रेझनेव ने अपने भाषण में कहा था: "हमें उत्साह से यह ाने रहने की ज़रूरत है क्योंकि दक्षिणपंथी तथा चरम वामपंथी संशोधनवाद ोनों ही सक्रिय हैं, तथा कम्युनिस्ट आंदोलन के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांतों के क्ष में, तथा उन्हें क्षति पहुँचाने के प्रयासों के ख़िलाफ़ संघर्ष आज भी हम सबका ाझा कार्यभार है।"[1]

सोवियत कम्युनिस्ट मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांतों में अपनी आस्था पर अटल रहकर, लेनिन द्वारा सौंपी गयी धरोहर से प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं तथा इसे विकसित करते रहे हैं।

लेनिन के शब्दों में "हमारा अपना दृष्टिकोण पूरी तरह से मार्क्सवादी वैज्ञानिक आधार पर टिका हुआ है: मार्क्सवाद ने सबसे पहले समाजवाद को कल्पनालोक से विज्ञान में बदला, इस विज्ञान की ठोस नींव रखी तथा उस पथ को

---

1 'सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज़ तथा प्रस्ताव,' पृ० 37

ओर संकेत भी किया जिसका अनुसरण करके इसका और अधिक विकास तथा विवेचन किया जा सकता था।"[1] लेनिन ने समाजवादी विकास—जोकि अपने चारों ओर की परिस्थितियों पर निर्भर करता है—के प्रति एक कल्पनाशील दृष्टिकोण की आवश्यकता पर जोर देते हुए यह उजागर किया कि समाजवाद के बुनियादी, केन्द्रीय सिद्धांतों की अंतर्राष्ट्रीय प्रासंगिकता तथा निहितार्थ हैं। उन्होंने लिखा : "··· रूसी प्रतिरूप···सभी देशों के सामने ऐसी चीज उद्‌घाटित करता है जोकि उनके निकट एवं अवश्यंभावी भविष्य के लिए बेहद सार्थक है।"[2]

अपने प्रतिवेदन "महान अक्तूबर क्रांति और मानवता की प्रगति" में लियोनिद ब्रेझनेव ने सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के साठ वर्षों की उपलब्धियों तथा विश्व समाजवाद के समग्र अनुभव व ऐतिहासिक शिक्षाओं के आधार पर समाजवादी क्रांति तथा समाजवादी निर्माण की सामान्य केन्द्रीय विशेषताओं का गहरा विश्लेषण प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन के शब्दों में :

"सत्ता का प्रश्न अभी भी क्रांति का मुख्य मुद्दा बना हुआ है। यह या तो सभी मेहनतकश लोगों से मिलकर काम करने वाले मजदूर वर्ग की सत्ता होगी अथवा पूँजीपति वर्ग की। तीसरी संभावना कोई नहीं है;

"समाजवाद में संक्रमण तभी संभव है जब वास्तविक राजनीतिक सत्ता प्राप्त करके मजदूर वर्ग तथा उसके सहयोगी का इस्तेमाल पूँजीपति तथा अन्य शोषकों के सामाजिक-आर्थिक प्रभुत्व को समाप्त करने के लिए करें;

"समाजवाद तभी विजयी हो सकता है जब कम्युनिस्ट—जो मजदूर वर्ग का हिरावल दस्ता है—मेहनतकश लोगों को नये समाज के निर्माण, अर्थव्यवस्था तथा समस्त सामाजिक संबंधों को समाजवादी नीतियों के अनुरूप रूपांतरित करने के संघर्ष के लिए एकताबद्ध तथा प्रेरित करने में समर्थ हों;

"समाजवाद अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर सकता है जब मेहनतकश लोगों की सत्ता वर्ग-शत्रु के हमलों (और इस तरह के अदरूनी तथा बाहरी हमले अवश्यंभावी हैं) से क्रांति की रक्षा करने में सक्षम हो।"[3]

मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत तथा अब तक का अनुभव बताता है कि समाजवाद पचमेल आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक तथा वैचारिक सिद्धांतों पर आधारित नहीं हो सकता, कि राष्ट्रवाद अथवा पूँजीवादी-उदारवादी स्वतंत्रताओं अथवा प्रशासन की सैन्य-नौकरशाही प्रणालियों के साथ समाजवाद को मिलाने-

---

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'हमारा कार्यक्रम,' संकलित रचनाएं', खंड 4, पृ॰ 210
2. वी॰ आई॰ लेनिन, 'वामपंथी कम्युनिज्म—एक बचकाना मर्ज,' संकलित रचनाएं', खंड 31, पृ॰ 22
3. लियोनिद ब्रेझनेव, 'महान अक्तूबर क्रांति और मानवता की प्रगति,' प्रगति, मास्को, 1977, पृ॰ 19

जोड़ने के प्रयास विफल होने को अभिशप्त हैं।

लेनिन के विश्लेषण तथा क्रान्तिकारी व्यवहार की समस्याओं के प्रति उनके नजरिये का स्थायी पद्धतिमूलक मूल्य इस तथ्य में निहित है कि इसका उद्देश्य अलग-अलग घटनाओं तथा उदाहरणों में उन तत्वों की पहचान करना होता है जिनकी प्रासंगिकता सार्वत्रिक, अंतर्राष्ट्रीय है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद अंतर्राष्ट्रीय अनुभव, काल विशेष के *प्रमुख अंतर्विरोधों व उनके लक्षणों के प्रिज्म का उपयोग* सटीक, विशिष्ट परिस्थितियों तथा स्थितियों को उस समृद्ध विविधता को देखने के लिए करता है जिसमे समाजवादी क्रांति तथा समाजवादी निर्माण के विकास को संचालित करने वाले नियम अभिव्यक्ति तथा व्यावहारिक प्रयोग के कई भिन्न रूपों को हासिल करते हैं।

जारी वैचारिक संघर्ष में दो ध्रुवीकृत सामाजिक व्यवस्थाओं के पास उपलब्ध वैचारिक एवं नैतिक संसाधनो का बेहद महत्व है।

यह वैचारिक संघर्ष समाज—जिसका प्रतिनिधित्व हरेक विरोधी विचारधारा करती है—का नैतिक एवं राजनीतिक प्रतिष्ठा को प्रतिबिंबित करता है। सोवियत सध की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वी कांग्रेस ने उस संकट का व्यापक, गंभीर विश्लेषण किया जिसने आधुनिक पूँजीवाद के सभी पक्षों—आध्यात्मिक क्षेत्र सहित—को प्रभावित किया है। लियोनिद ब्रेझनेव ने रेखांकित किया कि : *"पूँजीवादी समाज का राजनीतिक-वैचारिक संकट अधिक तीव्र एवं गहरा है। यह सत्ता की संस्थाओं* तथा पूंजीवादी राजनीतिक दलो को आक्रांत करता है तथा बुनियादी नैतिक प्रतिमानो को क्षति पहुँचाता है। राज्य के तंत्र के सर्वोच्च स्तरों तक में भ्रष्टाचार खुला व उजागर है। बौद्धिक संस्कृति का पतन जारी है तथा अपराध-दर बढ़ रही है।

"पूँजीवाद के स्वचल विध्वंस की भविष्यवाणी *की बात तो कम्युनिस्टों* के दिमाग मे आ ही नही सकती। इसके पास अभी भी पर्याप्त सुरक्षित निधि है। तो भी, हाल के वर्षों का घटना-विकास इसे ज़ोर-शोर से पुष्ट करता है कि पूँजीवाद ऐसा समाज है जिसका कोई भविष्य नही है।"[1]

सशोधनवादी आलोचक दो मार्क्सवादी मान्यताओं—पहली *पूँजीवादी विचारधारा के संकट से सबंधित तथा दूसरी वह जिसके अनुसार समाजवादी विचारधारा* की भूमिका के अवमूल्यन अथवा उसकी खिल्ली उड़ाने का अर्थ पूँजीवादी विचारधारा को शक्ति अर्जित करने की अनुमति देना है—के बीच अंतर्विरोध तलाश करने [illegible] में लगे हुए हैं। पूँजीवाद के आम संकट—जिसमे पूँजीवादी विचारधारा [illegible] है—के सबंध मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत के बारे [illegible] की समझ सदा से एकांगी रही है।

[1] [illegible], सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस के दस्तावेज तथा प्रस्ताव,' पृ० 34

यह याद रखना उपयोगी होगा कि अपने गहरे संकट के बावजूद पूंजीवादी विचारधारा इतिहास के मंच से अपने आप ही प्रस्थान नहीं कर देगी, तथा संकट-ग्रस्त होते हुए भी इसके अहितकारी प्रभाव तथा खतरे को कम करके आंकना गलत होगा।

ऐतिहासिक प्रक्रिया तथा व्यावहारिक राजनीति के मापदंड की विश्व-ऐतिहासिक व्यापकता के संबंध में लेनिनवादी दृष्टिकोण का बुनियादी महत्व इस प्रश्न को सही समझ के लिए सारवान है। उन वामपंथियों की, जोकि सामाजिक गतिविधियों के विश्व-ऐतिहासिक तथा व्यावहारिक-राजनीतिक दृष्टिकोण की द्वंद्वात्मकता को समझ पाने में विफल रहे थे, आलोचना करते हुए लेनिन ने लिखा : "संसदवाद ऐतिहासिक रूप से अप्रयुक्त हो गया है। यह प्रचार के अर्थ में तो सही है। फिर भी, हर व्यक्ति जानता है कि व्यवहार में इस पर विजय प्राप्त कर पाना अभी भी आसान काम नहीं है। कई दशक पूर्व पूंजीवाद को ऐतिहासिक रूप से अप्रयुक्त घोषित किया जाना न्यायोचित हो सकता है, लेकिन उससे पूंजीवाद के आधार पर बेहद लंबे तथा निरंतर संघर्ष की आवश्यकता कतई समाप्त नहीं हो जाती। विश्व इतिहास की दृष्टि से संसदवाद ऐतिहासिक रूप से अप्रयुक्त है यानी पूंजीवादी संसदवाद का युग समाप्त हो गया है तथा सर्वहारा की तानाशाही का युग प्रारंभ हो चुका है। यह अकाट्य तथा निर्विवाद है। किंतु विश्व इतिहास की गणना दशकों में की जाती है। दस या बीस वर्ष, पहले या बाद में, से कोई फर्क नहीं पड़ता, यदि विश्व इतिहास के मापदंड से मापा जाये तो। विश्व इतिहास के संदर्भ में यह ऐसी नगण्य अवधि है जिस पर विचार लगभग नहीं किया जा सकता। किंतु मात्र इस वजह से व्यावहारिक राजनीति पर विश्व इतिहास के मापदंड को लागू करना बड़ी भूल होगी।"[1]

लेनिन के इस निष्कर्ष का विशाल मूल्य तथा महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह सामाजिक घटनाओं के विश्लेषण अथवा मूल्यांकन में दो पक्षों, दो भिन्न दृष्टि-कोणों—विश्व-ऐतिहासिक तथा सटीक-राजनीतिक—के घालमेल की अमान्यता तथा अस्वीकार्यता को उजागर करता है। इन दो पक्षों का घपला सैद्धांतिक दृष्टि से दूषित है क्योंकि व्यावहारिक राजनीति में इसका परिणाम परिप्रेक्ष्य का क्षय तथा आत्म-विस्मृति होता है। यह पद्धतिमूलक सिद्धांत—जो स्वायत्त सार्वत्रिकता के गुण से संपन्न है—मौजूदा पूंजीवादी विचारधारा के विश्लेषण के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

पूंजीवाद के व्यापक संकट ने इसके अर्थशास्त्र तथा राजनीति को ही प्रभावित नहीं किया है बल्कि इसके आध्यात्मिक क्षेत्र को भी प्रभावित किया है।

1. वी० आई० लेनिन, 'वामपंथी कम्युनिज्म—एक बचकाना मर्ज,' संकलित रचनाएं, खंड 31, पृ० 56

वादी विचारधारा की दुनिया में प्रभुत्व की वह स्थिति नष्ट हो गयी है जो
कभी थी क्योंकि आज समाजवादी विचारधारा इसको सफलतापूर्वक काट
पा रही है। पूँजीवादी विचारधारा का कोई भविष्य नहीं है, ठीक उसी तरह
से उस वर्ग का कोई भविष्य नहीं है यह जिसकी प्रवक्ता है। पूँजीवादी
ारधारा निरपेक्ष तथा सापेक्ष अर्थों में निरंतर दरिद्र होती जा रही है क्योंकि
समाजवादी विचारधारा—जो भविष्य की विचारधारा है—के दबाव के
ने पीछे हटने को विवश है। विश्व इतिहास के समय-मापक्रम के आधार पर
जाने पर कुल मिलाकर यही स्थिति उभरती है।

अब हम समय-मापक्रम तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर पूरी तरह गौर करें,
पूँजीवादी विचारधारा के जारी संकट के, तथा इसकी बढ़ती हुई दरिद्रता तथा
नशीलता के मर्म तथा सार-तत्व को व्यावहारिक-राजनीतिक कार्य-व्यापार में
सम्मोहन नहीं करना चाहिए। पूँजीवादी चेतना-रूपों के सार्वभौम संकट का
हितार्थ यह नहीं है कि पूँजीवादी विचारधारा अब प्रबल शत्रु नहीं रह गयी है।
की अहितकर संभावनापूर्ण क्षमताओं को कम करके आँकने की कोई भी कोशिश
ी मूर्खता होगी। पूँजीवादी विचारधारा के संकट का गहन विश्लेषण प्रस्तुत
ने के साथ-साथ लेनिन ने इसके वैचारिक प्रतिरोध—जिसको "जड़ें अपार
री हैं तथा जो शक्तिशाली है"[1]—को परास्त करने का कार्य-भार भी निर्धारित
या। अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर वैचारिक संघर्ष के उतार-चढ़ाव युक्त विकास तथा
रधारा के क्षेत्र में मौजूदा वर्ग-संघर्ष ने लेनिन के निष्कर्षों तथा भविष्य-
णियों की अचूकता तथा गंभीरता को प्रमाणित कर दिया है।

पूँजीवाद के आध्यात्मिक जीवन में तीव्र होती हुई राज्य-इजारेदारी प्रवृत्तियों
समाज के पूँजीवादी तबकों में, आज के पूँजीवादी प्रचार के रूपों के बारे में
[illegible] द्वारा की जा रही गहन आलोचना के रूप में, प्रतिक्रिया
जन्म दिया है। इस आलोचना का चरित्र कुल मिलाकर पूँजीवादी ही है।
[illegible] राज्य-इजारेदार पूँजीवाद द्वारा आध्यात्मिक जीवन पर
[illegible] नियंत्रणों का विरोध करते हैं, वे उदारवादियों तथा
[illegible] के विरुद्ध हैं। यह आलोचना इस कारण से उल्लेखनीय है कि यह पूँजी-
[illegible]

[illegible]

— [1] [illegible]

इस तरह की आलोचना का मूल्यांकन करते समय, किसी को भी अन्य चीजों के अलावा विचारों के पूंजीवादी बाजार में प्रतिस्पर्द्धा पर भी गौर करना चाहिए जो प्रतियोगियों को आत्मालोचना तथा अपने प्रतिद्वंद्वियों की आलोचना करने को विवश करती है। उनका प्रयास यह प्रदर्शित करना होता है कि यह अथवा वह समूह अपने वर्ग के हितों को बेहतर ढंग से तथा अधिक पूर्णता के साथ अभिव्यक्ति देने और विश्वसनीय एवं लचीले वैचारिक अस्त्रों की सहायता से पूंजीवादी समाज को सुरक्षित रखने की स्थिति में होगा। विभिन्न पूंजीवादी-उदारवादी अवधारणाओं, जो आधुनिक पूंजीवादी संबंधों की जमीन पर अंकुरित हो गयी हैं, का एक ही ध्येय है। गहराते अंतर्विरोधों एवं संघर्षों के बावजूद पूंजीवादी व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करने, पूंजीवाद के पक्ष में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के फलों का दोहन करने तथा स्वयं को बदलती हुई अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के अनुकूल बनाने के उद्देश्य से किये गये कई किस्म के आर्थिक एवं सामाजिक उपायों ने पिछले दिनों इस जमीन को गहराई से उपजाऊ बनाया है। पूंजीवादी विचारधारा तथा प्रचार, जिस पर इजारेदार घराने विपुल धनराशि व्यय करते हैं, इसी ध्येय को समर्पित हैं।

एक अन्य परिस्थिति की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन के ऊपर राज्य-इजारेदार पूंजीवाद द्वारा लगाये गये नियंत्रण के आंतरिक कामकाज तथा सटीक क्रियाविधि का अभी तक भी बहुत कम अध्ययन किया गया है। इसका कारण पड़ताल के विषय की अंतर्भूत जटिलता मात्र नहीं है। तथ्य यह है कि जन-माध्यमों तथा कलात्मक एवं वैज्ञानिक कार्यकलाप को नियंत्रित करने की वास्तविक क्रियाविधि इजारेदार पूंजी के लिए अभी तक पवित्रों से भी पवित्र बनी हुई है तथा जिसने इसे अत्यंत सुरक्षित रहस्य बना रखा है।

पूंजीवादी विचारधारा तथा प्रचार, रहस्यावृत्त पूंजीवादी यथार्थ द्वारा पोषित एवं विकसित, दोनों ही इसे क्षीण करते हैं तथा इसका दोहन करते हैं। मिथकों के निर्माण को भी पूंजीवादी विचारधारा ने प्रत्ययात्मक चरित्र प्रदान कर दिया है तथा ऐसे प्रमुख सिद्धांत के रूप में इसका दर्जा ऊंचा कर दिया है कि पूंजीवादी प्रचार के सभी स्तरों पर सचेतन रूप से तथा सावधानीपूर्वक संगठित तरीके से इसे क्रियान्वित किया जा रहा है। यह विरोधाभासपूर्ण ही है कि मिथक-निर्माण की यह सबसे बड़ी कमजोरी भी है तथा यही कारण है कि यह इतिहास द्वारा अभिशप्त है।

6. पूंजीवादी समाज तथा उसकी विचारधारा का गहराता आध्यात्मिक संकट

वैचारिक कार्यकलाप के लेनिनवादी सिद्धांत, वर्तमान जनवादी आंदोलनों [illegible]

कन, आधुनिक पूंजीवादी समाज के मध्यवर्ती स्तरों के विभिन्न समूहों के
ष्ट आध्यात्मिक हितों तथा राजनीतिक बोध के भिन्न स्तरों की पहचान करने
कार्य इन दिनो विशेष महत्व अर्जित कर रहे हैं। इन समस्याओं की संपूर्णता
ज के आध्यात्मिक जीवन का बेहतर ज्ञान प्राप्त करने के लिए मार्क्सवादी-
नवादी पद्धतिशास्त्र के अधिक सक्रिय विवेचन की मांग करती है। यह पद्धति-
न मताग्रवादियो के संकीर्ण दृष्टिकोण तथा वैचारिक सर्वाहारीपन का समान
से विरोध करता है।

ध्रुवीकृत वैचारिक सिद्धात असमाधेय होते हैं। सिद्धांत, कार्यक्रम तथा झंडे के
लों में कोई रियायतें नही की जा सकती—यह वह स्पष्ट नीति है जिसे
न ने सूत्रित किया था तथा कम्युनिस्ट पार्टी जिसका अनुसरण करती है। इस
का क्रियान्वयन, आध्यात्मिक क्षेत्र में वर्ग-संघर्ष के सार-तत्व तथा उसकी
श्चितता की समझ, दो मोर्चों—दक्षिणपंथी तथा वामपंथी सशोधनवादियों,
ां ही समस्या के सार को विकृत करते हैं—पर सघर्ष का स्थल बना हुआ है।

मार्क्सवादी आलोचको ने यह सिद्ध कर दिया है कि दक्षिणपंथी संशोधनवाद
तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांतो को विचारधारा के क्षेत्र तक बढ़ाने की कोशिश
रहा है ताकि समाजवादी चेतना तथा समाजवादी विचारधारा मे विजातीय
ों का समावेश कर सके। पूंजीवादी सिद्धांतकार दक्षिणपंथी संशोधनवाद की
भूमिका को भली-भांति समझते हैं। ओ० लैंबर्ग ने अपनी पुस्तक रिफ़ॉर्मेशन इन
ुनिज्म (सुधार से उनका जो अर्थ है वह संशोधन से मिलता-जुलता है—
क) में रूखे किंतु स्पष्टवादी ढंग से कहा कि नये सैद्धांतिक विचारों का अर्थ
ारधारा तथा विज्ञान का विरोध करना व दर्शन के रूप में मार्क्सवाद के
ानिक चरित्र को नकारना है। लैंबर्ग का दावा है कि आधुनिक संशोधनवादियों
ा प्रवर्तित नये सैद्धांतिक विचार समाजवादी तथा पूंजीवादी दुनियाओं के
ारिक अभिसरण के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करते हैं तथा
चम को इन परिस्थितियों का पूर्णतया दोहन करना चाहिए।[1] साथ ही, दक्षिण-
ी तथा वामपंथी संशोधनवादी, दोनों ही, पूंजीवादी देशों मे बौद्धिक समुदाय को
ारिक रूप से प्रभावित करने की तथा निम्न-पूंजीवादी रंग देकर उनके सामने
र्सवाद तथा समाजवाद को परोसने की जी-तोड़ कोशिशों में लगे हुए हैं।
द्धिक समुदाय की ओर यह नया रुझान आकस्मिक नही है।

बुद्धिजीवी वर्ग के सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास के तरीकों का प्रश्न
ज विशेष रूप से तात्कालिक बन गया है जब समाजवाद हमारे युग की सर्वाधिक
त्वपूर्ण तथा ज़ोरदार समस्याओ के यथार्थवादी समाधान के संकेत दे रहा है,

जब पूँजीवाद के वर्गीय अन्तर्विरोध तीव्र हो गये हैं तथा दुनिया वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के युग में प्रवेश कर चुकी है—इन सबने मिलकर सामाजिक जीवन के सभी पक्षों को सर्वंगत बनाने की तथा विज्ञान को उत्पादन एवं प्रबंधन का अभिन्न अंग बनाने की आवश्यकता उत्पन्न कर दी है।

पूँजीवादी तथा समाजवादी विचारधाराओं के संघर्ष में विज्ञान एवं संस्कृति तथा मानवतावाद के ऐतिहासिक भविष्य की समस्याओं की छाया दूर तक देखी जा सकती है। मेहनतकश वर्ग के अनुभों को इसका बोध है। पूँजीवादी समाजशास्त्र में वि-वैचारिकीकरण की अवधारणा के उदय का निशाना वैदेशिक तथा आन्तरिक नीति दोनों ही थी। इस अवधारणा के निर्माताओं ने पूँजीवादी विचारधारा के निरंतर पतन तथा पूँजीवादी प्रचार के विभिन्न रूपों के प्रति जनता के बढ़ते हुए अविश्वास पर विचार किया। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वि-वैचारिकीकरण को इसके फेरी वालों ने प्रमुख वैज्ञानिक हस्तियों के उल्लेखों, ज्ञान के निःस्वार्थ तथा निर्विकार चरित्र—जो वर्गहित से स्वतन्त्र तथा प्रचारात्मक ध्येय के प्रतिकूल बताया गया—के नीचे छिपाकर पेश किया। यह तर्क नीति खास तौर पर पश्चिम के वैज्ञानिक तथा कलात्मक समुदायों के कतिपय हिस्सों को—जो विविध कारणों से अपनी वैचारिक तटस्थता को बनाये रखना चाहते हैं तथा हमारे समय के ज्वलंत प्रश्नों से स्वयं को दूर रखने की ओर ध्यान रखते हैं—को प्रभावित करने के लिए तैयार की गयी थी।

वि-वैचारिकीकरण की अवधारणा के निर्माता यह आभास पैदा करने की भी कोशिश कर रहे हैं कि मार्क्सवादियों तथा ग़ैर-मार्क्सवादियों का विभाजन इस तथ्य में निहित है कि मार्क्सवादी विचारधारा तथा प्रचार की वकालत करते हैं जबकि ग़ैर-मार्क्सवादी विज्ञान तथा सूचना पर अधिक भरोसा करते हैं।

ऐसी स्थिति में जहाँ मार्क्सवाद-लेनिनवाद की प्रतिष्ठा तथा प्रभाव में वृद्धि हो रही है, जहाँ समाजवादी देशों का उदाहरण बाकी दुनिया के लिए अधिक आकर्षक बन रहा है, पूँजीवादी प्रचार बुद्धिजीवी वर्ग को हमारे युग की उन्नत विचारधारा से काटने की, विद्यमान समाजवाद के अनुभव को काला रंग देने के प्रयासों में लगा हुआ है। पूँजीवादी विचारधारा द्वारा इस समाज-व्यवस्था की पूर्ति के क्रम में किये जाने वाले प्रयासों के चौखटे में दक्षिणपंथी संशोधनवादियों को—जो स्वयं को सृजनशील मार्क्सवादियों के रूप में चित्रित कर रहे हैं—विशेष कार्य सौंपे गये हैं। उन दक्षिणपंथी संशोधनवादियों को, जिन्होंने संस्कृति, कला एवं साहित्य के क्षेत्र में विशेष दक्षता अर्जित की है, विशेष ज़िम्मेदारियाँ सौंपी गयी हैं। दक्षिणपंथी संशोधनवाद वैज्ञानिक समाजवाद के खिलाफ स्वास्थ्यकर वैचारिक घेरा डालने की कोशिशें कर रहा है यह घोषित करके कि आज दुनिया में बुद्धिजीवी-वर्ग ही एकमात्र सृजनशील शक्ति है और उन्नत पूँजीवादी देशों में बौद्धिक समुदाय के एक

हिस्से की उन भावनाओं तथा मनोदशाओं का पूरी तरह दोहन करके, जो उन
सामाजिक प्रतिष्ठा से उत्पन्न हो न होकर *आध्यात्मिक उत्पादन के संघटन
सिद्धांतों तथा संरचनाओं को प्रभावित करने वाली रुग्ण प्रतिक्रिया में भी खो
जा सकती हैं;* जोकि पूँजीवाद के अंतर्गत वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति द्वा
उत्पन्न वस्तुगत आवश्यकता की अवश्यंभाविता से पैदा हुई हैं।

जहाँ तक वामपंथी संशोधनवादियों का संबंध है वे चरम-क्रांतिकारी लग
वाली शब्दावली से अपने को छिपाकर बुद्धिजीवी-वर्ग की क्रांतिकारी संभावनापू
क्षमताओं को नकारते हैं तथा उसे प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी जनसमूह की संज्ञा दे
हैं। हाल ही के इतिहास ने *इस तरह के मार्क्सवाद-विरोधी विचारों तथा दृष्टिको
के विनाशकारी परिणामों को बार-बार प्रदर्शित किया है।*

बुद्धिजीवी-वर्ग की समस्या का वैज्ञानिक समाधान लेनिन ने प्रस्तुत किया
जिन्होंने उसकी सामाजिक भूमिका तथा क्रांतिकारी संभावनापूर्ण क्षमता क
गहराई से मूल्यांकन किया है। लेनिन के अनुसार, "निम्न पूँजीवादी जनवाद कोई
आकस्मिक गठन नहीं है, अपवाद नहीं है, बल्कि पूँजीवाद की अनिवार्य उपज है।
पुराने, प्राक्-पूँजीवादी, आर्थिक रूप से प्रतिक्रियावादी मझोले किसान ही इस
जनवाद के रसद-प्रबंधक नहीं हैं। *बड़े पूँजीवाद की जमीन से उत्पन्न, पूँजीवादी
प्रशिक्षण प्राप्त सहकारी समितियाँ तथा बुद्धिजीवी आदि भी यह भूमिका निभाते
हैं।*"[1] लेनिन की सैद्धांतिक धरोहर में पूँजीवादी समाज की *सामाजिक वर्गीय*
संरचना के भीतर बुद्धिजीवी वर्ग की भूमिका एवं स्थान का विश्लेषण निहित है,
जोकि उसके सामाजिक व्यवहार, चेतना एवं मनोविज्ञान के विशिष्ट लक्षणों के
उद्घाटित करने को संभव बनाता है। लेनिन ने बताया कि "...आधुनिक पूँजी-
वादी समाज के एक विशेष स्तर के रूप में मोटे तौर पर बुद्धिजीवी वर्ग को
असंदिग्ध रूप से व्यक्तिवाद, अनुशासन तथा संघटन की असामर्थ्य ही लाक्षणिक
रूप से चित्रित करते हैं...। संयोग से यही वह लक्षण है जो इस सामाजिक स्तर
को सर्वहारा से नकारात्मक रूप से अलग करता है; बुद्धिजीवी की शिथिलता तथा
*अस्थिरता का यह एक कारण है। जिसका अनुभव सर्वहारा को अक्सर होता है;
तथा बुद्धिजीवी वर्ग की यह विशेषता उसके पारंपरिक रहन-सहन, जीविका-वृत्ति
से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है तथा जो उसे निम्न पूँजीवादी जीवन-पद्धति के बहुत
क़रीब ले आती है...।*"[2]

उपरोक्त परिभाषा में तीन बिंदुओं को अलग छाँटना उपयोगी होगा।

---

1. वी॰ आई॰ लेनिन, 'बड़ी समस्याओं के निदर्शन में एक लघु चित्र,' संकलित रचनाएं, खंड 29, पृ॰ 389
2. वी॰ आई॰ लेनिन, 'एक कदम आगे, दो कदम पीछे,' संकलित रचनाएं, खंड 7, पृ॰ 269

पहला, लेनिन बुद्धिजीवी वर्ग की चर्चा पूंजीवादी समाज के एक सुनिश्चित सामाजिक स्तर के रूप में करते हैं। इसे रेखांकित किया जाना चाहिए क्योंकि पूंजीवादी समाज के निम्न-पूंजीवादी स्तर की सामाजिक-राजनीतिक विशेषताओं तथा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक गुणधर्मों के चित्रण को खीच-तानकर समाजवादी समाज के बुद्धिजीवी वर्ग पर लागू करना ग़लत होगा क्योंकि वह मजदूर वर्ग तथा किसानों के साथ मिलकर कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे कम्युनिस्ट निर्माण में सक्रिय भाग लेता है तथा जनता के साझे लक्ष्य को अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है।

दूसरे, लेनिन पूंजीवादी समाज के बुद्धिजीवी वर्ग की सामाजिक तस्वीर खीचते हुए उसकी सुनिश्चित सामाजिक-मनोवैज्ञानिक भंगिमाओं की चर्चा करते हैं जोकि उसे मेहनतकश वर्ग से भिन्न बनाती हैं।

और तीसरे, लेनिन बुद्धिजीवी वर्ग की निम्न-पूंजीवादी चेतना की चर्चा एक विशेष किस्म की चेतना के रूप में करते हैं जोकि किसान वर्ग की निम्न-पूंजीवादी चेतना से उद्भव व अभिव्यक्ति दोनों ही के अर्थों मे भिन्न होती है। सार रूप मे एक ही निम्न-पूंजीवादी चेतना की ये विभिन्न किस्में एक-दूसरे से काफी भिन्न होती हैं तथा इन्हें न तो नज़रंदाज किया जा सकता है और न इनकी अवमानना की जा सकती है।

किसान वर्ग की निम्न-पूंजीवादी चेतना अधिक रूढ़िवादी, कम गतिशील और इसी कारण से अधिक परंपरावादी रूपों मे विद्यमान रहती है तथा दोहराई जाती है जबकि बुद्धिजीवी वर्ग की निम्न-पूंजीवादी चेतना उन रूपों मे विद्यमान होती व दोहराई जाती है जिनकी विशेषता अधिक गतिशीलता, परिवर्तनशीलता तथा अधिक आलोचना होती हैं जोकि पूंजीवादी समाज की वास्तविकताओं से टकराकर तथाकथित कुंठित चेतना को जन्म देती हैं। इससे यह पता चलता है कि बुद्धिजीवी वर्ग सामाजिक अन्याय (ज्यादतियों) व संघर्ष के प्रति इतना संवेदनशील क्यों है, पूंजीवादी समाज के मानवीय व नैतिक मूल्यों के गहरे संकट का उसे इतना तीव्र बोध क्यों है।

कुछ प्रतिबंधों को स्वीकृति देकर यह कहा जा सकता है कि किसान वर्ग की निम्न-पूंजीवादी चेतना अपने आपको मोटे तौर पर पूर्वाग्रहों के माध्यम से साकार करती है जबकि बुद्धिजीवी वर्ग की निम्न-पूंजीवादी चेतना भ्रमों के माध्यम से साकार होती है।

इस मुद्दे को निदर्शित करने के लिए हम निम्नलिखित तुलना का भी उपयोग कर सकते हैं : वैचारिक तटस्थता, सामाजिक जड़ता, सामाजिक समस्याओं के प्रति उदासीनता समूचे किसान वर्ग की विशिष्टता होती है अतः किसान वर्ग को वैचारिक तथा राजनीतिक रूप से शिक्षित करने में प्रमुख कठिनाई किसान वर्ग को महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं में सक्रिय रुचि प्रदर्शित करने के लिए तैयार करने

[पूंजीवादी समाज में जीवन के अमानवीकरण के विरुद्ध प्रगतिशील शक्तियों के विरोध आज पश्चिम में सांस्कृतिक जीवन के प्रभावी प्रयोजन बन गये है, जोकि [पूंजीवादी देशों में जनवादी बुद्धिजीवी वर्ग की साम्राज्यवाद-विरोधी, इजारेदार-विरोधी दृष्टि की सजीव अभिव्यक्तियों में से एक है।

वैचारिक संबधों की परत के पीछे भौतिक संबधो की परत देखना मानव-चेतना के मार्क्सवादी विश्लेषण का महत्वपूर्ण सिद्धात है। यह सिद्धात वैचारिक वास्तविकताओं की पड़ताल की पद्धति से दो अपेक्षाएँ रखता है जो एक-दूसरे से जुड़ी हुई तो है किंतु एक के स्थान पर दूसरी को कतई नहीं रखा जा सकता। इन दोनों अपेक्षाओं पर विचार करने का मूलभूत सैद्धांतिक तथा राजनीतिक महत्व है। एक ओर, किसी खास सामाजिक समूह की वैचारिक चेतना के विशिष्टता-सूचक लक्षणों की व्याख्या उसके सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक विकास की प्रमुख प्रवृत्तियों के प्रति इस दृष्टिकोण के रुझान के आधार पर की जानी चाहिए। तथा दूसरी ओर, वैचारिक चेतना, जिसकी पड़ताल चल रही है, का संपूर्ण विश्लेषण चिंतन की प्रतिलोम क्रिया की माँग करता है। यह दिखाना भी महत्व-पूर्ण है कि इस सामाजिक दृष्टिकोण की न केवल सीमाएँ व अंतर्विरोध, बल्कि समाज के क्रांतिकारी रूपांतरण की प्रक्रिया में इसके सम्मिलित किये जाने की संभावनापूर्ण क्षमता किस रूप मे तथा किन सूत्रो एवं बिंबो के माध्यम से प्रति-बिंबित होती हैं। सिर्फ इस तरीके से ही यह समझा जा सकता है कि पूंजीवादी देशो के बौद्धिक समुदाय का कितना व्यापक स्तर वैचारिक रूप से मार्क्सवाद-लेनिनवाद की ओर अग्रसर हो रहा है।

पूंजीवाद के बढते हुए अमानवीकरण के प्रति बुद्धिजीवी वर्ग विशिष्ट संवेदन-शीलता के साथ प्रतिक्रिया करता है। पूंजीवादी समाज के लिए यह अमानवीकरण कोई नयी चीज नहीं है किंतु नैतिक मूल्यों का संकट उतना गहरा व तीव्र कभी भी नहीं रहा जितना कि यह आज है।

राज्य-इजारेदार पूंजी मनुष्य के दासकरण के क्षेत्र का विस्तार कर रही है। मानव-जीवन के अधिकाधिक पक्षों—काम, विचारों, भावनाओं—को पूंजीवादी शोषण के कार्य-क्षेत्र में खींचा जा रहा है। मानव-व्यक्तित्व का मानवीकरण तथा चीरसीकरण, काम में सोद्देश्यता का निरंतर क्षय तथा मानव-जीवन की पूर्णता का उपभोग के संकीर्ण, अहम्मन्यतापूर्ण हितो में न्यूनीकरण—ये तथा इनसे मिलती-जुलती अन्य विकृतियाँ पूंजीवादी दुनिया की असुंदर तथा मानव-विरोधी उपजों में प्रमुख हैं बुद्धिजीवियों को विशेष रूप से इसका दर्दनाक बोध है क्योंकि किसी भी किस्म की सृजनात्मक गतिविधि मानवीय विशिष्टता से पृथक नहीं की जा सकती क्योंकि मानवीय सृजनशीलता पर अपनी बेजोड़ छाप छोड़ती है।

आर्थिक दासकरण, सामाजिक असमानता तथा राजनीतिक उत्पीड़न पर

आधारित पूंजीवादी रहन-सहन विद्वेषपूर्ण तथा परकीय शक्ति के रूप में बार्त
है। यह अहसास लोगों को अमानवीय दुनिया से पलायन करने को औ
उपप्रवास के खोल में सिमट जाने को तथा जीवन के निष्ठुर यथार्थ से अपने अ
बंद कर लेने को प्रेरित करता है। इस प्रकार पूंजीवादी समाज में जीवन तथा
अकेलेपन की समस्या को, पलायनवाद की विषय-वस्तु को जन्म देते हैं।

शत्रुतापूर्ण दुनिया में अकेलेपन से ग्रस्त मनुष्य—यह पश्चिमी साहित्य,
तथा समाजशास्त्र की प्रमुख विषय-वस्तुओं में से एक है। फिर भी, पूंजीवादी स
की आध्यात्मिक अभावग्रस्तता की आलोचना करते हुए भी मानवतावा
अस्तित्ववादी व्याख्या उसके निहित कारणों को विरूपित करती है। गुम
सामान्य योग्यता, औसत दरजे का होना, अकेलापन तथा आज के पूंजी
समाज में मनुष्य के प्रति उदासीनता को अस्तित्ववादी मानव प्रकृति का स्वाभा
एवं निरपेक्ष परिणाम मानते हैं, अलगाव की दुनिया में जीवन का अभि
अविच्छिन्न गुण मानते हैं। यह व्याख्या एक जटिल मुद्दा है अतः इसका वि
किया जाना चाहिए।

सबसे पहले हमें इस प्रश्न का निश्चित उत्तर देना है: अस्तित्ववादी चे
द्वारा पुनर्सृजित आज के पूंजीवादी समाज के चित्र में वह तत्व कौन-सा है जिस
वास्तविक आधार है तथा वह तत्व कौन-सा है जिसे छोड़ दिया गया है, तोड़-म
दिया अथवा जरूरत से अधिक अतिरंजित कर दिया गया है?

अपने विकास की प्रक्रिया में पूंजीवाद दो विरोधी प्रवृत्तियों को उत्पन्न क
निरंतर पुनरुत्पादित करता है जोकि पूंजीवादी दुनिया में मानवीय संबंधों त
मनुष्य की आध्यात्मिक बनावट को भिन्न तरीकों से परिभाषित करती हैं।

बढ़ती हुई सामाजिक असमानता, सामाजिक जीवन के प्रमुख क्षेत्रों में नौक
शाहीकरण में बढ़ोतरी, अद्यतन प्रौद्योगिकी का पूंजीवादी प्रयुक्ति, मनुष्य
निरंतर बढ़ता हुआ आध्यात्मिक उत्पीड़न—ये सब मिलकर मानकीकृत मान
व्यक्तित्वों को तथा समाज से व्यक्ति के अलगाव की भावना को जन्म देते हैं
पूंजीवाद के विकास की इस प्रवृत्ति की एक अभिव्यक्ति सामाजिक विकास
स्वतःस्फूर्त शक्तियों का उदय है जोकि अनाम, शत्रुतापूर्ण शक्तियों के रूप में सक्रि
रहकर मानव-नियतियों को क्षत-विक्षत व नष्ट कर देती हैं। यह स्थिति खासक
निम्न-पूंजीवादी स्तर के सदस्यों के मध्य हताशा एवं निराशा की मनोदशा को है
जन्म दे सकती है। इजारेदारियों के वर्चस्व का निहितार्थ है जनसमूहों (जिसमें
बुद्धिजीवी वर्ग भी सम्मिलित है तथा जो अपने सामाजिक तथा व्यावसायिक गुटों
के कारण राज्य-इजारेदार पूंजी द्वारा आध्यात्मिक जीवन के बढ़ते हुए दमन के
प्रति विशेष संवेदनशील है) के स्वतंत्र कार्य-कलाप के सभी रूपों का सर्वव्याप्त
तथा प्रत्यक्ष दमन।

किन्तु यह पूंजीवाद के विकास का मात्र एक पक्ष है। दूसरा पक्ष है मेहनतकश र्ग तथा जनवादी शक्तियों का इसके साथ-साथ घटित होने वाला विकास। लेनिन शब्दों में : "पूंजीवाद आमतौर पर तथा साम्राज्यवाद ख़ासतौर पर जनवाद ो एक भ्रम में बदल देते हैं—हालांकि साथ ही पूंजीवाद साम्राज्यवाद द्वारा नवाद के नकार तथा जनसमूह की जनवाद की आकांक्षा के बीच विरोध को तीव्र र देता है।"[1] औद्योगीकृत पूंजीवादी देशों में सामान्य जनवादी लक्ष्यों के बढ़ते ए महत्व का यही कारण है।

बुद्धिजीवी वर्ग के सामाजिक दृष्टिकोण में इन दो वस्तुगत प्रवृत्तियों का द्वात्मक रूप से अंतर्विरोधपूर्ण कार्यान्वयन ही आज के पूंजीवादी समाज के विकास ा चित्रांकन करता है। यह कार्यान्वयन अपने चारों ओर की दुनिया के प्रति ुद्धिजीवी वर्ग के विशेष आध्यात्मिक-व्यावहारिक दृष्टिकोण—ऐसा दृष्टिकोण ो सुनिश्चित बिंबों तथा प्रतीकों की प्रणाली में मूर्तिमान होता है—तथा बिंबों व प्रतीकों तथा वैचारिक उत्प्रेरकों की इस प्रणाली पर आधारित सामाजिक ेतना के मार्क्सवादी-लेनिनवादी मूल्यांकन—जिसमें न केवल इसके ग़ैर-मार्क्सीय रित्र का निरूपण ही सुव्यवस्थित रूप से सम्मिलित होता है बल्कि बुद्धिजीवी वर्ग ी स्थायी शांति, वास्तविक जनवाद तथा समाजवाद के लिए मेहनतकश वर्ग के ंघर्ष की मुख्यधारा में आकर्षित करने के सुनिश्चित तरीकों की पहचान करना ी निहित है—दोनों को ही स्पष्ट करता है।

आधुनिक पूंजीवाद के बुनियादी क्षेत्रों का गहन अमानवीकरण तथा उसका हराता हुआ वैचारिक तथा राजनीतिक संकट आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में ुस्पष्ट रूप से उजागर होते हैं। समकालीन पश्चिमी साहित्य की सभी प्रमुख कृतियों ं यह विचार ही प्रमुख है कि सामाजिक अन्याय तथा मुनाफ़े के पूंजीवादी लक्ष्य ी दुनिया सच्चे मानवीय मूल्यों से मेल नहीं खाती, तथा वस्तुतः यह उनका चरम ंडन है। मनुष्य के प्रति मनुष्य की अमानवीयता की दुनिया से पलायन, तथा ूंजीवादी प्रतिष्ठान में सहभागी न होकर उसका विरोध करना विद्यमान हालात े ख़िलाफ़ विरोध का ही एक रूप है। लेकिन यह ऐसे व्यक्ति का विरोध है जो यह मझ पाने में असफल रहता है कि कौन-सी सामाजिक शक्ति उत्पीड़न व दासकरण े लिए जिम्मेदार है। व्यक्ति के हित के प्रति पूंजी की अनाम सत्ता के शत्रुतापूर्ण वैये तथा नौकरशाही की उदासीनता को पलायनवादी व्यक्ति कुल मिलाकर ीवन के शत्रुतापूर्ण रवैये के रूप में, मानवीय दुर्गति के रूप में देखता है।

पश्चिमी लेखकों ने, सामाजिक-आलोचनात्मक परंपरा में, पूंजीवादी समाज ें जीवन के इस पक्ष को अपनी पुस्तकों में प्रतिबिंबित किया है उनकी पुस्तकों का

---

1. वी० आई० लेनिन, 'पी० किएव्स्की को जवाब,' संकलित रचनाएं, खंड 23, पृ० 24-25

मुख्य स्वर मानवतावादी, कारुणिक तथा उदासी भरा है। वे मानव-नियति के प्रति पूंजीवादी समाज की उदासीनता के खिलाफ, व्यक्ति के अधिकारों तथा सम्मान के पैरों तले कुचले जाने के खिलाफ तथा उसकी स्वतंत्रता के अतिक्रमण के खिलाफ भर्त्सना के स्वर मुखरित करते हैं। इन कृतियों—जिनका चरित्र पूंजीवाद विरोधी है—तथा जो पूंजीवादी जगन्नाथ द्वारा कुचले जाने की आशंका से ग्रस्त लोगों की आध्यात्मिक ऊहापोह को अच्छी तरह से संप्रेषित करती हैं—का गंभीर सामाजिक संदेश इनकी उक्त विशेषता में ही निहित है।

पश्चिम में जनवादी साहित्य के गुण (शक्ति) पूंजीवाद तथा बुराइयों की आलोचना में तथा इन पुस्तकों द्वारा घोषित मनुष्य के प्रति सम्मान में निहित हैं जबकि इसकी कमज़ोरियां उनके द्वारा पैदा किये जाने वाले भ्रमों में तथा सामाजिक कार्रवाई के सकारात्मक कार्यक्रम के अभाव में व्यक्त होती हैं।

सुस्पष्ट सकारात्मक विश्व दृष्टि के अभाव में व्यक्तिगत बौद्धिक ईमानदारी तथा सच्चाई जटिल ऐतिहासिक स्थितियों में—जब दुनिया को क्रांतिकारी ढंग से रूपांतरित करने की गतिशील सामाजिक कार्रवाई के लिए दस ईश्वरीय आदेशों में निष्ठा मात्र काफी नहीं है—अवस्थिति व दृष्टिकोण के सही चयन की गारंटी नहीं कर सकती। अमूर्त मानववाद में सामाजिक प्रतिरक्षावाद तथा सामाजिक संदेहवाद—जो उसकी समग्र विश्वदृष्टि से उत्पन्न होता है—के सभी प्रमाण-चिन्ह देखे जा सकते हैं। यह दृष्टिकोण उसे इतिहास में सिर्फ जल्लादों तथा उनके पीड़ितों को ही देखने की अनुमति देता है तथा उससे हर चीज़ का विरोध या तो संपूर्ण अस्वीकार के माध्यम से अथवा व्यक्तिगत अ-सहभागिता के शौर्य के माध्यम से करवाता है।

लेनिन ने इस बात पर ज़ोर दिया कि एक खास विचार "....एक सुनिश्चित सामाजिक वातावरण से उत्पन्न होता है तथा उसे प्रभावित कर सकता है, और यह (विचार) किसी सनकी व्यक्ति की खोज नहीं होता।"[1] इस संदर्भ में अल्बेयर कामू का कृतित्व बेहद लाक्षणिक तथा सूचक है। युद्धोत्तर पश्चिम के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा प्रमुख लेखकों में से एक, कामू ने जो साहित्यिक तथा वैचारिक अवस्थितियां अपनायी वे एक संपूर्ण सामाजिक स्तर—पूंजीवादी पश्चिम के निम्न पूंजीवादी बुद्धिजीवी वर्ग की विश्वदृष्टि, विचारधारा तथा राजनीति के सभी मामलों में उसके अंतर्भूत अंतर्विरोधों समेत—की प्रतिनिधिक थीं। महान प्रतिभा से संपन्न अल्बेयर कामू अपनी पुस्तकों में उन समस्त अंतर्विरोधों का सजीव तथा ईमानदारीपूर्ण प्रतिबिंबन कर पाने में सफल हुए हैं।

कामू तथा अन्य लेखकों व कलाकारों, जो उनके विचारों से सहमत थे, ने

---

1. वी० आई० लेनिन, 'सर्वहारा क्रांति का सैन्य कार्यक्रम,' संकलित रचनाएं, खंड 23, पृष्ठ 86

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान प्रतिरोध में भाग लिया था, तथा इस तथ्य में गहरी तर्क संगति थी। अटल फ़ासिस्ट विरोधियों तथा सच्चे बौद्धिकों व मानववादियों के रूप में वे मजदूरों शिविरों का पक्ष नहीं ले सकते थे।

मानव इतिहास फासिज्म से अधिक भयानक चिंतन व संस्कृति के किसी शत्रु से परिचित नहीं है। लोगों की यंत्रणा की शुरुआत चिंतन की यंत्रणा से हुई। 1939 के बाद समूचे यूरोप में युद्ध की जो विभीषिका फैली थी, उससे पूर्व ही पुस्तकों का होलिका-दहन घटित हो चुका था। आग के निकततापूर्ण धुंआ तथा मृत्यु-शिविरों की भट्टियों ने उन लोगों के भ्रमों को दूर कर दिया जो तब तक युद्ध से अलग व ऊपर रह पाने की उम्मीदें पाले हुए थे तथा जिन्होंने अपने-आपको विचारधारा व राजनीति से साफ़ तौर पर अलग किया हुआ था। इतिहास की शिक्षाएँ, जीवन की शिक्षाएँ सर्वश्रेष्ठ एवं विश्वसनीय शिक्षाएँ होती हैं, चाहे लोग विवश होकर उन्हें सीधे ग्रहण न करें।

कामू के महामारी (द प्लेग), जो फ़ासिज्म के विरुद्ध साझे संघर्ष को उनका प्रमुख साहित्यिक योगदान था, में निभ्रांत सामयिक राजनीतिक संदेश सन्निहित था। स्वयं लेखक ने यह कहा था कि महामारी की प्रमुख विषय-वस्तु नात्सीवाद का प्रतिरोध है। इस उपन्यास में एक महान लेखक की विवेकपूर्ण अंतर्दृष्टि तथा उसकी भ्रांतियाँ, उसकी प्रतिभा की शक्ति तथा निम्न-पूँजीवादी दृष्टि की सीमाएँ एक जटिल गुत्थी में फँसी हुई मिलती हैं, उसका इतिहासवाद-विरोध तथा उसके सामाजिक चिंतन का निराशावाद भी इन्हीं के साथ फँसा हुआ दिखता है। कामू ने महामारी को जीवन की त्रासदी, मानव अस्तित्व तथा समूची ऐतिहासिक प्रक्रिया की असंगति तथा बेतुकेपन के प्रतीक के रूप में देखा। कामू के इस सामाजिक निराशावाद को सिसिफस के क्लासिकीय मिथक की व्याख्या में पूर्ण अभिव्यक्ति मिली।

इस निराशा भरे तथा कारुणिक मिथक—जो मानव अस्तित्व की असंगति, सिसिफस के श्रम के माध्यम से निरर्थक काम करते रहने संबंधी मनुष्य के शाश्वत रूप से अभिशप्त होने को प्रतीकात्मक ढंग से रूपायित करता है—का विरोध प्रमथ्यु का वीरतापूर्ण व्यक्तित्व पैदा करता है जो मानव-हृदय के शाश्वत ज्वलन को, मानव-चिंतन की अदम्य हिम्मत तथा मनुष्य—इतिहास के निर्माता के रूप में, जिसके लिए भूत, भविष्य एवं वर्तमान अभिन्न हैं—के रूप में कर्म के साहस को प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करता है।

मनुष्य सिर्फ अतीत के सहारे अथवा वर्तमान के यहाँ तथा अभी में जीवित नहीं रहते। वे भविष्य की आशाओं के साथ भी जीते हैं। मानव अस्तित्व का आशावादी अर्थ इस तथ्य में ही निहित है कि जो कुछ पहले घटित हो चुका है, जो समय के प्रभाव से मुक्त है तथा पूरी तरह इतिहास का हिस्सा बन चुका है उसकी

और चिंतन व भावनाओं के माध्यम से देखकर, अतीत के इतिहास पर भरोसा करके अब मनुष्य वर्तमान को अपनी शक्ति समर्पित करते हैं तब वे अपने भविष्य की सरचना निर्मित करते हैं। यह अहसास कि उसकी बेजोड़ वैयक्तिक नियति मानव-जाति एवं विश्व इतिहास का हिस्सा है, कि उसके ईमानदार काम के उत्पादनों, उसके दैनंदिन सरोकारों व चिंताओं तथा उसके साहस का लाभ भावी मनुष्यों को मिलता है, कि उस जैसे लाखों-लाख लोगों ने सभ्यता की इमारत को निर्मित किया है तथा जिसे अब सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में सुधारा तथा नया रूप दिया जा रहा है, कि पृथ्वी पर जीवन के लिए किये गये त्याग व्यर्थ नहीं गये हैं—यह अहसास व्यक्ति को आशावाद के भाव से भर देता है तथा उसे मानव अस्तित्व के गहन दार्शनिक अर्थ को समझने में सहायता करता है।

प्रत्येक मनुष्य समय का बंदी है। समय मनुष्य के जीवन की लंबाई को तो निर्धारित करता है किन्तु उसके कार्यों की महानता को नहीं। एक मानव जीवन का अंत उसके चिंतन व श्रम की रचनाओं को समाप्त नहीं करता, तथा ये रचनाएँ सदा बनी रह सकती हैं क्योंकि इतिहास का प्रवाह पलटा नहीं जा सकता तथा कोई भी नयी पीढ़ी अपनी पूर्ववर्ती द्वारा अर्जित एवं उपलब्ध से प्रेरणा लिये बिना न तो जीवित रह सकती है, न काम कर सकती है और न चल सकती है।

"मनुष्य के प्रति आदर! मनुष्य के प्रति सम्मान! यह वास्तविक कसौटी है।"[1]

ये पंक्तियाँ सँत एग्ज्यूपेरी के बंधक व्यक्ति के नाम पत्र (लैटर टू द होस्टेज) से ली गयी हैं, जोकि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान चार करोड़ फ्रांसीसी नर-नारियों में से प्रत्येक के नाम लेखक की ओर से अपील है। यह पत्र अमूर्त मानववाद के वैचारिक तथा साहित्यिक घोषणा पत्र का ही एक रूप है, जिसे पश्चिम के बहुत से प्रगतिशील बौद्धिक मान्यता देते हैं। यह पत्र अमूर्त मानववाद के सकारात्मक तथा दुर्बल बिन्दुओं को उद्घाटित करता है।

एक ओर यह मनुष्य के प्रति सम्मान की मानववादी अपील है, तथा जनवादी अपील भी जोकि लोगों से मनुष्य के सम्मान तथा प्रतिष्ठा की रक्षा के संघर्ष का आह्वान करती है—मानव अधिकारों तथा स्वतंत्रता, जिन्हें पूँजीवादी समाज में पैरों तले कुचला जाता है, की रक्षा के लिए उठ खड़े होने की अपील। दूसरी ओर, यह पत्र अमूर्त मानववाद की सीमित प्रकृति तथा असंगति का अच्छा जायजा प्रस्तुत करता है। वर्ग विभक्त समाज में वर्गों व पार्टियों के ऊपर खड़े होने के सभी प्रयास कल्पनालोक ही हैं क्योंकि गुँधा आटा (मानवीय अंतर्वस्तु के लिए एग्ज्यूपेरी द्वारा प्रयुक्त शब्द) विभिन्न सामाजिक खमीरों की सहायता से ही ऊपर उठता है।

1. एंतोइन द सेंत-एग्ज्यूपेरी, लैटर टू द होस्टेज, पेरिस, 1963, पृ॰ 402

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अमूर्त मानववाद को अमूर्त ढग से नहीं देखा-समझा जा सकता। प्रत्येक विशिष्ट वैयक्तिक मामले तथा स्थिति में उसकी वास्तविक सामाजिक अंतर्वस्तु तथा राजनीतिक दबाव को देखने की कोशिश की जानी चाहिए, अलग-अलग स्थितियों का गहराई से विश्लेषण किया जाना चाहिए ताकि संबंधित घटनाक्रिया के अर्थ का वास्तविक मूल्यांकन करने से पहले विभिन्न वर्गों की अवस्थिति तथा हितों की पहचान की जा सके, उन्हें सुनिश्चित किया जा सके। सामाजिक संशयवाद की जटिल प्रकृति पर विचार करने का भी यही तरीका है।

अमूर्त मानववाद, जोकि पश्चिम के प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग के काफी बड़े हिस्से की लाक्षणिक विशिष्टता है, स्वभाव से इजारेदार विरोधी है तथा इस कारण से उसका चरित्र आम तौर पर जनवादी है। किन्हीं परिस्थितियों में यह पूंजीवाद के खिलाफ़ सक्रिय संघर्ष की संक्रमणकालीन अवस्था तथा मेहनतकश वर्ग तथा व्यापक जनसमूहों के सक्रिय राजनीतिक संघर्ष की प्रस्तावना हो सकता है तथा जोरदार सामाजिक कार्रवाई को जन्म दे सकता है। तथापि, अपनी निम्न-पूंजीवादी वर्गीय अंतर्वस्तु के कारण, अमूर्त मानववाद जटिल राजनीतिक स्थितियों में—जोकि वर्ग-संघर्ष तथा विश्व-दृष्टि के मामलों में सुस्पष्ट नज़रिये की माँग करते हैं—सामाजिक पथ-प्रदर्शिका तथा संकेत-स्तंभ उपलब्ध नहीं करा सकता। अनुभव बताता है कि प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग के कुछ प्रतिनिधि, अपने कार्य-कलाप की जनवादी अंतर्वस्तु के बावजूद, जटिल राजनीतिक परिस्थितियों पर अपना प्रभाव छोड़ने में पूरी तरह असमर्थ सिद्ध हुए। वे साम्राज्यवादी प्रचार के प्रलोभनों के शिकार हो गये, उसके कपटपूर्ण संकेतों तथा दुरभि-संधियों के आर-पार नहीं देख पाये, और अंततः जैसे-तैसे अपने आध्यात्मिक विकास की संकट-स्थितियों से उबर पाये।

पश्चिम के जनवादी बुद्धिजीवी वर्ग के अमूर्त मानववाद तथा दक्षिणपंथी संशोधनवादियों द्वारा उछाली गयी अवधारणाओं— जिन्हें तथाकथित रूप से मानवीय शक्ल से संपन्न समाजवाद की संज्ञा दी गयी तथा जिनका न तो समाजवाद से कोई वास्ता है और न मानववाद से—के राजनीतिक अंतर को समझना भी फ़ायदेमंद होगा। दक्षिणपंथी संशोधनवादी विद्यमान समाजवाद के वास्तविक मानववाद के खिलाफ़ अपने संघर्ष में मानववादी शब्दावली तथा समाजवादी नारों की लोकप्रियता का दोहन कर रहे हैं।

बुनियादी कारक—वस्तुगत एवं आत्मगत—अब साफ़ तौर पर उभरने लगे हैं। ये कारक बुद्धिजीवी वर्ग की चेतना में क्रांतिकारी-जनवादी प्रवृत्तियों के विकास में योग देते हैं जिसके परिणामस्वरूप बुद्धिजीवी वर्ग का एक बड़ा हिस्सा वैज्ञानिक विचारधारा की ओर, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की ओर आकर्षित हो रहा है जैसे-

जैसे वे अपने हितों तथा आकांक्षाओं और मेहनतकश वर्ग के वर्ग-हितों के बीच सामंजस्य व संगति को देख-समझ पा रहे हैं।

बुद्धिजीवी वर्ग के भीतर तेज़ी से बढ़ते हुए विभेदीकरण को ध्यान में रखना भी जरूरी है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप बुद्धिजीवी वर्ग विभिन्न हिस्सों में टूट रहा है : एक हिस्सा राज्य-इजारेदारी तंत्र में प्रवेश करके शासक वर्ग में मिल जाता है तथा दूसरा पूँजीवादी शोषण का शिकार हो जाता है।

ये प्रक्रियाएँ वैज्ञानिक एवं तकनीकी कर्मियों की चेतना तथा सामाजिक-राजनीतिक अवस्थिति में प्रतिबिंबित होती है यद्यपि अपनी नयी सामाजिक प्रतिष्ठा तथा बदली हुई भूमिका के बारे में उनकी चेतना की पर्याप्तता काफ़ी असमान है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी बुद्धिजीवियों के विभिन्न समूहों में इनकी पहचान कर पाना काफी कठिन है क्योंकि वे सामाजिक-राजनीतिक मनोदशाओं तथा रुझानों का जटिल तथा व्यापक स्पेक्ट्रम (वर्ण क्रम) प्रस्तुत करते हैं।

पश्चिम में कलाकारों के समुदाय की अवस्थिति में इस कारण महत्वपूर्ण परिवर्तन घटित हो रहे हैं कि पूँजीवादी दुनिया में आध्यात्मिक उत्पादन की मुख्य उपज अधिकाधिक जन-समूह-संस्कृति है। पूँजीवादी समाज के आध्यात्मिक जीवन मे राज्य-इजारेदारी प्रवृत्तियों का शक्तिशाली बनना, इजारेदार पूँजी की सेवा में जन-माध्यमों का सर्वसत्तावाद—दोनों मिलकर विचारों के बाज़ार में लय निर्धारित करते हैं तथा कलात्मक एवं साहित्यिक समुदाय के स्वतंत्र सृजनात्मक कार्यकलाप के क्षेत्र को इतना संकुचित कर देते हैं कि वे मुक्त प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित प्राक्-इजारेदारी पूँजीवादी युग में उपलब्ध सीमित अवसरों की तुलना मे और भी कम अवसर प्राप्त कर पाते हैं। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा, व्यावसायिक कार्यकलाप, विज्ञान ज्ञान एवं संस्कृति के साथ घनिष्ठ सलग्नता के कारण बुद्धि-जीवी वर्ग सामाजिक अन्याय तथा पुलिस के मनमानेपन के खिलाफ़ बेहद सवेदन-शीलता के साथ प्रतिक्रिया करता है और इस मायने में मूलभूत जनवादी परिवर्तन के लिए तथा समाजवाद के लिए संघर्ष मे मेहनतकश वर्ग का स्वाभाविक सहयोगी बन जाता है।

वे वस्तुगत प्रक्रियाएँ जोकि आज के पूँजीवादी समाज में बुद्धिजीवी वर्ग की बदलती हुई अवस्थिति को चित्रित करती हैं उसकी चेतना तथा दुनिया के बारे में उसके संज्ञान को अनिवार्यतया प्रभावित करती हैं और इस प्रकार समाजवादी विचारों तथा मेहनतकश वर्ग के कम्युनिस्ट आदर्शों से बुद्धिजीवी वर्ग के परिचय का आधार तैयार करती हैं। फिर भी, वस्तुगत पूर्वापेक्षाएँ वैज्ञानिक विचारधारा के पूर्ण आत्मसात्करण को सुनिश्चित करने के लिए अपने आप में काफ़ी नहीं हैं। पूँजीवादी समाज के बौद्धिक जीवन में छद्म-मार्क्सवादी तथा चरम वामपंथी धाराओं का प्रचुर मात्रा में उद्भव इस प्रक्रिया की जटिल तथा अंतर्विरोधी प्रकृति

को चित्रित करता है। इस कारण से वैचारिक कार्यकलाप के लेनिनवादी सिद्धांतों का लागू किया जाना बेहद महत्वपूर्ण बन जाता है जो बुद्धिजीवी वर्ग की आवश्यकताओं को साहचर्य के भाव से देखने, बुद्धिजीवी वर्ग को चिंतित करने वाली विशिष्ट समस्याओं की घनिष्ठ समझ रखने तथा उन्हें आध्यात्मिक उत्पादन की प्रकृति तथा कोमल सृजनात्मक कार्यकलाप से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के रूप में देखने की सामर्थ्य को अत्यावश्यक मानते हैं। यह न केवल बुद्धिजीवी वर्ग के मानस में बैठे भ्रमों तथा भ्रांत धारणाओं—जोकि उसके रहन-सहन तथा व्यावसायिक कार्यकलाप से उत्पन्न हुए हैं—को समझने की बल्कि उसकी चेतना व कार्यकलाप के सकारात्मक तथा उपयोगी पक्षों को समझने की भी सामर्थ्य की माँग करता है।

कहना न होगा, पूंजीवादी तथा निम्न-पूंजीवादी विश्व दृष्टि की बहुत पहले स्थापित परंपराएँ आज भी पूंजीवादी देशों के बुद्धिजीवियों के एक बड़े हिस्से की मानसिकता व रुझानों को निर्मित करती हैं। सामाजिक पचमेल के साथ मिलकर यह तथ्य उनके लिए अंगभूत व्यापक विश्वदृष्टि तथा दर्शन के रूप में आत्मसात्करण के कार्य को और भी कठिन बना देता है। यहाँ यह रेखांकित करना उपयोगी रहेगा कि ये वे समस्याएँ तथा कठिनाइयाँ हैं जिनका सामना नयी विश्व-दृष्टि की ओर यात्रा के दौरान होता है तथा, यह रास्ता ध्रुवीकृत विचारों के बीच अटल संघर्ष के रणक्षेत्रों में होकर गुजरता है। इस संदर्भ में सामाजिक सिद्धांतों के आचार-संबंधी तथा नैतिक पक्षों का बुद्धिजीवी वर्ग के लिए विशेष महत्व है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि बुद्धिजीवी मार्क्सवाद-लेनिनवाद की ओर इसकी गहन मानववादी सामाजिक विचारधारा तथा समाजवादी व्यवहार के कारण, अन्य चीजों के अलावा, आकर्षित होते हैं। यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बारे में बुद्धि-जीवी वर्ग के बोध तथा दृष्टिकोण के बहुत से विशिष्ट तत्वों में से एक है।

उपसंहार

समाजशास्त्रीय नियमों—जोकि विचारधारा के उद्भव, विकास तथा सुदृढ़ीकरण को निर्धारित करते हैं—की खोज मानव-चिंतन को मार्क्सवाद की ऐतिहासिक देनों में से एक है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के विकास ने वैचारिक संबंधों की वैज्ञानिक पडताल को संभव बनाया तथा यह प्रदर्शित किया कि वे सामाजिक जीवन द्वारा निर्मित होते हैं हालांकि साथ ही अपने आंतरिक विकास में काफ़ी हद तक स्वतंत्रता को भी क़ायम रखते हैं।

विशिष्ट सामाजिक परिघटना के रूप में विचारधारा सामाजिक यथार्थ की पड़ताल का एक रूप है, एक ख़ास वर्ग का अपने समग्र कार्य-भारों, हितों के बोध तथा कारंवाई के कार्यक्रम को निश्चित करने का एक रूप है। एक प्रगतिशील विचारधारा में किसी-न-किसी रूप में भविष्य का पूरा खाका सन्निहित होता है। विचारधाराओं के चौखटे के भीतर एक ख़ास वर्ग अपने आप में एक वर्ग से विकसित होकर स्वयं के लिए एक वर्ग में रूपांतरित हो जाता है; ख़ास वर्ग एकताबद्ध होकर सुनिश्चित वैचारिक सिद्धांतों को अंगीकार करता है जोकि राजनीतिक संघटन के एक सुनिश्चित रूप के माध्यम से भौतिक सिद्धि प्राप्त करते हैं।

मूलतः विचारधारा का उदय भ्रामक चेतना के रूप मे हुआ था. यही वह पक्ष है जिसे आज के पूँजीवादी समाजशास्त्री तथा संशोधनवादी विचारधारा एवं विज्ञान के बीच संपूर्ण विरोध देखने को न्यायोचित ठहराने के लिए, तथा विचार-धारा के समूचे इतिहास को तथा किसी भी विचारधारा को मिथ्या-चेतना के रूप मे चित्रित करने के प्रयास के उद्देश्य से निरपवाद रूप से लपक लेते हैं। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की उपलब्धियों तथा प्रगति के परिप्रेक्ष्य मे इस प्रवृत्ति ने और भी गति पकड़ ली है, क्योंकि अब मानव उद्यम के सभी पक्षों में वैज्ञानिक ज्ञान का महत्व बेतहाशा बढ़ गया है। संशोधनवादियों तथा पूँजीवादी सिद्धांतकारों ने इस घटना-विकास का विचारधारा को नकारने के उद्देश्य से उपयोग करना शुरू

कर दिया है। तो भी, विचारधाराओं के दिन अभी तक लदे नहीं हैं। पूंजीवादी विचारधारा के प्रमुख वैचारिक सिद्धांत के रूप मे वि-वैचारिकीकरण की अवधारणा 1970 के दशक के शुरू मे ही निस्तेज हो गयी तथा तब से इसका स्थान बहुरूपी पुनर्वैचारिकीकरण की अवधारणाओं ने ले लिया है।

विचारधारा की वैज्ञानिक-संज्ञानात्मक, सामाजिक रूप से सगठनात्मक तथा सामाजिक रूप से अभिमुखात्मक भूमिकाओं को मेहनतकश वर्ग की वैज्ञानिक, समाजवादी विचारधारा मे मुखर अभिव्यक्ति मिलती है। समाजवादी विचारधारा की संज्ञानात्मक भूमिका जितनी गभीर होगी, उतना ही बड़ा उसका सामाजिक कार्य होगा। लाखों लाख लोगों के सचेतन कार्य-व्यापार से उत्पन्न सामाजिक व्यवस्था के रूप मे समाजवाद के विकास के विशिष्ट लक्षण तथा मेहनतकश वर्ग के सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण उक्त भूमिका को निर्धारित करते हैं।

मार्क्सवादी सामाजिक विश्लेषण ने भ्रामक चेतना की समस्या का समाधान कर लिया है, उन सामाजिक तथा ज्ञानशास्त्रीय परिस्थितियो का पता लगा लिया है जिनके अंतर्गत विचारधारा मे सामाजिक जीवन का प्रतिबिंबन रहस्यावृत रूप धारण कर लेता है, और विचारधाराओं मे आत्मगत तथा वस्तुगत कारको की द्वंद्वात्मकता को उद्घाटित कर दिया है। उसने इस प्रकार यह सिद्ध कर दिया है कि विचारधारा सामाजिक संबधों तथा ऐतिहासिक विकास की प्रवृत्तियों का अपरिहार्य सामाजिक संकेतक होती है।

ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया मे विचारधारा तथा विज्ञान के बीच की विभाजक रेखा निरपेक्ष न होकर सापेक्ष होती है। पूंजीवादी समाजशास्त्रियों के दावे के विपरीत, यह समकालीन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति को धारा के वस्तुगत प्रवाह से उत्पन्न नहीं होती अपितु वैज्ञानिक ज्ञान के क्षेत्र के बाहर स्थित विचारणाओं के प्रति अनुक्रिया से उत्पन्न हुई है।

पूंजीवादी तथा समाजवादी विचारधाराओं की आंतरिक कार्य-प्रणालियों की तुलना विचारधारा के चरित्र तथा प्रचार की किस्म के बीच अन्योन्याश्रय का संकेत देती है। वैचारिक कार्य-व्यापार के स्वायत्त लक्ष्य पाठक-श्रोताओं के मानस को प्रभावित करने की पद्धतियो तथा विधियो को निर्धारित करते हैं।

पूंजीवादी विचारधारा के प्रतिगामी चरित्र का मेल उन युक्तिमूलक विधियों से बैठता है जिन्हें वह अपने पाठक-श्रोता समूहों को प्रभावित करने के लिए काम में लाती है जो उसकी निहित दुर्बलता तथा वास्तविक अंतर्वस्तु के अभाव का सबसे अच्छा प्रमाण है। युक्तियों के आधार पर गढ़े गये विचार व दृष्टि दीर्घजीवी नहीं होते। यथार्थ के सपर्क मे आते ही वे ध्वस्त हो जाते हैं तथा सामाजिक चेतना मे सकट की स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। अपनी प्रभावशाली तकनीकी सुविधाओं तथा

पुलिसमूलक विधियों के बावजूद पूंजीवादी प्रचार का मानव इतिहास के समग्र मार्गक्रम पर कोई भविष्य नहीं है, क्योंकि तथ्यों से तथा मानवता की सामाजिक प्रगति की प्रवृत्तियों से टकराने पर यह टिक नहीं पाता।

समाजवादी प्रचार के पास वैज्ञानिक विचारधारा के रूप में समृद्ध अंतर्वस्तु है तथा उसका लक्ष्य सामाजिक चेतना का ऐसा विकास सुनिश्चित करना है जोकि सामाजिक नियमों के वैज्ञानिक ज्ञान के लिए पर्याप्त हो। यह उसका बुनियादी सिद्धांत है। पदार्थ की अंतर्वस्तु को प्रमुखता प्रदान करके समाजवादी विचारधारा वैचारिक कार्यकलाप के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पक्षों के वास्तविक स्थान तथा सार्थकता पर भी पूरी तरह गौर करती है।

वैचारिक कार्यकलाप में सक्रिय स्थिति समाजवादी विचारधारा के क्रांतिकारी-आलोचनात्मक सार-तत्व से उत्पन्न होती है तथा समाजवादी व्यवस्था की सृजनात्मक प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है, जोकि अपनी परिपक्वता के उच्च स्तरों पर पहुँच कर एक पूर्ण रूप से बनी-बनाई प्रणाली में तब्दील नहीं हो जाती बल्कि एक जीवित प्रणाली बनी रहती है जो अवश्यंभावी समस्याओं व कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके निरंतर विकसित होती रहती है। सामाजिक संरचना के जटिल तत्वों, तथा विभिन्न तत्वों के अंतःसंबंध तथा अन्योन्याश्रय, आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक तथा आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक कारकों की अंतःक्रिया इस प्रणाली के जीवन में उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही है। साथ ही, तेजी से विकसित होती हुई सामाजिक प्रक्रियाओं के वैचारिक पक्ष और भी अधिक महत्वपूर्ण बनते जा रहे हैं।

लक्ष्योन्मुख स्वायत्त कार्यकलाप के रूप मे विचारधारा विज्ञान व राजनीतिक कला दोनों है। वैज्ञानिक ज्ञान के एक विभाग के रूप में यह आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक तथा आध्यात्मिक घटनाक्रियाओं, सामाजिक प्रक्रियाओं के, व सामाजिक चेतना एवं सामाजिक मनोविज्ञान को संचालित करने वाले नियमों के वस्तुगत तर्क की पड़ताल करती है। राजनीतिक कला के रूप मे यह जीवन के व्यावहारिक पक्षों के घनिष्ठ ज्ञान, राजनीतिक अंतर्दृष्टि तथा समुचित शिक्षा-शास्त्रीय तथा व्यावसायिक कुशलताओं की माँग करती है। अंत में, वैचारिक कार्य की कारगरता इस बात पर निर्भर करती है कि इसमें संलग्न लोग अपने काम की अंतर्वस्तु तथा विशिष्ट प्रकृति को कितनी अच्छी तरह समझते हैं। यह प्राप्त किये जाने वाले परिणामों के यथार्थवादी मूल्यांकन पर, सामाजिक विकास को प्रभावित करने के प्रत्येक मामले में प्रचार के रूप व पद्धति के निर्भ्रांत चरण पर, तथा प्रचारित विचारों मे सन्निहित शक्तिशाली संगठनात्मक क्षमता का पूरा उपयोग
... की [illegible]